ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

भारतीय संस्कृति का उत्कृष्ट केन्द्र : अवंतिपुर

डॉ0 अंजना वर्मा
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
म0 गां0 काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सारांशिका

कश्मीर भारत का एक प्राचीन राज्य हैं। कल्हण ने अपने ग्रंथ राजतरंगिणी में इसका वर्णन कश्मीर मण्डल के नाम से किया है। प्राचीन कश्मीर के शासको ने यहाँ अनेक नगरों की स्थापना की। इन्हीं में शासक अवंतिवर्मा ने अवंतिपुर नगर की स्थापना की। यह नगर वास्तुकला के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ शिव व विष्णु को समर्पित अवंतीश्वर व अवंतिस्वामी मंदिर है। यह दोनो मंदिर अपने अद्‌भुत सौंदर्य व कलात्मक सुंदरता के लिए जाना जाता है। कालांतर में यह मंदिर विदेशी आक्रांताओं द्वारा नष्ट कर दिया गया और अब यह खण्डहर रूप में अवस्थित है।

बीज शब्द– कश्मीर, राजतरंगिणी, कल्हण, प्राचीन, अवंतिपुर, मंदिर, शैव, वैष्णव, लकुलीश, विष्णु, स्तम्भ।

कश्मीर भारत का एक प्राचीन राज्य है। भारतीय संस्कृति विश्व की एक महान संस्कृति है। ऐसी संस्कति जहां धार्मिक सहिष्णुता की अद्‌भुत झलक मिलती है। यह राज्य हिमालय पर्वत की श्रृंखलाओं में अवस्थित है। यह क्षेत्र अपने प्राकृतिक सौदर्य एवं संसाधनों के लिए जाना जाता है। यही पर प्राचीन काल में एक महत्वपूर्ण नगर स्थित था– अवंतिपुर प्राचीन कश्मीर में अनंतनाग जिले में स्थित एक विशाल व भव्य नगर था। यह श्रीनगर से 18 मील की दूरी पर वितस्ता नदी के दाहिने तट पर अवस्थित है। नगर की पहचान आधुनिक वन्तिपुर ग्राम से की जाती है।[1] यहां पर प्राचीन काल में दो महत्वपूर्ण मंदिरों की स्थापना की गयी– अवंतीश्वर शिव मंदिर एवं अवंतिस्वामी विष्णु मंदिर, जिसके स्थापत्य के कलात्मक सौन्दर्य का वर्णन प्रस्तुत शोध पत्र में किया गया है।

पूर्वमध्यकालीन कश्मीर के उत्पल वंशीय शासक अवंतिवर्मन् ने तीन नगरों की स्थापना की जिसमें से अवंतिपुर प्रमुख नगर था।[2] वह एक योग्य एवं प्रजाहित चिंतक शासक था। यहाँ से दो भव्य मंदिरों के अवशेषों से प्रमाणित होता है कि शासक ने यहाँ दो मंदिरों की स्थापना करवायी। यहाँ से प्राप्त मंदिर शैव एवं वैष्णव धर्म को समर्पित है। अवंतीश्वर शिव मंदिर एवं अवंतिस्वामी वैष्णव मंदिर है।

अवंतीश्वर शिव मंदिर –

यह मंदिर अवंतीस्वामी मंदिर के उत्तर–पश्चिम में एक किमी की दूरी पर स्थित है। मंदिर विशाल पत्थरों से निर्मित है। मुख्य मंदिर में चार प्रवेश द्वार है।[3] मंदिर का प्रवेश द्वार भव्य एवं दो वर्गो में विभक्त है। मंदिर की आंतरिक भित्ति तिपतिया मेहराब एवं लताओं से सुसज्जित हैं। इस पर देवताओं के चित्र उत्कीर्ण है। मंदिर से लकुलीश, विद्याधर आदि देवताओं की आकृतियाँ प्राप्त होती है।[4] शैव धर्म के पाशुपत शाखा के प्रवर्तक लकुलीश को शिव का 28वाँ अवतार बताया गया है।[5] यहाँ से प्राप्त चतुर्भुजी प्रतिमा में अक्षमाला एवं लकुट धारण किये हुए दर्शाया गया है।

मंदिर के मुख्य आकर्षण का केन्द्र– राजकीय दंपत्ति का अंकन है। संभवतः यह शासक अवंतिवर्मा एवं उनकी रानी है।[6] अवंतीश्वर मंदिर से राजकीय अंकन के दो दृश्य प्राप्त होते है। एक दृश्य में राजा एवं उनके सहयोगीगण है। दूसरे दृश्य में शासक अवंतिवर्मा एवं उनके साथ दो रानियाँ है राजा व रानी के साथ उनके परिजन भी हैं। सम्पूर्ण मंदिर परिसर में बड़ी संख्या में पुरावशेष बिखरे हुए है।

अवंतिस्वामी विष्णु मंदिर –

उत्पल वंशीय शासक अवंतिवर्मा ने शिव मंदिर के अतिरिक्त अवंतिपर में एक विष्णु मंदिर का भी निर्माण कराया था, जो कश्मीर के प्रतिष्ठित मंदिरों में जाना जाता है। मंदिर की स्थापना एक विशाल प्रांगण में हुयी है। मुख्य मंदिर प्रांगण के मध्य में स्थित है। मंदिर के चारों कोणो ं पर छोटो–2 मंदिरों के अवशेष प्राप्त होते है, जो मुख्य मंदिर को पंचायतन श्रेणी में रखते है।[7] मंदिर के प्रवेश द्वार पर मकरवाहिनी गंगा व कूर्मवाहिनी यमुना की आकृतियाँ प्राप्त होती है। मंदिर से भी कतिपय राजकीय अंकन के प्रमाण प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक पुरुष स्त्रियों, पशु–पक्षियों आदि की भी आकृतियाँ मंदिर में उत्कीर्ण है किन्तु जीर्ण–शीर्ण अवस्था में हो ने के कारण उन्हें पहचानना दुष्कर है।

मुख्य मंदिर के सहायक चार मंदिरों में तीन सुरक्षित है, किन्तु वे भी क्षतिग्रस्त हैं। यहाँ से प्राप्त मकरवाहिनी गंगा की एक आकृति की पहचान साहनी ने प्रद्युम्न से की हैं। उनकी इस धारणा के आधार पर सहायक मंदिर संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न व अनिरुद्ध का प्रतिनिधित्व करते होगें। मुख्य मंदिर चतुर्मुखी वैकुठ्ठ विष्णु को समर्पित है।[8] वैदिक परम्परा में बैकुण्ठ को इन्द्र से सम्बन्धित देवता बताया गया हैं। पुराणो में बैकुण्ठ या विकुष्ठ, विष्णु का ही नाम बताया गया है। पापों को कुण्ठित करने के कारण ही उनका विकुण्ठ नाम पड़ा और उनके निवास लोक को वैकुण्ठ कहा गया। यहाँ से प्राप्त वैकुण्ठ प्रतिमा में मुख्य मुख वासुदेव का, दाहिना मुख सिंह का (संकर्षण), बाया मुख वराह का (अनिरूद्ध) और उग्र रूप में (प्रद्युम्न) को दर्शाया गया है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में भी ऐसी सम्मिलित मूर्ति को वैकुण्ठ नाम दिया गया है। ऐसी मूर्ति ज्ञान शक्ति, ऐश्वर्य तथा बल की द्योतक बतायी गयी हैं।[9] वैष्णव धर्म के तंत्र, मंत्र, आगम व तंत्रान्तर सम्प्रदाय में से वैकुण्ठ तत्रान्तर सम्प्रदाय के प्रमुख अराध्यदेव बताये गये है।[10] मूर्ति में दोनो पैरों के मध्य में भू–देवी (पृथ्वी) का अंकन प्राप्त होता है।[11] यहीं से नवीं शताब्दी ईसवी की एक अन्य कांस्य मूर्ति भी उल्लेखनीय है। दोनो ही मूर्तियों में मुख का विवरण समान है। मूर्तियों को रत्नजड़ित लंबी माला, मोतियों के हार, बाजूबंद अंगूठी, कुंडल एवं रत्नजड़ित

मुकुट से सुसज्जित किया गया है। मूर्ति की भाव भंगिमा व शरीर–रचना से स्पष्ट होता है कि मूर्ति पर गुप्त व गांधार शैली का प्रभाव रहा होगा।[12]

अवंतिस्वामी पंचायतन मंदिर में विष्णु मध्य में एवं क्रमशः शिव ईशान में, गणेश आग्नेय में, सूर्य नैश्रृत्य में तथा देवी (अंबिका) वायव्य में स्थापित है।[13] मंदिर की मुख्य सुंदरता उसके कोष्ठात्मक स्तंभावली युक्त संरचना है। यहाँ 69 देव कुलिकाएं निर्मित है। मंदिर का आंगन धारीदार स्तम्भों की संरचना से आवेष्टित है। यहाँ से प्राप्त प्रतिमाओं में कामदेव की प्रतिमा भी विशिष्ट है। जिसको साहनी ने विष्णु की बताया था किन्तु यह आकर्षक व सुसज्जित मूर्ति कामदेव की है। इनके साथ रति व प्रीति भी दर्शाये गये है।[14] अंवतिपुर क्षेत्र का कनिंघम, कोवी, मार्शल व दयाराम साहनी आदि विद्वानों ने सर्वेक्षण और उत्खनन कार्य कराया। कनिंघम ने सर्वप्रथम यहाँ सर्वेक्षण किया तत्पश्चात् जॉन मार्शल 1910 में आये तथा यहाँ का उत्खनन कार्य कराया जिसमें शंकरवर्मा, दिद्दा, अनंत, कलश आदि शासकों के सिक्के, मूर्तियों के खण्डित अवशेष आदि प्राप्त हुए। 1913 में साहनी ने क्षेत्र का पुनः उत्खनन कार्य करवाया और उन्हे सिक्कों के साथ–साथ वैकुण्ठ मूर्ति, गणेश अर्द्धनारीश्वर, गजलक्ष्मी आदि की मूर्तियाँ प्राप्त हुयी।[15]

अवंतिस्वामी मंदिर से एक अभिलेख प्राप्त हुआ है।[16] अभिलेख पर लिखित तिथि (1546 ई0) के आधार पर जॉन मार्शल व दयाराम साहनी के अनुसार सुल्तान सिकंदर द्वारा मंदिर को नष्ट करने के पश्चात पुनः मंदिर का निर्माण हुआ। यह लेख भी बाद के किसी शासक का हो सकता है किन्तु इस सम्बन्ध में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। अभिलेख की लिपि अवंतिवर्मा के सिक्कों के समान है। इस प्रकार यह कहना तर्कसंगत है कि लिपि की समानता के आधार पर यह अभिलेख अवंतिवर्मा का प्रतीत होता है। वर्तमान में उत्खनन से प्राप्त सम्पूर्ण अवशेष एस0पी0एस0 म्यूजियम श्रीनगर में सुरक्षित संग्रहीत है।

अतः स्पष्ट है कि अवंतीश्वर व अवंतिस्वामी मंदिर शांतिप्रिय व सौन्दर्य प्रेमी शासक अवंतिवर्मा के व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करते है। वर्तमान में सम्पूर्ण मंदिर के मात्र खण्डर प्राप्त होते है। मुख्य व सहायक मंदिर की अधिरचना निर्दयी व क्रर सुल्तान सिकंदर बुत–शिकन के द्वारा नष्ट कर दी गयी। साथ ही प्रकृति की प्रचण्डता एवं निर्माण में कमजोर पत्थरों का प्रयोग होने के कारण भी मंदिर जीर्ण–शीर्ण अवस्था में है। इसके अतिरिक्त इन निम्न कोटि के पत्थरों पर अत्यधिक नक्काशी विनाशकारी सिद्ध हुयी, जिससे उसका रूप नष्ट हो गया। इन्ही कारणो से मंदिर से प्राप्त अनेक मूर्तियों की पहचान करना भी असंभव है।

खण्डित अवस्था में होने के बावजूद भी मंदिर अपनी भव्यता व विशालता के लिए न केवल कश्मीर अपितु, सम्पूर्ण भारत में विख्यात है। साथ ही एक शासक के द्वारा विभिन्न धर्मों के मंदिर व मूर्तियों का निर्माण शासक की धार्मिक सहिष्णुता का परिचायक है। न केवल शैव–वैष्णव अपितु शासक ने बौद्ध धर्म के प्रति भी उदारता दर्शायी। इस प्रकार एक ऐतिहासिक स्थल (अवंतिपुर) पर इस प्रकार से शैव व वैष्णव मंदिर का होना अपने आप में ही अनोखा व अद्भुत है, क्योंकि इतिहास में इस तरह के उल्लेख कम ही प्राप्त होते है।

सन्दर्भ–सूची

1. स्टाइन एम0ए0– एंशियेट ज्याग्राफी ऑफ कश्मीर, पटना, 1977, पृ0–168
2. राजतरंगिणी – 5.44
3. साहनी, दयाराम – वार्षिक रिपोर्ट, ए0एस0आई, 1915–16, पृ0– 70–71
4. मित्रा, देबला – पांद्रेठन, अवंतिपुर, मार्तण्ड, नई दिल्ली, 1993 पृ0 – 76–77
5. जोशी, नीलकंठ पुरुषोत्तम–प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, पटना, 2000, पृ0– 39
6. मित्रा, देबला–पूर्वोक्त, पृ0–73–76
7. राय, एस0सी0 अर्ली हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ कश्मीर, नई दिल्ली, 1969 पृ0–227
8. मित्रा, देबला–पूर्वोक्त, पृ0– 50–51
9. जोशी, नीलकंठ पुरुषोत्तम, पूर्वोक्त, पृ0 – 107
10. प्रसाद, माहेश्वरी, दू विष्णु इमेज एण्ड दे यर कल्ट एफीलेशन, भारती, 1960–1961, पृ0 142–144
11. मित्रा, देबला, पूर्वोक्त, पृ0 – 48
12. तिवारी, एम0एन0पी0 , मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला, पृ0 – 179 ; देबला, मित्रा पूर्वोक्त, पृ0– 48
13. काणे, पी0वी0, धर्मशास्त्र का इतिहास (अनु0) खण्ड – 1, पृ0 – 394
14. मित्रा, देबला, पूर्वोक्त, पृ0 – 41
15. साहनी, दयाराम, 1913–14 पूर्वोक्त, पृ0 40–62
16. कौल, दीम्बी बी0के0 कार्पस ऑफ शारदा इन्सक्रिप्सन ऑफ कश्मीर, पृ0 – 133–135

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

तुलसी काव्यधारा में जल व नदी विमर्श : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ0 अरूण कुमार मिश्र
असिस्टेण्ट प्रोफेसर (हिन्दी)
एम0डी0पी0जी0 कालेज प्रतापगढ

सारांश :

प्रकृति ही मनुष्य की सबल सहचरी है। प्रकृति के समस्त उपादान मानव जीवन के लिये अत्यंत आवश्यक है। किसी भी एक तत्व की उपेक्षा प्रकृति के सम्पूर्ण सन्तुलन तथा समन्वय को समाप्त कर देती है। इन सभी उपादानों में जल की महत्ता सर्वविदित है।इसलिये समस्त जल स्रोतों का का भी महत्व उतना ही अधिक बढ जाता है। उचे पर्वतों से गिरते झरने कल कल करती बहती हुई नदियाँ शान्त सरोवर कूप बावड़ी सभी का महत्व है। मानव अस्तित्व तो क्या समस्त प्रणि जगत तथा वनस्पति जगत जल के बिना सम्भव नही है। नदियों को जीवन रेखा अथवा जीवन धारा के रूप में प्रख्यापित किया जाता है। नदियाँ न केवल धार्मिक दृष्टि से वरन सामाजिक आथिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। विभिन्न साहित्यकारों तथा विद्वानों की कृतियों मे नदी विमर्श एक प्रमुख विषय रहा है। सन्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी अपने प्रमुख ग्रन्थों में अद्भुत नदी विमर्श प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत लेख में तुलसी काव्य धारा में नदी विमर्श का एक विश्लेषणत्मक अध्ययन किया गया है।

प्राकृतिक व्यवस्था के प्रमुख उपादान के रूप मे नदियाँ अत्यंत महत्व की है। नदियाँ ही सभ्यताओं की संवाहिका रही है। नदियाँ सदैव से ही मानव के लिये जीवन दायिनी रही है। नदियाँ समस्त जन जीवन के लिये आवश्यक जल प्रदान करने के साथ साथ शुद्ध वातावरण की भी प्रदाता होती है। आध्यात्मिक साधना की दृष्टिकोण से यदि विचार किया जाय तो हम इस तथ्य से अवगत होते हैं कि नदियों का आध्यात्मिक उन्नति में अत्यंत योगदान है। तमाम ऋषियों तथा महर्षियों ने इन्ही नदियों के तट पर बैठकर आध्यात्मिक साधना की तथा ज्ञान की प्राप्ति की। भरतीय वांग्मय नदी वर्णन से पटा पडा है। हमारे ग्रन्थों में गंगा यमुना सिंधु ब्रह्मपुत्र, घाघरा, गंडक, कोसी, सरस्वती कृष्णा, कावेरी, सरयू, गोमती, सई, मंदाकिनी, गोदावरी तथा अन्य नदियों का उत्कृष्ट वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद में कुल 99 नदियों के उल्लेख है। वाल्मीकि रामायण महाभारत एवं कालीदासीय रचनाओं में भी नदी विमर्श दृष्टिगोचर होता है। तुलसी के लिये जल तत्व का सर्वाधिक महत्व है। इसलिये उनकी काव्य धारा में नदी विमर्श एक महत्वपूर्ण पक्ष है। तुलसी ने अपनी श्रेष्ठतम् रचना रामचरितमानस की तुलना एक नदी तथा सरोवर के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है।

रामचरितमानस एक सरोवर :

तुलसी काव्य में राम कथा का निरूपण एक सरोवर के रूप में किया गया है। उन्होने अपनी कृति का नामकरण ही सरोवर के माध्यम से किया है। मानस की तुलना मानसरोवर से की है।

रामचरितमानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइय विश्रामा।।[1]

रामचरित रूपी सरोवर में स्नान किये बिना किसी व्यक्ति का भ्रम दुख करोडो उपाय करने पर भी दूर नहीं होता है।

रामचरित सर बिनु अन्हवाये। सो श्रम जाइ न कोटि उपाये।।[2]

वास्तविक रूप से रामचरितमानस की रचना भगवान शिव ने की थी और अपने मन रूपी मानस में रच लिया था। समय आने पर माता पार्वती जी को सुनाया उसी कथा को संत तुलसी ने वर्णित किया।

रामचरितमानस मुनि भावन। विरचेउ शम्भु सुहावन पावन।।
रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमय शिवा सन भाषा।।
शंभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी।।[3]

मानस में चार सुंदर संवादों का उल्लेख तुलसी ने किया है। इनमें काग भुशुंडि–गरूण संवाद, शिव–पार्वती संवाद, याज्ञवल्क्य–भरद्वाजसंवादऔर स्वयं तुलसीदास तथा सन्तों के मध्य हुआ संवाद प्रमुख है। यही संवाद इस भक्ति सरोवर के चार प्रमुख सुन्दर घाट है।

एहि सुन्दर संवाद वर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि।।[4]

रामचरितमानस सात काण्डों से सुशोभित है। यही सातों काण्ड मानों इस सरोवर की सात सीढ़ियाँ है। जिस पर चलकर साधक राम कथा रूपी जल तक पहुच जाता है।

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ वर वारि अगाधा।।[5]

राम और सीता का यश ही इस सरोवर का अमृत के समान जल है। जिसने भी इस सरोवर में स्नान नहीं किया वे मूर्ख कलियुग के मारे अभागे हैं। सरोवर के नजदीक जाते ही उनको मूर्खता रूपी ठंड लगने लगती है और जाने के बाद भी पुष्प सलिल में स्नान का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो पाता।

राम सीय जल सलिल सुधा सम। उपमा बीचि विलास मनोरथ।।
जो एहि बार न मानस धोए। ते पांवर कलिकाल विगोए।।
जड़ता जाड़ विषम उर लागा। गएहु न मज्जन पाव अभागा।।[6]

रामचरितमानस एक नदी :

सन्त तुलसी ने माानस की तुलना एक सुन्दर सरोवर से की है। इसे ही मानसरोवर की संज्ञा दी है। इसी से ही राम कथा रूपी कविता की नदी प्रवाहित है।

चली सुभग कविता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता से।।
सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक वेद मत मंजुल कूला।।
नदी पुनीत सुमानस नंदिनि। कलिमल तृन तरू मूल निकंदिनि।।[7]

अर्थात्–एक सुन्दर सरिता के समान यह रामचरितमानस रूपी कविता निकल पड़ी जिसमे राम का विमल यश ही जल है। इसी कविता रूपी नदी को सरजू कहा जता है। सम्पूर्ण सुन्दर मंगलों की जड़ है। लोक मत और वेद मत इसके दो सुन्दर किनारे है। यह सुन्दर मानसरोवर की कन्या सरयू नदी बड़ी पवित्र और कलियुग के पाप रूपी तिनकों और वृक्षों को जड़ से उखाड़ देने वाली है। इस प्रकार रामचरित रूपी नदी की तुलना सरयू नदी से की गयी है।विद्वानों ने श्रोताओं की तीन श्रेणियाँ निर्धारित की है। यही तीनों प्रकार के श्रोताओं का समाज ही इस नदी के किनारों पर बसे हुए गाँव और नगर है। सन्तों की सभा ही अनुपम अयोध्या है।

श्रोता त्रिविध समाजपुर, ग्राम नगर दूहूँ कूल।
संत सभा अनुजम अवध, सकल सुमंगल मूल।।[8]

राम कथा रूपी नदी की भौगोलिकता तथा प्रवाह भी दृष्टव्य है। जिस प्रकार सरयू नदी जाकर गंगा और सोन नदी में समागम करती है उसी प्रकार रामकीर्ति रूपी सुहावनी सरयू राम भक्ति रूपी गंगा में जा मिलती है। राम और अनुज लक्ष्मण के यह पराक्रम रूपी सुहावनी सोन नदी उसमें आकर मिल जाती है। दोनों के बीच में भक्ति रूपी गंगा की धारा ज्ञान और वैराग्य के सहित शोभित हो रही है। ऐसी तीनों तापों को मिटाने वाली यह तिमुहानी (तीन मुखों वाली)नदी राम के स्वरूप रूपी समुद्र की ओर जा रही है। इसका मूल मानस है और यह गंगा में मिली है। इसलिये यह सुनने वाले सत्पुरूषों के मन को पवित्र कर देती है –

राम भगति सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई।।
सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानद सोन सुहावन।।
जुग विच भगति देव धुनि धारा। सोहति सहित सुविरति विचारा।।
त्रिविध ताप त्रासक तिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी।।
मानस मूल मिली सुसरिहीं। सुनत सुजन मन पावन करिही।।[9]

उपरोक्त दोनों तथ्यों का अनुशीलन करने पर रामचरितमानस में सन्त तुलसीदास का नदी तथा जल स्रोतों के रूप में सरोवरों का महत्व तथा दृष्टि स्पष्ट होती है।रामचरितमानस में वर्णित नदियाँ आध्यात्मिक रूप से अत्यन्त महत्व की है जिनकी महिमा अनन्त है। इनका बखान तो परम विमल बुद्धि रखने वाली माँ सरस्वती भी नहीं कर सकती हैं।

नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकहि सारदा विमल मति।।[10]

मानस की नदियाँ सदैव सदानीरा प्रख्यापित की गयी है। इनमे स्वच्छ, स्वादिष्ट, निर्मल जल सदा प्रवाहमान रहता था जिसमें पशु पक्षी सदैव सुखी रहते थे।

सरिता सब पुनीत जल बहही। खग मृग मधुप सुखी सब रहही।।
सरिता सकल बहहि बर वारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।[11]

इन नदियों में स्नान करने से मनुष्य गोपद भाँति भवसागर पार हो जाता था।इन नदियों में स्नान करने से वह ईश्वर के समीप वापस आ जाता है।

सादर मज्जन पान किये ते। मिटहि पाप परिताप हिये ते।।[12]
जा मज्जन ते बिनहि प्रयासा। मम समीप नर पावहि बासा।।[13]

इन्हीं नदियों के तट पर किनारे किनारे ज्ञान साधना में लीन मुनि तथा संन्यासी विरक्त महापुरूष निवास करते हैं तथा तुलसी के वृक्ष रोपित किये है–

कहु सरिता तीर उदासी। बसहि ग्यानरत मुनि संन्यासी।।
तीर तीर तुलसिका सुहाई। वृन्द वृन्द बहु मुनिन्ह लगाई।।[14]

रामचरितमानस में नदियों पर राजघाट सब प्रकार से सुन्दर तथा श्रेष्ठ हैं जहाँ समस्त चारों वर्णों के पुरूष स्नान करते हैं। इनके किनारे–किनारे देवताओं के मंदिर अवस्थित है जिनके चारों ओर सुन्दर उपवन है जिनमें पुष्प सदैव खिले रहते है –

राजघाट सब बिधि सुन्दर वर मज्जहि तहाँ वरन चारिउ नर।
तीर तीर देवन्ह के मन्दिर। चहुँ दिसि तिन्हके उपवन सुन्दर।।[15]

पशु पक्षी इसी सरिता के जल का पान करते है। इन नदियों के तट पर पानी भरने के लिये बहुत से घाट है वहाँ सिर्फ स्त्रियाँ ही जाती है। पुरूष वहाँ स्नान नहीं करते है–

दूरि फराक रूचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहि बाजि गज ठाटा।।
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरूष करहि अस्नाना।।[16]

नदियों के अतिरिक्त जितने भी जल संयंत्र है वे सभी अतीव सुन्दर व मनोहर थे–

वापी तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहही।।
सोपान सुन्दर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं।।
बहुरंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुँजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हँकारही।।[17]

अर्थात्– अनुपम बावलिया, तालाब और कुंए अत्यंत मनोहर हैं तथा अनुपम शोभा दे रहे हैं जिनकी सुन्दर रत्नजड़ित सीढ़ियाँ और जल देखकर देवता तथा मुनि तक मोहित हो जाते हैं। तालाबों में अनेक रंग के कमल खिले रहते हैं और अनेक पक्षी कूज रहे है तथा भौरे गुंजार कर रहे हैं। सुन्दर बगीचे में कोयल तथा पक्षी इस प्रकार से बोल रहे है मानों वे जाते हुए पथिकों को अपनी ओर बुला रहे हों ।

मानस की प्रमुख सरितायें :

रामचरितमानस में कुल 8 नदियों का वर्णन प्राप्त होता है जिनके तटों पर श्रीराम की लीला चरित्र के कुछ अंशों का प्रतिपादन हुआ। ऐसी निर्मल तथा शीतल जलों से भरी हुई प्रमुख सदानीरा रहने वाली नदियों में पतित पावनी सरयू नदी, तमसा नदी,गोमती नदी, सई नदी, गंगा नदी, यमुना नदी, मंदाकिनी नदी तथा गोदावरी नदियाँ उल्लेखित की जाती है –

सरयू नदी – कोसलोनाम मुदितः स्फीतोजनपदो महान।
निविष्टः सरयू तीरे प्रभूत धन धान्यवान्।।[18]

अर्थात्– 'कोशल नाथ का अत्यंत समृद्धशाली तथा सुन्दर नगर सरयू नदी के किनारे अवस्थित था।' रामचरितमानस में सरयू नदी को अत्यंत पावनी तथा समस्त बलों की मूल प्रतिख्यापितकिया गया है। यह मान सरोवर की कन्या के रूप में उद्भूत है। इसका वर्णन बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड में हुआ है। बालकाण्ड में उल्लिखित है–

सरयू नाम सुमंगल मूला। लोक वेद मत मंजुल कूला।।
नदी पुनीत सुमानस नंदिनि। कलिमल तृन तरू मूल निकंदिनि।।[19]

उत्तरकाण्ड में स्वयं श्री रामचन्द्र जी ने भी अपने मुखारबिन्द से सरयू नदी की प्रशंसा की है।

अवधपुरी मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिशि बह सरजू पावनि।।
जा मज्जन ते बिनहि प्रयासा। मम समीप नर पावहि बासा।।[20]

इसी नदी के किनारे महाराज दशरथ ने श्रवणकुमार का भूलवश वध कर दिया था। श्री राम ने गोलोक गमन इसी सरयू के गंभीर जल में समाधि लेकर लिया था।

2. तमसा नदी– तमसा नदी रामायण कालीन कई घटनाओं की साक्षी नदी के रूप में चित्रित है। वाल्मीकि रामायण में तमसा नदी को बहुत गहरी नदी के रूप में दर्शाया गया है। यह शीघ्र प्रवाहिनी नदी तथा भंवरों वाली नदी थी। इसी नदी के तट पर एक निषाद द्धारा मैथून क्रिया में निमग्न दो क्रौंच पक्षियों के युगल में से एक का वध कर दिये जाने

पर महर्षि वाल्मीकि को अत्यंत दुःख हुआ और भव वश विश्व साहित्य का प्रथम श्लोक उनके मुख से प्रस्फुटित हो गया। सीता निर्वासन के समय वाल्मीकि आश्रम इसी तमसा नदी के तट पर स्थित था और माता सीता का अधिकांश निर्वासन काल यही व्यतीत हुआ था। यही लव और कुश का जन्म भी हुआ था। रामचरितमानस में इस नदी का वर्णन अयोध्याकाण्ड में प्राप्त होता है। श्री राम वनवास के समय अयोध्या से निकलकर प्रथम दिवस यही पर वास किये थे। तमसा तीर निवास किय। प्रथम दिवस रघुनाथ।।[21]

श्री रामचन्द्र जी को मनाने जाते समय भरत जी ने भी प्रथम विश्राम तमसा के तट पर किया था।

तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमति तीर निवासू।।[22]

3. गोमती नदी– गोमती नदी को पाप नाशिनी नदी तथा आदि गंगा भी कहा जाता है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार रावण वध के कारण ब्रह्म हत्या से आवृत्त होने पर श्रीराम ने गुरू वशिष्ठ की आज्ञानुसार इसी गोमती में स्नान करके स्वयं को पाप मुक्त किया था। यह स्थान आज भी 'धोपाप' के नाम से प्रसिद्ध है। रामचरितमानस में इसका उल्लेख बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड में हुआ है। महाराज मनु गोमती तट पर भी तपस्या किये थे–

पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। उतरि नहाने निर्मल नीरा।।[23]

भरत जी के श्रीराम को मनाने जाते समय तथा वहाँ से वापस आते समय भी गोमती का उल्लख मिलता है चित्रकूट जाते समय उन्होंने दूसरा विश्राम गोमती के तट पर किया था।

तमसा प्रथम दिवस कर बासू। दूसर गोमति तीर निवासू।।[24]
चित्रकूट से वापस लौटते समय भी सई नदी को पार कर गोमती में स्नान किये थे।
सई उतरि गोमती नहाये। चौथे दिवस अवधपुर आये।।[25]

4. सई नदी– सई नदी गोमती नदी की एक उपनदी है। सई नदी का भी अत्यंत पौराणिक महत्व है। इसका वर्णन अयोध्याकाण्ड में है। चित्रकूट जाते समय भरत जी ने सई के तट पर भी विश्राम किया था। यहाँ से फिर चित्रकूट के लिये प्रस्थान किये थे।

सई तीर बसि चले बिहाने। श्रृंगबेरपुर सब निअराने।।[26]

चित्रकूट से वापस आते समय सई को पार करके ही गोमती में स्नान किया था–

सई उतरि गोमती नहाये। चौथे दिवस अवध पुर आये।।[27]

5. गंगा नदी– रामचरितमानस में गंगा को पतित पावनी प्रख्यापित किया गया है। इसका उल्लेख मानस में कई स्थानों पर हुआ है। बालकाण्ड में मुनि विश्वामित्र के साथ यज्ञ रक्षा हेतु जाते समय राम लक्ष्मण गंगा के तट पर पहुँचते है–

चले राम लछिमन मुनि संगा। गये जहाँ जग पावनि गंगा।।[28]

वनवास काल में श्रृंगवेरपुर पहुँचने पर श्री राम को गंगा जी के दर्शन प्राप्त होते है।

उतरे राम देवसरि देखी। कीन्हि दण्डवत हरषु विसेषी।।
गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला।।[29]

जानकी सीता ने माता गंगा से सकुशल वापस लौटने का वरदान भी प्राप्त किया था–

सिय सुरसरिहि कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी।।
पति देवर संग कुशल बहोरी। आइ करौ जेहि पूजा तोरी।।[30]

गंगा जी ने सीता को कुशलता पूर्वक वापस लौटने का आशीर्वाद भी प्रदान किया था–

प्रान नाथ देवर सहित, कुशल कौंशला आइ।
पूजिहि सब मन कामना सुजसु रहिहि जग छाइ।।[31]

वनवास से वापस लौटकर सीता जी ने गंगा की पूजा भी की थी–

तब सीता पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी।।
दीन्हि असीस मुदित मन गंगा। सुन्दरि तव अहिवात अभंगा।।[32]

पौराणिक मान्यताओं के अनुसार राजा भगीरथ ने अपने 60000 पुरखों को मोक्ष प्रदान कराने हेतु ब्रह्मा जी के कमंण्डल से गंगा जी को मुक्त कराया था तथा उनका धरावतरण हुआ था। इसीलिये गंगा जी का एक नाम भागीरथी भी है।

6. यमुना नदी– यमुना का एक नाम कालिन्दी भी है। कालिंद पर्वत से उद्‌भूत होने कारण इन्हें कालिंदी अथवा कालिंदजा भी कहते हैं। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार भगवान सूर्य यमुना के पिता तथा मृत्यु के देवता यम इनके भाई हैं। व्रज क्षेत्र में यमुना का अत्यधिक महत्व है। कृष्ण की समस्त बाल लीलायें इसी कालिन्दी यमुना के तट पर संपादित हुयी थी। रामचरितमानस में अयोध्याकाण्ड में यमुना जी का वर्णन है। वन मार्ग में चलते हुये संगम के बाद श्रीराम लक्ष्मण और सीता जी यमुना तट पर पहुँचते हैं तथा इसी यमुना के किनारे किनारे चलकर चित्रकूट की तरफ प्रस्थान करते हैं।

पुनि सिय राम लखन कै जोरी। जमुनहि कीन्हि प्रनाम बहोरी।।
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रवि तनुजा कइ करत बडाई।।[33]

श्री राम के वनवास से वापस लौटते समय भी श्रीराम ने सीता जी को पुष्पक विमान से ही कालिंदी यमुना के दर्शन कराये थे –

बहुरि राम जानकिहि देखाई। जमुना कलिमल हरनि सुहाई।।[34]

यमुना नदी गंगा की ही भाँति भारतवर्ष की एक प्रमुख नदी है। यह गंगा की सहायक नदी के रूप में प्रवाहमान हैं। प्रयाग में इनका संगम गंगा जी से होता है और यही पर वह अपने आपको भागीरथी गंगा में समाहित कर देती है।

7. मंदाकिनी नदी– मंदाकिनी नदी यमुना की सहायक नदी है। यह मध्यप्रदेश के सतना जिले से निकल कर उत्तर प्रदेश के कर्वी नामक स्थान पर यमुना में समाहित हो जाती है। चित्रकूट प्रवास के समय इसी नदी के रामघाट पर श्रीराम स्नान करते थे। अत्रि ऋषि तथा माता अनुसुइया का आश्रम इसी नदी के तट पर अवस्थित था। मंदाकिनी का उल्लेख रामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड में हुआ है। कहा जाता है कि अत्रिप्रिया अनुसुइया ने अपने तप बल के प्रभाव से इस नदी को प्रकट किया था। इसे गंगा जी एक धारा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है।

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तप बल आनी।
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि।।[35]

8. गोदावरी नदी– गोदावरी नदी दक्षिण भारत में स्थित अन्य समस्त नदियों से बडी है तथा महाराष्ट्र राज्य के नासिक जिले के पहाडियों से निकली है। इसे दक्षिण गंगा भी कहा जाता है। अरण्यकाण्ड में गोदावरी नदी का उल्लख है। इसी गोदावरी के तट पर गिद्धराज जटायू से श्रीराम की प्रथम भेट हुयी थी और यही पर पर्ण कुटी का निर्माण करके राम लक्ष्मण और सीता निवास किया करते थे।

गीधराज से भेंट भइ, बहु विधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु, रहे परन गृह छाइ।।[36]

पंचवटी इसी गोदावरी के तट पर अवस्थित थी तथा इसी स्थान पर लंकाधिपति रावण ने माता जानकी का हरण किया था। स्वर्णमृग का वध करने के बाद राम गोदावरी के तट पर अवस्थित अपने आश्रम में पहुँचते है तथा सीता विहीन आश्रम पाकर अत्यंत दुःखी हो जाते है।

अनुज समेत गये प्रभु तहॅवा। गोदावरी तट आश्रम जहॅवा।।
आश्रम देखि जानकी हीना। भये विकल जस प्राकृत दीना।।[37]

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामचरितमानस में 8 नदियों का प्रमुख रूप से वर्णन प्राप्त होता है। ये नदियाँ अत्यंत महत्व की है। इनके उल्लेख के बिना राम कथानक पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता। ये सदैव सदानीरा रहने वाली नदियाँ रामायण कालीन जनजीवन की आधारभूता थी। यह तत्कालीन पर्यावरण की पोषक थी। समस्त वनप्रदेश इन्ही नदियों के जल से अभिसींचित था तथा चारों ओर हरीतिमा व्याप्त थी। समस्त वृक्ष तथा वनस्पतियाँ फूलों तथा फलों से आच्छादित रहती थी। रामायण काल में इन्ही नदियों के जल से सिंचाई करके कृषि कार्य सम्पादित होता था तथा चारों तरफ धन धान्य की प्रचुरता थी आज के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में नदियाँ उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी रामायण काल अथवा उसके बाद। इसीलिये नदियों का संरक्षण तथा उनकी स्वच्छता अत्यंत आवश्यक हो जाती है। यद्यपि स्वतंत्रता के बाद देश की सरकारों ने सरिताओं को अपनी कार्ययोजना में प्रमुख स्थान दिया प्रदान किया है तथा इनके स्वच्छता तथा संरक्षण के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं, तथापि सिर्फ सरकार को ही नही अपितु समस्त जन मानस को इस दिशा में सार्थक प्रयास करने होंगे। तभी हम इस पवित्र जल धारा को जीतन धारा बनाने में समर्थ हो सकेंगे।

संदर्भ सूची :

1 तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड
2. वही, बालकाण्ड
3. वही, बालकाण्ड
4. वही, बालकाण्ड
5. वही, बालकाण्ड
6. वही, बालकाण्ड
7. वही, बालकाण्ड
8. वही, बालकाण्ड
9. वही, बालकाण्ड
10. वही, बालकाण्ड
11. वही, उत्तरकाण्ड
12. वही, बालकाण्ड
13. वही, उत्तरकाण्ड

14. वही, उत्तरकाण्ड
15. वही, उत्तरकाण्ड
16. वही, उत्तरकाण्ड
17. वही, उत्तरकाण्ड
18. वाल्मिकि रामायण, बालकाण्ड, पंचम सर्ग
19. तुलसीदास : रामचरितमारस, बालकाण्ड
20 तुलसीदास : रामचरितमारस, अरण्यकाण्ड
21. तुलसीदास : रामचरितमारस, अयोध्याकाण्ड
22. तुलसीदास : रामचरितमारस, अयोध्याकाण्ड
23. तुलसीदास : रामचरितमारस, बालकाण्ड
24. तुलसीदास : रामचरितमारस, अयोध्याकाण्ड
25. तुलसीदास : रामचरितमारस, अयोध्याकाण्ड
26. तुलसीदास : रामचरितमारस, अयोध्याकाण्ड
27 तुलसीदास : रामचरितमारस, अयोध्याकाण्ड
28. तुलसीदास : रामचरितमारस, बालकाण्ड
29. तुलसीदास : रामचरितमारस, बालकाण्ड
30 तुलसीदास : रामचरितमारस, बालकाण्ड
31. तुलसीदास : रामचरितमारस, बालकाण्ड
32. तुलसीदास : रामचरितमारस, लंकाकाण्ड
33. तुलसीदास : रामचरितमारस, अयोध्याकण्ड
34. तुलसीदास : रामचरितमारस, लंकाकाण्ड
35. तुलसीदास : रामचरितमारस, अयोध्याकाण्ड
36. तुलसीदास : रामचरितमारस, अरण्यकाण्ड
37. तुलसीदास : रामचरितमारस, अरण्यकाण्ड

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

भारत में दलितों की सामाजिक–आर्थिक अवस्था और संवैधानिक प्रावधान

डॉ0 मुहम्मद इकबाल खाँ
एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग,
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

भारत एक विशाल कृषि प्रधान देश है। इसमें अनेक सामाजिक समूह एवं श्रेणियाँ पायी जाती हैं जिनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति एक–दूसरे से भिन्न है। कुछ आर्थिक दृष्टि से साधन सम्पनन हैं लेकिन इसके विपरीत अधिकतर समूह आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त पिछड़े हुए हैं। यही वह वर्ग है जो सामाजिक दृष्टि से निम्न हैं और जिसे हीन भावना से देखा जाता रहा है, जिसका सामाजिक तिरस्कार किया जाता है। भारतीय समाज में सदियों पुरानी छुआछूत जैसी बुराई का यही वर्ग शिकार हुआ है। इस वर्ग का समाज में अत्यधिक उत्पीड़न किया गया। इनका जीवन शिक्षा तथा सुविधाओं का अभाव, दुःख एवं अपमान का जीवन रहा है। जब हम ''दलित'' शब्द का प्रयोग करते हैं जो हमारा अभिप्राय इसी दुर्बल वर्ग से है। इसे ''दलित वर्ग'' के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। भारत में 'दलित' शब्द का प्रयोग साधारणतया अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजात एवं अन्य पिछड़े वर्गों के ऐसे व्यक्तियों के सम्बन्ध में किया जाता है जो गरीबी रेखा के नीचे अपना जीवन–यापन कर रहे हैं।[1] रामचन्द्र वर्मा के अनुसार, दलित शब्द का अर्थ है ''मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ, विनिष्ट किया हुआ।''[2]

दलितों के सामाजिक–आर्थिक पिछड़ेपन का कारण भारत में सदियों से विद्यमान वर्ण–व्यवस्था थी। चार वर्ण– ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र थे। इस व्यवस्था को मजबूती मनु के 'धर्मशास्त्र' ने प्रदान की। इस व्यवस्था के बाहर शादी करने पर शूद्र व्यक्ति को सख्त सजा दी जाती थी। चीनी यात्री फाह्यान जो चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और ह्वेनसांग जो हर्षवर्धन के समय में भारत आये थे, के वृत्तान्त दलितों की शोषित, तृरस्कारपूर्ण, अपमानजनक, अभावपूर्ण, सामाजिक–आर्थिक स्थिति का वर्णन करते हैं। वर्ण–व्यवस्था के निचले पायदान पर स्थापित शूद्र को अपने वर्ण से बाहर जाकर व्यवसाय तथा शादी करने आदि की छूट नहीं थी। इनमें ऊपर के वर्णों द्वारा सेवा का कार्य लिया जाता था। 2011 की जनगणना के अनुसार 16.4 प्रतिशत अर्थात् 20.14 करोड़ लोग दलित थे।[3] आज भी अनेकों ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जब अनुसूचित जाति के लड़के के किसी ऊँची जाति की लड़की से शादी की, जो एक बड़े झगड़े का कारण बना। उदाहरण– धर्मपुरी जिला तमिलनाडु, 7 जून 2013 यहाँ अनुसूचित जाति के लड़के इलावरसान ने बनियार जाति की लड़की दिव्या से अन्तर–जातीय विवाह कर लिया। इससे गुस्साये बनियार जाति के लोगों ने अनुसूचित जाति के लोगों पर हमला किया। उनकी सम्पत्ति को लूट लिया और घरों में तोड़–फोड़ की। इसकी वजह से एक बड़ा जातीय संघर्ष खड़ा हो गया। इस संघर्ष को खत्म करने के लिए अपने समाज के लोगों के दबाव में लड़की ने तलाक ले लिया।[4] दिव्या ने टाइम्स ऑफ इण्डिया को बताया कि– "My husband and I are under huge pressure. I have decided to sacrifice my love, my marriage, for the sake of a society that is cated-obsessed, and for the sake of my mother."[5]

भारतरत्न डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर जिनको 'दलितों के मसीहा' के नाम से सम्बोधित किया जाता है उन्होंने दलितों को स्वतंत्रता, आर्थिक तथा सामाजिक समानता दिलाने के लिए

जीवनभर संघर्ष किया। उनके अनुसार ''जाति के आधार पर भेदभाव करना गुलामी से भी ज्यादा बुरा है। गुलामी के मालिक की जिम्मेदारी है कि वह उसके खाना, कपड़ा, मकान की व्यवस्था करे और उसे ठीक हाल में रखे। समय के साथ मालिक की यह जिम्मेदारी भारत में खत्म हो गयी लेकिन जाति नामक बीमारी से आज भी ग्रसित हैं।''[6]

डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर का मानना था कि इंसान–इंसान के बीच जो सामाजिक रूकावटें हैं उन्हें समाप्त किया जाये और मनुष्य की पहचान उसके काम के आधार पर हो न कि सदियों से मानी जाने वाली व्यवस्था 'जन्म' के आधार पर।[7] सीधे अर्थों में कह सकते हैं कि समाज में विद्यमान असमानता को समाप्त किया जाये और सभी को सामाजिक न्याय दिलाया जाए। इसके लिए 'राजनीतिक लोकतन्त्र' की स्थापना की जाए। यह लोकतंत्र ठीक तरह से काम कर सके इसके लिए आर्थिक तथा सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना की जाए। जाति–व्यवस्था को समाप्त किया जाए जिसने भारतीय सामाजिक व्यवस्था को सबसे अधिक कमजोर किया है।[8] देश के संसाधनों के समान वितरण के लिए 'लोकतांत्रिक समाजवाद' को लाया जाए। यह संसदात्मक प्रजातंत्र का स्थान ले। डॉ0 अम्बेडकर का समाजवाद यह कहता है कि ''किसी सम्पत्ति का हक एक वर्ग को शक्तिशाली करेगा और जो दूसरे के दुःख का कारण बनेगा।''[9] अम्बेडकर का समाजवाद कार्ल मार्क्स के समाजवाद से भिन्न है क्योंकि उन्होंने कभी क्रान्तिकारी समाजवाद की बात नहीं कही। उनका उद्देश्य यह था कि लोकतंत्र में किसी एक वर्ग का वर्चस्व न रहे और सामाजिक–आर्थिक मामले जनता द्वारा समय के साथ निश्चित किये जाएँ। इसके लिए संवैधानिक व्यवस्था का प्रयोग किया जाए। संविधान में प्रावधान बनाया जाए जिससे कि निर्बल वर्ग का शोषण रूक सके। मोरिस जोन्स का कहना है कि ''भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की यह एक सबसे बड़ी उपलब्धि है।''[10]

दलितों की सामाजिक–आर्थिक समस्याएँ–

भारतीय समाज में दलितों की समस्याएँ अनेक हैं जो निम्न प्रकार है–

1. **अस्पृश्यता की समस्या–** यह दलितों की प्रमुख गम्भीर समस्या रही है। भारतीय समाज में सदियों तक दलितों को अस्पृश्यता के नाम पर अनेक मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी का कहना था कि ''अस्पृश्यता जिस रूप में आज हिन्दू धर्म में प्रचलित है यह भगवान तथा मनुष्य दोनों के ही विरूद्ध है। अतः अस्पृश्यता एक विष की भाँति है जो हिन्दू धर्म को खाये जा रही है। मेरे विचार में हिन्दू शास्त्रों में सामूहिक दृष्टि से इसकी कहीं भी स्वीकृति नहीं है।'' अस्पृश्य व्यक्तियों को रहने के लिए शहर या ग्राम से बाहर मकान बनाने पड़ते थे। उन्हें सार्वजनिक स्थानों जैसे– कुँओं, होटलों, तालाबों आदि के प्रयोग पर प्रतिबन्ध था।[11]
2. **अत्याचार एवं शोषण की समस्या–** दलितों पर अत्याचार और शोषण रोज अखबार की सुर्खियों में रहता है। दलितों की धोखे से जमीन छीन लेना, काम लेकर कम पैसे देना या न देना, महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार एवं शोषण आदि प्रमुख हैं।[12]
3. **आर्थिक सुविधाओं का अभाव–** अस्पृश्यता के कारण दलितों का समाज में निम्न स्थान रहा। वर्ण–व्यवस्था के आधार पर श्रम–विभाजन ने इनकी आर्थिक स्थिति को अच्छा नहीं होने दिया। क्योंकि इन लोगों को अपने वर्ग से बाहर जाकर या उच्च व्यवसाय करने की अनुमति नहीं थी। आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण दलित वर्ग अपने बच्चों को शिक्षा नहीं दिला सका। इसका एक कारण यह था कि दलित वर्ग को शिक्षा की सुविधाओं से वंचित रखा गया जिससे कि निम्न व्यवसाय ही कर सकें।

दलितों की समस्याओं के समाधान के लिए भारतीय संविधान में किये गये प्रावधान–

भारतीय संविधान निर्माण–सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर ने दलितों के उत्थान तथा उन्हें सामाजिक न्याय और आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए भारतीय संविधान में निम्नलिखित प्रावधान किये–

अनुच्छेद–14 भारत राज्य क्षेत्र में निवास करने वाले सभी व्यक्ति समान हैं। यह अधिकार स्वदेशी या विदेशी, सभी नागरिकों को प्राप्त है। यह अधिकार भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला है क्योंकि इसके अभाव में नागरिकों को दिये जाने वाले सभी अधिकार व्यर्थ हैं। इस अधिकार का साधारणतया अर्थ यह है कि कानून और राज्य की नजर में सभी व्यक्ति समान हैं। कानून बनाते समय या कानून को लागू करते समय राज्य किसी नागरिक के साथ कोई भेदभाव नहीं करेगा। इसके अलावा प्रत्येक नागरिक को अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए न्यायालय की शरण लेने का अधिकार है। न्यायालय ने अपने निर्णय के माध्यम से यह स्पष्ट कर दिया है कि जन्म, जाति, स्थान या अन्य कारणों के आधार पर किसी भी नागरिक को विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होगा। यहाँ यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि राज्य यदि अमीर पर अधिक कर लगाता है और गरीब पर कम कर या कुछ सुविधाएँ देने के सम्बन्ध में स्त्री और पुरुष में भेद करता है तो इसे असमानता नहीं माना जायेगा।

अनुच्छेद 15(1)– इस अनुच्छेद के माध्यम से सामाजिक समानता स्थापित करने का प्रयास किया गया है। धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म–स्थान के आधार पर राज्य द्वारा किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा। अनुच्छेद 15(2) उपरोक्त के आधार पर किसी भी नागरिक को दुकानों, होटलों, सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश से नहीं रोका जा सकता है। ठीक इसी प्रकार राज्य द्वारा पोषित कुँओं, तालाबों, स्नान घाटों, सड़कों या सार्वजनिक स्थानों के प्रयोग से किसी नागरिक को नहीं रोका जा सकता है। इस अनुच्छेद के तहत सभी नागरिक समान हैं लेकिन यदि राज्य स्त्रियों तथा बच्चों के कल्याण के लिए कुछ विशेष सुविधाएँ प्रदान करना चाहता है तो कर सकता है। ठीक इसी प्रकार सामाजिक और आर्थिक अवस्था में सुधार के लिए या सामाजिक उन्नति के लिए अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्ग के लिए राज्य को विशेष व्यवस्थायें बनाने का अधिकार है। इसको असमानता नहीं माना जायेगा।

अनुच्छेद 16– इस अनुच्छेद के माध्यम से सामाजिक समानता स्थापित करने का प्रयास किया गया है। इसका उद्देश्य यह है कि देश के सभी नागरिकों को सरकारी पद बगैर किसी भेदभाव के समान रूप से उपलब्ध कराये जाएं। इसी के अन्तर्गत अनुच्छेद 16(4) के तहत अनुसूचित जाति, जनताति, पिछड़ा वर्ग, आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को आरक्षण प्रदान किया गया है। संसद अगर चाहे तो कुछ नौकरियों के सम्बन्ध में निवास स्थान की शर्त भी लगा सकती है। इसके अतिरिक्त अगर कोई ऐसी संस्था है जो किसी धर्म या सम्प्रदाय से सम्बन्धित है तो उस सम्प्रदाय विशेष के व्यक्ति को उस संस्था का सदस्य या अधिकारी बनाया जा सकता है जिससे कि वह व्यक्ति अपने धर्म विशेष की समस्याओं को बेहतर ढंग से निपटाए और कार्य में पारदर्शिता लाई जा सके।

अनुच्छेद 17– इस अनुच्छेद का विशेष महत्व है क्योंकि इसके माध्यम से सदियों से विद्यमान अस्पृश्यता की भावना को समाप्त किया गया। अगर कोई व्यक्ति अपने आचरण से या अस्पृश्यता के आधार पर किसी को अयोग्य ठहराता है तो यह कानून के अनुसार दंडनीय अपराध होगा। इसको रोकने के लिए भारतीय संसद ने 'अस्पृश्यता अपराध अधिनियम 1955' पारित किया।

अनुच्छेद 23– इस अनुच्छेद का मौलिक अधिकार के रूप में सम्मिलित करने का विशेष महत्व है क्योंकि इसने सदियों से विद्यमान श्रम की कुरीतियों को ही दूर नहीं किया बल्कि मनुष्यों को इस बात के लिए सचेत किया कि बेगार, बलपूर्वक श्रम लेना, मनुष्यों का क्रय–विक्रय करना, गैर कानूनी है और दण्डनीय अपराध है। सरकार ने इस अधिकार को और मजबूती प्रदान करने के लिए बंधुआ मजदूरी को 1975 में अवैध घोषित कर दिया। अनुच्छेद 24 बच्चों के लिए इस अनुच्छेद का विशेष महत्व है क्योंकि इसके माध्यम से 'बालश्रम को निषेध' घोषित कर दिया गया और यह व्यवस्था की गई कि 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को ऐसे किसी कार्य पर नहीं लगाया जायेगा जिससे उनके स्वास्थ्य और जान का खतरा हो। यह अधिकार बच्चों के सभी प्रकार के शोषण को रोकने के लिए प्रभावी साबित हुआ। 2002 में शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित करके 14 वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गई। अगर सरकार शिक्षा के अधिकार में संशोधन करके निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था 14 वर्ष की जगह 16 वर्ष तक कर देती है तो सभी बच्चे हाईस्कूल तक की शिक्षा ग्रहण करने में कामयाब होकर आई0टी0आई0 संस्थान से तकनीकी शिक्षा ग्रहण करने में समर्थ होंगे। इस तकनीकी शिक्षा के आधार पर छोटे–छोटे व्यवसाय करने में कामयाब हो जायेंगे और आत्मनिर्भर जीवन व्यतीत कर सकेंगे। शिक्षा के अधिकार को शक्तिशाली बनाने के लिए उपरोक्त बदलाव आवश्यक है।

अनुच्छेद 28– इस अधिकार के माध्यम से सरकारी शिक्षण संस्थाओं में किसी धर्म विशेष की शिक्षा पर रोक लगायी गई है। यह वह शैक्षिक संस्थाएँ हैं जो राज्य से आर्थिक सहायता प्राप्त करती हैं। इसके अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति को किसी धर्म विशेष की शिक्षा देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। यह व्यवस्था राज्य का धर्म निरपेक्ष चरित्र प्रदर्शित करता है।

अनुच्छेद 29– यह अधिकार भारतीय नागरिकों के प्रत्येक वर्ग को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को सुरक्षित रखने का अधिकार प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, कोई भी शैक्षिक संस्था जो राज्य से सहायता प्राप्त है प्रवेश के सम्बन्ध में जन्मस्थान, जाति, धर्म, भाषा आदि के आधार पर भेदभाव नहीं कर सकता।

अनुच्छेद 46– इसके अंतर्गत राज्य को निर्देशित किया गया है कि उन संस्थानों की सहायता करें जो जनकल्याण के लिए प्रयत्नशील है और इनके कार्य करने से समाज में आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक न्याय की प्राप्ति होगी।

अनुच्छेद 49– सामाजिक न्याय प्राप्त करने की दृष्टि से यह अनुच्छेद बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें राज्य को निर्देशित किया गया है कि वह समाज के कमजोर वर्ग जैसे अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक तथा आर्थिक हितों की रक्षा के साथ–साथ इनके हर प्रकार के शोषण को रोकेगा और उन्हें न्याय प्रदान करने के लिए उचित कदम उठायेगा।

अनुच्छेद 146– यह अनुच्छेद उन राज्यों से संबंधित है जिनमें अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों की संख्या बहुत अधिक है। इन राज्यों जैसे– बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश तथा उत्तर–पूर्व के राज्य को उपरोक्त जातियों की सुरक्षा तथा कल्याण के लिए 'एक मंत्री' नियुक्त करने का अधिकार है।

अनुच्छेद 330 और 332– अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों को निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में समुचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए ''लोकसभा तथा राज्य विधान सभाओं'' में ''आरक्षण'' दिया गया है।

अनुच्छेद 335– सामाजिक नयाय की प्राप्ति के लिए अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों को सरकारी नौकरियों में आरक्षण दिया गया है।

अनुच्छेद 338–विशेष प्रावधान के तहत भारत के राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त है कि वह 'एक अधिकारी' नियुक्त करे जो अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के हालातों के सम्बन्ध में समय–समय पर उसे सूचित करे या रिपोर्ट दे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. डॉ0 एस0सी0 सिंघल– भारतीय शासन एवं राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ0 411–412
2. Google; संक्षिप्त शब्द सागर– रामचन्द्र वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, नवम संस्करण, 1987, पृ0 468
3. Google; "Half of India's Dalit Population lines in 4 states- Times of India", 2nd March 2019.
4. Dontha Prashanth-land, laobur and caste: Mapping the Evidences. The Indian Economic Journal, Journal of the Indian Economic Association, Special Issue, Dec. 2013.
5. Times of India, June 2013, p. 159.
6. C. Raja Sekar-Ambedkar Ideas for uplifting of weaker section through adoping people friendly approach policy on Human Resources Development. The Indian Economic Journal, Journal of Indian Economic Association, Dec. 2013, p. 43.
7. Ibid., p. 43.
8. G.S. Lohande, "Shim Ramji Ambedkar – A Study in Social Democracy", 1977, Starting Publishers, New Delhi, p. 23.
9. Dr. B.R. Ambedkar, Mahad Magazine, 1962.
10. Morris Jones, "The Govt. and Policies of India", 1964; pp. 205-206.
11. डॉ0 एस0सी0 सिंघल– भारतीय शासन एवं राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ0 412
12. वही, पृ0 412

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

विश्रामपुर का संत

(सत्ता के भद्रजनों की पतन गाथा)

राकेश कुमार पाण्डेय
शोधछात्र
खरडीहा महाविद्यालय, गाजीपुर

संत शब्द अत्यधिक पवित्र शब्द है। यह शब्द यह संकेत करता है कि इसे धारित करने वाला एक पवित्र, सदाचारी निष्कपट, व्यवहार रखने वाला तथा भोगों से सर्वथा दूर एक पुण्यात्मा ही होगा। सामान्य तौर पर ऐसा होता भी है किन्तु यदि वर्तमान का अवलोकन करें तो इस विकृत समाज में आज संत शब्द अपना अस्तित्व खोता हुआ दृष्टिगत होता है। संत तुलसी ने संत संत के हृदय की नवनीत के समान बताया और उसे नवनीत से बढ़कर प्रख्यापित किया है।

संत हृदय नवनीत समाना।
कहा कबिन पर कहैं न जाना।।[1]

समाज की आवश्यकताओं और भोग विलास की अनंत इच्छाओं ने उसे संत से असंत बना दिया है। वह संत का वेश धारण तो कर लेता है किन्तु उसके अंदर में स्थित भोग भावना उसे असंत सा व्यवहार करने पर मजबूर कर देती है। संत का चोला धारण कर वह समस्त अनैतिक कृत्य करता है और समाज की नजरों में धूल झोंकता है। रामचरितमानस की एक तनु–प्रताप भानु की कथा तथा कालेनेमि प्रकरण दृष्ट्व्य है। समय उसके पाखण्ड का भेदन करता है और उसका असली स्वरूप सामने आने पर फिर शेष बचता है तो सिर्फ अपमान और कुंठा। कुंठाग्रस्त व्यक्ति अपना प्राणान्त तक कर बैठता है। विश्रामपुर का संत उपन्यास इसी तथ्य की पृष्टि करता प्रतीत होता है। श्रीलाल शुक्ल का यह उपन्यास 1998 में राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया। इस उपन्यास की कथावस्तु आचार्य विनोबा भावे के भूदान आंदोलन पर आधारित है। यह उपन्यास आचार्य विनोबा भावे के सिद्धांतों तथा गाँधीवादी विचारधारा में निहित मूल्यों व सिद्धांतों की टूटती श्रृंखला हैं इसके कथाक्रम में एक भद्र पुरुष जो राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक सभी प्रकार की हैसियत रखता है किन्तु चारित्रिक तथा नैतिक रूप से सर्वथा अधोपतित है, कि पतन गाथा है। कथाक्रम की समस्त पृष्ठभूमि राजनीतिक आधार पर निर्मित है। यह समकालीन जीवन की ऐसी महागाथा के रूप में मानी जा सकती है। जिसका फलक अत्यन्त विस्तीर्ण है। यह स्वातंत्र्योत्तर भारत में सत्ता समीकरण के सिद्धांत पर आधारित हमारी लोकतांत्रिक त्रासदी की सूक्ष्म पड़ताल करती है। इसके अंतर्वस्तु में महत्वाकांक्षा छल–कपट अतृप्ति, कुंठा आदि की जकड़न है। यह सामंती व्यवस्था व प्रवृत्तियों की उद्घाटक है। इसी के सहारे जीवन में सार्थकता की खोज का प्रयास भी करती है। इसमें उपन्यासकार ने समाज के अंतरंग और बहिरंग दोनों का भेदन किया है।

उपन्यास की कथावस्तु कुंवर जयन्ती प्रसाद सिंह की जीवन गाथा के रूप में सामने आती है। जयंती प्रसाद सिंह एक सत्ता लोलुप तथा कामुक प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं। जयंती प्रसाद वैसे तो राजनीतिक स्तर पर बहुत सफल है किन्तु पारिवारिक स्तर पर उतने ही असफल। वे

शोषण की परम्परा के प्रतीक हैं। किशोरावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक उनकी शोषण की यह परंपरा उनके जीवन में विद्यमान है। वह राजनीति के शिखर पर है और कई महत्वपूर्ण राजनीतिक पदों पर कार्य कर चुके हैं। अब वह राज्यपाल के पद को सुशोभित कर महामहिम बन गए हैं। इन सब के बावजूद ढलती उम्र में भी उनकी कामवासना बिल्कुल भी कम होने का नाम नहीं लेती है। वह अपने को विनोबा भावे के सिद्धांतों के अनुगामी तो बताते हैं किन्तु उनके मूल्यों व आदर्शों पर चलते नहीं हैं। कथाक्रम का प्रारंभ इसी बिन्दु से होता है–''जिस समय राजभवन के दीवान खाने में राज्य के मुख्यमंत्री महामहिम से मिलने का इंतजार कर रहे थे खुद महामहिम अपने कक्ष में एक सपना देख रहे थे यह हल्के बुखार में हल्के नाश्ते के बाद नींदका सपना था।''[2]

महामहिम मुख्यमंत्री से मिलने के लिए इंकार कर देते हैं क्योंकि उनका ए0एस0ओ0 उनकी तबियत खराब होने की बात मुख्यमंत्री को बताता है। जयंती प्रसाद सिंह की जीवन गाथा भी लगभग इसी शताब्दी के समानांतर ही रही है। विनोबा भावे द्वारा प्रस्तावित भूदान यज्ञ में उन्होंने बढ़–चढ़कर भाग लिया था। इसके अनुसार चारों ओर सब भूमि गोपाल की है। यह मंत्र जोर शोर से चल रहा था जबकि दूसरी ओर हथियारों के बल पर कुछ लोग किसानों की भूमि को प्राप्त करना चाहते थे। डॉ0 मुरली मनोहर प्रसाद सिंह इसे सही अर्थों में नई कथा भूमि की तलाश का परिणाम मानते हैं। उनके अनुसार–''राग दरबारी' यदि स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की भदेश गाथा थी, तो विश्रामपुर का संत' सत्ता के भद्रजनों की पतन गाथा है।''[3]

जयंती प्रसाद सिंह यद्यपि इस समय 80 वर्ष की अवस्था को पार कर रहे हैं फिर भी उनका हृदय उनको 25–26 वर्ष का नौजवान ही घोषित करता है। और वह आज भी किसी युवती की बाँहों में पड़े रहना चाहते हैं। वह भूदान आंदोलन में महज इसलिए शामिल होते हैं क्योंकि उन्हें अपनी राजनीतिक पृष्ठभूमि को और मजबूत बनाना है। पद और सत्ता की लोलुपता उनके मन में हमेशा बनी रहती है। ऊँचे–ऊँचे पदों को प्राप्त करने के बाद भी उनकी नारी लोलुपता कहीं किसी से छुपी नहीं है। यहाँ तक कि अपने पुत्र की प्रेमिका और गोदान की एक कार्यकर्ता सुंदरी नामक युवती के प्रति भी बहुत आकर्षित होते हैं और उसे अपने बाहुपाश में भरने की कोशिश करते हैं। जयंती प्रसाद पहले एक जमींदार हुआ करते थे और स्वतंत्र भारत में अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए वह तरह–तरह की राजनीतिक चालें चला करते थे। अंग्रेजों के जमाने में भी वे मलाईदार पदों पर मलाई काट चुके हैं। अपने इसी गुण के नाते वह 80 साल की उम्र में भी गवर्नर के पद पर आसीन रहते हैं और अपनी पद व सत्ता लोलुपता का प्रदर्शन करते हैं। उसके बंधन को वह नहीं मानते हैं और अपने से कई वर्षों से कम उम्र की महिलाओं के प्रति आकर्षित होते रहते हैं।

एक दिन कुंवर साहब के गाँव में आचार्य विनोबा भावे जी आते हैं और वह अपने गाँव में उनकी धूमधाम से अगवानी करते हैं। वह आचार्य विनोबा को एक लिफाफा देते हुए कहते हैं कि यह भूदान नहीं, उन दोनों गाँव के सभी किसानों की ओर से और खुद मेरी ओर से यह ग्रामदान है। आचार्य ने उनके प्रति आभार व्यक्त किया। भारत का ही नहीं संसार में अपने ढंग का शायद यह पहला ग्रामदान है। सुंदरी से कुंवर साहब का पहला परिचय इसी भूदान आंदोलन में हुआ था और भूदान आंदोलन के दूसरे कार्यकर्ता निर्मल भाई ने सुंदरी के बारे में परिचय कराया था। सुंदरी के साथ एक दूसरी महिला सुशीलाबेन भी थी। सुंदरी और सुशीलाबेन के रहने का सारा इंतजाम भूदान आंदोलन के कार्यालय में कर दिया गया। सुंदरी को देखकर कुँवर साहब को लगा कि मानो प्रेम की बरसात में भीग रहे हों। कुँवर जयंती प्रसाद का एक बेटा है जिसका नाम विवेक था। वह उनका इकलौता लड़का था। विवेक इस समय दिल्ली विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र

का प्रोफेसर था। उसका निर्मल भाई और सुंदरी से खूब पटती थी। मन ही मन वह सुंदरी को अपनी प्रेमिका समझता था। किन्तु पिता का उसके साथ व्यवहार देखकर उसे दुख होता है। विवेक मार्क्सवादी था और अक्सर गाँधीवादी विचारधारा का माखौल उड़ाया करता था। सुंदरी को देखकर कुंवर जयंती प्रसाद सिंह को लगता था कि उनकी वही बी0ए0 के दिनों की प्रेमिका जैसी ही है। वह सुंदरी में जयश्री का ही प्रतिबिम्ब देखते थे। कुंवर जयंती प्रसाद सिंह तथा जयश्री के बीच के सम्बन्ध की भी बहुत अनोखी कहानी थी। सच्चे मामलों में जयश्री ही उनकी प्रेयसी थी। पहले जब जयंती प्रसाद जयश्री की ससुराल में जाकर पढ़ते थे तो एक दिन जयश्री ने रात को 1.00 बजे उन्हें अपने कमरे में बुलाया था, किन्तु वे हिम्मत न कर सके। आखिरकार जयश्री ही जयंती प्रसाद के कमरे में चली आई। दोनों के बीच आपसी संबंध बने। इस तरह जयंती प्रसाद का चरित्र अत्यधिक गिरा हुआ सिद्ध होता है। जयंती प्रसाद सुंदरी से भी वही चाहत रखते थे किन्तु संदरी उनके बेटे विवेक से प्रेम करती थीं। इसी चक्कर में पड़कर सुंदरी ने दोनों का परित्याग कर दिया क्योंकि वह एक साथ किसी की माता व पत्नी दोनों नहीं बन सकती थी। आखिर एक बार विवेक के पिता जयंती प्रसाद ने ही उसको अपनी बाँहों में घसीट लिया था। इस प्रकार पिता के कारण उनका पुत्र विवेक आजीवन कुंवारा रह जाता है। एक बार कुंवर जयंती प्रसाद सिंह सुंदरी और सुशीला को राव साहब से भी मिलाने के लिए ले जाते हैं। वहां राव साहब तीनों की अच्छे से आवभगत करते हैं। कुछ समय पश्चात जयश्री अपने पति के साथ रहने के लिए लंदन चली जाती है और वहां एक भीषण सड़क दुर्घटना में जयश्री की मृत्यु हो जाती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार के लिए कानून लाए गए। जयंती प्रसाद उसी कानून का समर्थन करने के लिए भूदान आंदोलन में भाग लेते हैं। इसी बीच सुंदरी की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु का समाचार पाकर वे विश्रामपुर जाते हैं और वहां अचानक से रहने की घोषणा कर देते हैं। वहां भी वह एक संत का जीवन नहीं व्यतीत कर पाते हैं, क्योंकि उन्हें सुख सुविधाओं को भोगने की लत जो लग गई थी। भूदान आंदोलन स्वतत्रंता प्राप्ति के बाद का सबसे बड़ा आंदोलन कहा जा सकता है। इस आंदोलन का लक्ष्य है कि गांव में कोई भी भूमिहीन न रहने पाएऔर ग्राम दान का लक्ष्य है कि कोई भी भूस्वामी गाँव में जमीन को न हड़प सके। इसलिए सभी लोग यही चाहते हैं कि गांव की जमीन सामूहिक रूप से सभी की होनी चाहिए। विनोबा भावे के विषय में जयंती प्रसाद का पुत्र विवेक कहता है–''आचार्य विनोबा भावे मामूली संत नीं है। उन्होंने भूदान आंदोलन नाम के हथियार की आजाद की है इसके पहले ही वार में एक तरफ तेलंगाना में साम्यवाद अधमरा होकर गिर गया दूसरी ओर बिहार और उत्तर प्रदेश में गांधीवाद के हाथ पाँव टूट गए।''[4]

इस उपन्यास में राम लौटन नामक एक किसान है जो भारतवर्ष के समस्त किसानों का प्रतिनिधित्व करता माना जा सकता है और जिसकी जमीन कुछ समय पहले सरकारी योजना के अन्तर्गत पैसे देकर और कुछ बिना पैसे दिए अंगूठा लगवा कर ले ली गईथी। आजकल यह बनारस शहर में रिक्शा चलाकर अपना पेट पालन करता है। विनोबा भावे के भूदान आंदोलन से उसके मन में उम्मीद की एक किरण जग उठती है। राम लौटन शहर से वापस आया है और वह जयंती प्रसाद से मिलकर अपनी जमीन वापस चाहता है। जयंती प्रसाद मुख्यमंत्री, गवर्नर और कृषि अधिकारी सभी के साथ पत्र व्यवहार करके राम लौटन की जमीन वापस दिलवाने की कोशिश करते हैं। इस पर दुबे महाराज नाम का एक दबंग व्यक्ति उनको धमकियां भी देता है। उसके गुंडे राम लौटन तथा अन्य किसानों की जमकर पिटाई भी करते हैं। इसी बीच एक ईमानदार अधिकारी की नियुक्ति होती है और वह किसानों की जमीन उनको वापस कर देता है।

जयंती प्रसाद के कारण ही उसके पुत्र विवेक की शादी सुंदर से नहीं हो पाती हैं इसी घटना से कुंवर जयंती प्रसाद का मन उन्हें धिक्कारता है और वह अपने को दोषी मानकर अत्यन्त व्यथित होकर बेतवा के जल में कूदकर अपना प्राण दे देते हैं। इस प्रकार बेतवा के जल में डूबने से जयंती प्रसाद की मृत्यु हो जाती है और एक पाखंडी संत का अंत हो जाता है।

विश्रामपुर का संत उपन्यास उस समय की राजनीति पर एक तीखा प्रहार है। कुछ ही समय पश्चात भारतीय राजनीति का वह दौर शुरू हो चुका था जब स्वाधीनता संग्राम में अपने प्राण न्यौछावर करने वाले और कई बार जेल की यात्रा करने वालों से अधिक किसी अभिजात्य बड़े नेता से संपर्क और औद्योगिक घरानों से सांठगांठ का महत्व बढ़ गया था। नेहरू युगीन राजनीति में अब इसको भी एक मूल्य के रूप में देखा जाने लगा था। इस प्रकार जयंती प्रसाद सिंह को पूरी कथा के केन्द्र में रखकर ही उपन्यासकार श्री लाल शुक्ल ने स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति का भयानक दृश्य जनसामान्य के सम्मुख उपस्थित करने का प्रयास किया है जिसमें तथाकथित संत की चोली धारण किये हुए एक पाखंड से परिपूर्ण व्यक्ति के जीवन वृत्त का पर्दाफाश होता है।

कुंवर जयंती प्रसाद जैसे लोग आज भी समाज में विद्यमान है। यदि हम आधुनिक भारतीय राजनीति का और सामाजिक व्यवस्था का मूल्यांकन करें तो हमें ऐसे अनेक लोग मिल जाएंगे जो अपनी ऊँची रसूख का प्रयोग कर सत्ता की आड़ में भद्र बनने की कोशिश तो करते हैं किन्तु वास्तविक रूप में वह पाखंड की प्रतिमूर्ति हैं। उनकी दृष्टि में नैतिक व सामाजिक मूल्यों का कोई महत्वनहीं होता। लोभ मोह माया व लिप्सा के वशीभूत होकर वास्तविक रूप से अपनी जीवन गाथा को एक कलंक गाथा बना देते हैं।

संदर्भ–ग्रन्थ सूची

1. तुलसीदास, रामचरित मानस–उत्तरकांड
2. श्री लाल शुक्ल; विश्रामपुर का संत, पृ0–07
3. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह; श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, पृ0–32
4. श्री लाल शुक्ल; विश्रामपुर का संत, पृ0सं0–174

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन

शोध–निर्देशक
डॉ0 आलोक कुमार मिश्र
सहायक आचार्य
शिक्षक–शिक्षा विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित वि0वि0)
प्रयागराज (उ0प्र0)

शोधार्थी
मनोज कुमार यादव
(एम0एड0)
नेहरू ग्राम भारती (मानित वि0वि0)
प्रयागराज (उ0प्र0)

सारांश

समस्या कथन ''माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना है। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। आजमगढ़ जनपद में स्थित यू0पी0 बोर्ड से सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों के सभी छात्र–छात्राओं को जनसंख्या माना गया है। आजमगढ़ जनपद स्थित यू0पी0 बोर्ड से सम्बद्ध माध्यमिक स्तर के चार विद्यालयों का आकस्मिक न्यादर्शन विधि द्वारा चयन किया गया है। पुनः प्रत्येक विद्यालय से 25–25 विद्यार्थियों का चयन किया गया है जिसमें इस प्रकार कुल 100 छात्र एवं 100 छात्राओं का चयन यादृच्छिक न्यादर्श विधि से किया गया है। उपकरण के रूप में अनुकुल हाइड, संजोत पेठे और उपिंदर धर (2002) द्वारा इमोशनल इंटेलिजेंस स्केल (ईआईएस) कूपर और सॉवाफ (1997) द्वारा फोर–कॉर्नरस्टोन मॉडल पर आधारित है। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि एवं क्रान्तिक अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया है। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि में अन्तर होता है अर्थात् शहरी क्षेत्र के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि ग्रामीण क्षेत्र के छात्र एवं छात्राओं की अपेक्षा उच्च है।

की–वर्ड– माध्यमिक, छात्र, छात्राएँ, शहरी, ग्रामीण, संवेगात्मक बुद्धि, अन्तर

प्रस्तावना–

'शिक्षा ही जीवन है, जीवन ही शिक्षा है' – इस कथन के अनुसार विभिन्न विचारकों ने एकमत से शिक्षा की आवश्यकता को स्वीकार किया है और माना है कि शिक्षा के अभाव में मानव विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। शिक्षा ही उसके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं सामाजिक विकास को दिशा प्रदान करती है। शिक्षा शब्द का स्त्रोत कुछ भी रहा हो परन्तु इसका अर्थ है कि बालक की जन्मजात शक्तियों का विकास अथवा मूल प्रवृत्तियों का शोधन या इन्द्रियों का प्रशिक्षण ताकि वह जीवन में अनुशासित रहे, बालक की सम्पूर्ण सम्भावनाओं का विकास।

शिक्षा में मनुष्य की शारीरिक अभिवृद्धि और उसके शारीरिक, मानसिक, भाषायी, संवेगात्मक एवं सामाजिक विकास का अध्ययन किया जाता है। मनुष्य की शिक्षा एवं विकास में उसके मानसिक स्वास्थ्य एवं उसके समायोजन की अहम् भूमिका होती है परन्तु आज हमारे समाज में संघर्ष, अनाचार एवं अत्याचार हो रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में आज आवश्यकता इस

बात की है कि हम अपने जीवन को किस प्रकार सुखी एवं सन्तुष्ट बना सकते हैं जिससे हमारा शारीरिक स्वास्थ्य ही नहीं बल्कि मानसिक स्वास्थ्य भी स्वस्थ रहे क्योंकि स्वस्थ मानसिक विकास के पदों पर चलकर मनुष्य अपनी शैक्षिक उपलब्धियों के उन उद्देश्यों को प्राप्त कर सकता है जिसके लिये वो इतने अथक प्रयास कर रहा है।

बालक राष्ट्र के अमूल्य निधि होते हैं। अतः किसी भी राष्ट्र को उन्नति एवं समृद्धि की ओर अग्रसर करने में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। परन्तु आज भौतिकवादी युग में मनुष्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के लिए तथा सामाजिक एवं नैतिक विवादों को शान्त करने में वही व्यक्ति अपना योगदान दे सकता है जो मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति हो। मानसिक स्वास्थ्य के द्वारा ही विद्यार्थियों में विनम्रता, सत्यता, सहिष्णुता, ईमानदारी, सहानुभूति, प्रेम, त्याग, अहिंसा जैसे अनेक श्रेष्ठ मूल्यों का विकास किया जा सकता है। मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति के समग्र संतुलन का परिचायक है और इसे हम व्यक्ति की ऐसी क्षमता के रूप में देखते हैं जो उसके व्यक्तिगत, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इच्छाओं एवं मानदण्डों में संतुलन स्थापित करती है। दूसरे शब्दों में यह व्यक्ति के पूर्व क्रियाकलापों तथा समायोजन को और उन्नत बनाने में सहायता प्रदान करने वाली क्षमता है। मानसिक स्वास्थ्य के लिए जीवन के किसी एक क्षेत्र में सुसमायोजित होना पर्याप्त नहीं है। मानसिक स्वास्थ्य से सम्पन्न शिक्षा ही विद्यार्थियों में शैक्षिक विकास के साथ–साथ सांस्कृतिक, व्यावसायिक, सामाजिक तथा नैतिक विकास में गतिशील एवं जागरुक बनाकर उनमें जीवन के प्रति उदार दृष्टिकोण को विकसित करती है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में सर्वाधिक बल संज्ञानात्मक एवं गत्यात्मक परिक्षेत्रों के उद्देश्यों की सम्प्राप्ति पर है। परिणामस्वरूप विद्यार्थी एवं अध्यापक इन्हें पूरा करने के लिए ज्ञान एवं कौशलों की सम्प्राप्ति को ध्यान में रखकर ही पाठ्यविषयों की योजना तैयार करते हैं। इस कारण एक परिक्षेत्र जिसका संबंध भावना, संवेगों पर नियन्त्रण, मूल्यों की स्थापना, निर्णायक शक्ति आदि से संबंधित है, द्वितीयक बनता जा रहा है। परिणामतः ईर्ष्या, द्वेष, मूल्यहीनता, संवादहीनता आदि अधिक प्रभावी होकर मनुष्य को वास्तविक अर्थों में मनुष्य बनाने में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं। साथ ही उसके अन्दर मानवोचित गुणों यथा – सामाजिकता, मूल्य, संवाद की क्षमता, संवेदना, संवेगों पर नियन्त्रण, सहिष्णुता, परहित, शान्तिप्रियता, संतोष आदि को विकसित नहीं होने दे रहे हैं इसका प्रभाव शैक्षिक संस्थाओं सामाजिक सम्बन्धों एवं व्यक्ति के स्वयं के जीवन पर अत्यन्त नकारात्मक ढंग से पड़ रहा है।

वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में यह आवश्यक है कि संज्ञानात्मक एवं गत्यात्मक परिक्षेत्रों के साथ–साथ भावात्मक परिक्षेत्र को भी विकसित करने की प्रक्रिया तेज की जाय। भावात्मक परिक्षेत्र के अन्तर्गत भावनाओं को समझना, व्यक्ति के संवेगों को समझना, उन्हें मूल्य प्रदान करना, संवेगों के औचित्य एवं अनौचित्य की समझ विकसित करना एवं तदनुरूप निर्णय लेना आता है। यदि बालक में संवेगात्मक बुद्धि उच्च होगी तो उसका अधिगम भी सकारात्मक रूप से प्रभावित होगा।

समस्या कथन–

''माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन।''

अध्ययन का उद्देश्य–

अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का अध्ययन किया गया है–

1. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. शहरी क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4- शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ–

अध्ययन में निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं का निर्माण कर अध्ययन किया गया है–

1. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. शहरी क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
4- शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध प्रविधि–

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। आजमगढ़ जनपद में स्थित यू0पी0 बोर्ड से सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों के सभी छात्र–छात्राओं को जनसंख्या माना गया है। आजमगढ़ जनपद स्थित यू0पी0 बोर्ड से सम्बद्ध माध्यमिक स्तर के चार विद्यालयों का आकस्मिक न्यादर्शन विधि द्वारा चयन किया गया है। पुनः प्रत्येक विद्यालय से 25–25 विद्यार्थियों का चयन किया गया है जिसमें इस प्रकार कुल 100 छात्र एवं 100 छात्राओं का चयन यादृच्छिक न्यादर्श विधि से किया गया है। उपकरण के रूप में अनुकुल हाइड, संजोत पेठे और उपिंदर धर (2002) द्वारा इमोशनल इंटेलिजेंस स्केल (ईआईएस) कूपर और सॉवाफ (1997) द्वारा फोर–कॉर्नरस्टोन मॉडल पर आधारित है। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि एवं क्रान्तिक अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया है।

परिकल्पनाओं का परीक्षण–

1. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन–

सारणी संख्या–1

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि में का मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, क्रान्तिक अनुपात मान

क्र. सं.	लिंग	संख्या (N)	संवेगात्मक बुद्धि		मानक त्रुटि (SE_m)	मध्यमानों का अन्तर (D)	क्रान्तिक अनुपात मान (C.R.)	सार्थकता स्तर
			मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)				
1.	छात्र	100	52.30	12.16	2.11	1.70	1.24	0.05 स्तर पर
2.	छात्राएँ	100	54.41	11.84				

निष्कर्षः $H_1 = \mu_1 - \mu_2 \neq 0$, 0.05 स्तर पर अस्वीकृत

$H_{01} = \mu_1 - \mu_2 = 0$, 0.05 स्तर पर स्वीकृत

अवकलित CR का मान = 1.24

198 आवृत्ति अंश (*df*) पर 0.05 सार्थकता स्तर का सारणी मान–1.97

उपर्युक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि CR का परिगणित मान 1.24 है, जो कि क्रान्तिक अनुपात के द्विपुच्छीय परीक्षण के लिए 0.05 सार्थकता स्तर के सारणीय मान 1.97 से कम है। तथा 0.05 सार्थकता स्तर पर भी CR का परिगणित मान सार्थक नहीं है। अतः शोध परिकल्पना (H_1) अस्वीकृत की जाती है तथा शून्य परिकल्पना (H_{01}) स्वीकृत की जाती है। इस प्रकार सारणी मान से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि में अन्तर नहीं होता है अर्थात् लिंग के आधार पर संवेगात्मक बुद्धि में अन्तर नहीं है।

2. शहरी क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन–

सारणी संख्या–2

शहरी क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि में का मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, क्रान्तिक अनुपात मान

क्र. सं.	लिंग	संख्या (N)	संवेगात्मक बुद्धि		मानक त्रुटि (SE_m)	मध्यमानों का अन्तर (D)	क्रान्तिक अनुपात मान (C.R.)	सार्थकता स्तर
			मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)				
1.	छात्र	50	56.34	11.81	1.14	2.30	0.495	0.05 स्तर पर
2.	छात्राएँ	50	57.48	11.17				

निष्कर्षः $H_1 = \mu_1 - \mu_2 \neq 0$, 0.05 स्तर पर अस्वीकृत

$H_{01} = \mu_1 - \mu_2 = 0$, 0.05 स्तर पर स्वीकृत

अवकलित CR का मान = 0.495

198 आवृत्ति अंश (*df*) पर 0.05 सार्थकता स्तर का सारणी मान–1.98

उपर्युक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि CR का परिगणित मान 0.495 है, जो कि क्रान्तिक अनुपात के द्विपुच्छीय परीक्षण के लिए 0.05 सार्थकता स्तर के सारणीय मान 1.98 से कम है। तथा 0.05 सार्थकता स्तर पर भी CR का परिगणित मान सार्थक नहीं है। अतः शोध परिकल्पना (H_2) अस्वीकृत की जाती है तथा शून्य परिकल्पना (H_{02}) स्वीकृत की जाती है। इस प्रकार सारणी मान से स्पष्ट है कि शहरी क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि में अन्तर नहीं होता है अर्थात् लिंग के आधार पर संवेगात्मक बुद्धि में अन्तर नहीं है।

3. ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन–

सारणी संख्या–3

ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि में का मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, क्रान्तिक अनुपात मान

क्र. सं.	लिंग	संख्या (N)	संवेगात्मक बुद्धि		मानक त्रुटि (SE_m)	मध्यमानों का अन्तर (D)	क्रान्तिक अनुपात मान (C.R.)	सार्थकता स्तर
			मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)				
1.	छात्र	50	48.26	11.23	3.08	2.30	1.34	0.05 स्तर पर
2.	छात्राएँ	50	51.34	11.81				

निष्कर्षः $H_1 = \mu_1 - \mu_2 \neq 0$, 0.05 स्तर पर अस्वीकृत

$H_{01} = \mu_1 - \mu_2 = 0$, 0.05 स्तर पर स्वीकृत

अवकलित CR का मान = 1.34

198 आवृत्ति अंश (*df*) पर 0.05 सार्थकता स्तर का सारणी मान–1.98

उपर्युक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि CR का परिगणित मान 1.34 है, जो कि क्रान्तिक अनुपात के द्विपुच्छीय परीक्षण के लिए 0.05 सार्थकता स्तर के सारणीय मान 1.98 से कम है। तथा 0.05 सार्थकता स्तर पर भी CR का परिगणित मान सार्थक नहीं है। अतः शोध

परिकल्पना (H_3) अस्वीकृत की जाती है तथा शून्य परिकल्पना (H_{03}) स्वीकृत की जाती है। इस प्रकार सारणी मान से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि में अन्तर नहीं होता है अर्थात् ग्रामीण क्षेत्र में लिंग के आधार पर संवेगात्मक बुद्धि में अन्तर नहीं है।

4. शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन–

सारणी संख्या–4

शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि में का मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, क्रान्तिक अनुपात मान

क्र. सं.	क्षेत्र	संख्या (N)	संवेगात्मक बुद्धि		मानक त्रुटि (SE_m)	मध्यमानों का अन्तर (D)	क्रान्तिक अनुपात मान (C.R.)	सार्थकता स्तर
			मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)				
1.	शहरी	100	56.91	11.44	7.11	1.63	4.36	0.05 स्तर पर
2.	ग्रामीण	100	49.80	11.57				

निष्कर्षः $H_1 = \mu_1 - \mu_2 \neq 0$, 0.05 स्तर पर स्वीकृत

$H_{01} = \mu_1 - \mu_2 = 0$, 0.05 स्तर पर अस्वीकृत

अवकलित CR का मान = 4.36

198 आवृत्ति अंश (*df*) पर 0.05 सार्थकता स्तर का सारणी मान–1.97

उपर्युक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि CR का परिगणित मान 4.36 है, जो कि क्रान्तिक अनुपात के द्विपुच्छीय परीक्षण के लिए 0.05 सार्थकता स्तर के सारणीय मान 1.97 से अधिक है। तथा 0.05 सार्थकता स्तर पर भी CR का परिगणित मान सार्थक है। अतः शोध परिकल्पना (H_4) अस्वीकृत की जाती है तथा शून्य परिकल्पना (H_{04}) स्वीकृत की जाती है। इस प्रकार सारणी मान से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि में अन्तर होता है अर्थात् क्षेत्र के आधार पर संवेगात्मक बुद्धि में अन्तर है।

निष्कर्ष–

अध्ययन में निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- शहरी क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि में अन्तर नहीं है अर्थात् शहरी क्षेत्रों के छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि समान है। इसके समान अध्ययन **दीक्षित एवं दीक्षित (2016)** ने अध्ययन निष्कर्ष के रूप में पाया

कि– उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के प्रतिबल एवं संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।

- ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि में अन्तर नहीं होता है अर्थात् ग्रामीण क्षेत्र में लिंग के आधार पर संवेगात्मक बुद्धि बराबर है।
- माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक बुद्धि में अन्तर होता है अर्थात् शहरी क्षेत्र के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि ग्रामीण क्षेत्र के छात्र एवं छात्राओं की अपेक्षा उच्च है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- दीक्षित एवं दीक्षित (2016). उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में प्रतिबल एवं संवेगात्मक बुद्धि का अध्ययन, *ह्युमिनिस्ट्ज एण्ड सोशल सांइसेस : इन्टरडिस्पिलनरी एपरोच*, वॉल्यूम–08, इश्शू–01, पृ0 51–53
- पुनेठा, दीपा एवं अन्य (2017). उत्तराखण्ड राज्य में उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सांवेगिक बुद्धि का लिंग, संकाय एवं बोर्ड के सन्दर्भ में अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च*, 3(10), पृ0 245–249
- मित्तल (2012). साइटेड इन सिंह, अजायब (2017). माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की सांवेगिक बुद्धिमत्ता का भौगोलिक चरों के साथ सहसम्बन्ध का अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांसड एजूकेशनल रिसर्च*, वॉल्यूम–2, इश्शू–5, पृ0 332–335
- सिम एवं बंग (2016). इमोशनल इंटेलिजेन्स, स्ट्रेस कोपिंग एण्ड ऐडजेस्टमेन्ट टू कॉलेज लाइफ इन नर्सिंग स्टूडेन्ट्स, इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ बॉयो–साइंस एण्ड बॉयो–टेक्नोलॉजी, 8(3), पृ0 21–32
- त्रिपाठी, सुनील मणि एवं सिंह, जय (2017). जौनपुर जिले के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्रों का शालेय संवेगात्मक वातावरण का उनके शैक्षणिक उपलब्धि पर होने वाले प्रभाव का अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांसड एजूकेशनल रिसर्च*, वॉल्यूम–2, इश्शू–1, पृ0 38–42

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

शिक्षा का ऐतिहासिक दृष्टिकोण

डॉ0 शालिनी यादव
पूर्व शोध छात्रा
डॉ0रा0म0लो0 अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद

सामान्यतः भारतवर्ष में शिक्षा विषय पर चिंतन और शैक्षिक विमर्शो में इतिहास तथा ऐतिहासिक पृष्टिभूमि के महत्व को नहीं समझा गया है अगर समझा गया होता तो आज इसका भी अपना इतिहास होता। भारत वर्ष में शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोजित कार्यक्रमों में यदि शिक्षा इतिहास के विषय में यदि कुछ अनुदान मिलता है। तो उसमें अनेक समितियों आयोग और सरकारी अनुभागों की एक बेहिसाब सूची प्राप्त होती है। इन स्थिति तथा परिस्थिति में शिक्षा के लिए ऐतिहासिक दृष्टिकोण और ऐतिहासिक समझ विकसित नहीं होती है।

प्रश्न यह उठता है कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण तथा समझ की क्या आवश्यकता है। शिक्षा के इतिहास के लेखन या अध्ययन किस किस प्रकार से शिक्षा के ऐतिहासिक समझ को विस्तार रुप प्रदान करने में मदद कर सकता है। यह सोच किसी तरह की शैक्षिक शब्दावाली चिंतन विचार ऐतिहासिक अवधारणा को परिप्रेक्ष्य में रुप प्रदान करती है। क्या ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में नीतियों विचारों कार्यक्रमों तथा उन विषयों पर होने वाले बाद–विवादों को बेहतर करने में मदद करता है? तथा शिक्षा की इतिहास के संबंध से शिक्षा के क्षेत्र के कर्त्ताओं–परिजन प्रधायक तथा अधिकार बालक तथा उनके कृत्यों तथा उद्देश्यों पर क्या रोशनी पड़ती है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के अभाव में आज के समय उनकी प्रश्नावली तथा परियोजना आधुनिक प्रतीत होती है। किस प्रकार से ऐतिहासिक अनुभव, अवधारणा, मान्यताएं एवं प्रथाएं वर्तमान समय में आज समाहित हो रही है। किस प्रकार हमारे दैनिक जीवन में शिक्षा खुद ही एक बहुमूल्य समय में समाज विद्वानों विचारों के माध्यम से रचना की जा रही है। तथा यह आधी अधूरी समझ सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक संदर्भो में शिक्षा फंस गयी है। इसकी उपेक्षा करके शिक्षा को अलग प्रकार की स्वतंत्र जादुई शक्ति प्रदान कर देती है।

शिक्षा के इतिहास में वर्तमान समय की शिक्षा शास्त्रीय आधारों, मान्यताओं परिपरियों तथा ब्यवहारों तथा उनके प्रकारों के जड़ो तथा विकास के विषय में अपनी समझ को और भी गहराई प्रदान कर सकता है। आधुनिक समय का पाठ्यक्रम किस–किस से गुजर रहा है। उस पर भूतकाल की क्या छाया है तथा स्कूली पाठ्यक्रम में कौन से विषय का कब विलय हुआ तथा उसे कब निकाला गया इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर शिक्षा का इतिहास द्वारा ही दिया जा सकता है। शिक्षा का इतिहास एक तरफ से स्कूलो की बंद दुनिया विषय पाठ्यक्रम, परीक्षा, समय–सीमा, खोज अनुशासन प्रातःकालीन सभाओं तथा आयोजन के द्वारा इतिहास परिदृश्य की ओर इशारा करता है। दूसरी ओर उसमें कार्यरत ब्यक्तियों के अनुभवों कार्यों मेहनत सुख–दुःख संघर्षों का नव निर्माण करता है।

इसके साथ ही शिक्षा के ऐतिहासिक समझ को आधुनिक शिक्षा ब्यवस्था का उदय उसके वर्तमान राज्य औद्योगिक लोकतंत्र के उतार चढ़ाव राष्ट्रराज्यों के विकास तथा राष्ट्रवाद की भावना के विकास में शिक्षा की भूमिका को समझने में हम सभी सहारा ले सकते है। जहाँ एक तरफ

आधुनिक शिक्षा का इतिहास क्रमशः प्रगति, विकास तथा स्वतंत्रता की व्याख्या करता है। वहीं दूसरी ओर ज्ञान मीमांसा हिंसा औपनिवेशिक आधिपत्य एवं विकास पर आधारित हिंसा तथा शोषण में भागीदारी का ऐतिहासिक विवेचना हमारी वर्तमान समाज शिक्षा तथा विकास की गुण, दोष, दिशा–दशा तथा विकल्प पर भी सोचने के कारण और प्रश्न दे सकता है।

शिक्षा के इतिहास के कतिपय प्रश्न–

शिक्षा का इतिहास किसके प्रश्नों को इंगित करता है तथा किस प्रकार के ऐतिहासिक साक्ष्यों तथा संदर्भो का प्रयोग करता है? क्या शिक्षा का इतिहास सिर्फ एक कथा है अथवा उसमें वृत्तांत तथा व्याख्या आपस में मिले हुए है? इतिहासकार का दृष्टिकोण प्रश्नात्मक तथा ऐतिहासिक किस प्रकार से प्रभावित करते हुए भूतकाल की शिक्षा का वृत्तांत तथा व्याख्या की रचना करते है? क्या शिक्षा का इतिहास बीते हुये समय की एक गैर विवादित एक रेखीय कालक्रम आधारित विवरण है या जिस अवधारणाओं का प्रयोग ऐतिहासिक घटनाओं को संरक्षित करने में किया गया है तथा उनकी बदली हुई समझ तथा उन पर उठते हुए प्रश्न उस ऐतिहासिक वृत्तांत तथा उसके महत्व तथा कार्यकारण प्रभाव ही प्रश्नों के घेरे में लाती है?

हम क्या शिक्षा के इतिहास को समाज के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक इतिहास से विषयांतर रखकर ही समझा जा सकता है? शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन में क्या संबंध है? क्या शिक्षा सिर्फ बाह्य दबाओं, प्रभावों, ताकतों से ही तय होती है। शिक्षा भी सामाजिक कारणों, आर्थिक सामाजिक ढाचों राज्य निर्माण सामाजिक अथवा सत्ता संबंधों तथा सांस्कृतिक संघर्षों को दर्शाती है, रचती है तथा इसका आपस में सह संबंध है। अगर हम शिक्षा का विद्यालय को अपने में एक बंद संस्था के तरह भी देखें तो उनका क्या इतिहास होगा? शिक्षा के सामाजिक इतिहास का विचारों के इतिहास तथा उनके प्रभावों से क्या संबंध है (टायक 1935)

इतिहास एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण प्रभावः–

कतिपय इतिहास क्या है? इसकी परिभाषा लगातार बदल रही है तथा यह आज विचारणीय तथा बहस का विषय बना है तथापि हम यह कह सकते हैं कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अर्थ है किसी भी विचार, घटना, व्यक्ति, समूह, संस्था, प्रक्रिया वस्तु आदि को समय और समाज के संदर्भ में रखकर देखने से है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते है कि उन्हें समय क्रम में रखते हुए समझा जाये। जो आज के समय में है यह आवश्यक नहीं है कि कल भी वैसा ही वह रहेगा। जो भूतकाल में था उसे वर्तमान के पैमानों और संदर्भ में नहीं बल्कि उस समय विशेष तथा संदर्भ विशेष में समझा जा सकता है। उस समय का चश्मा लगाकर ही उस समय में जाया जाये। संभावना यही है कि भूतकाल को समझने तथा उसके पुनर्निर्माण की यह यात्रा आज के आधारभूत प्रश्नों, चिंताओं तथा समस्याओं की सारगर्भित जड़े संदर्भ और उनकी वंशानुक्रमागत यात्रा खोजने से उपजी हो।

किंतु ऐसे किसी भी प्रयास को समझना होगा कि अलग–अलग समय में कोई संस्था, समस्या, संबंध, विचार की उत्पत्ति किस प्रकार से हुई होगी क्या बदलाव होगा तथा पुनर्निर्माण एवं निरंतरता बनी रही पृथक पृथक समय में बदलाव एवं निरंतरता यह अनिवेषण ऐतिहासिक दृष्टिकोण का हिस्सा है।

इस प्रकार बालक–बालिकाओं के उम्र के हिसाब से कक्षा का विभाजन के हिसाब से कक्षा का विभाजन, स्कूलों का प्लेग्रुप, नर्सरी, प्राथमिक, माध्यमिक, विद्यालयों में विभाजित करना

भी ऐतिहासिक घटना है। विद्यालयों के भवन की रचना, कक्षाओं का आकार प्रकार तथा डेस्क, बोर्ड, ब्लैकबोर्ड, चार्ट, पाठ्य पुस्तकों, खेल के मैदान, खोज, परीक्षा– प्रतिमाह, तिमाही, छमाही सलाना, मूल्यांकन यह सभी ऐतिहासिक आविष्कार है। अगर हम औपनिवेषिक काल के शैक्षिक योजनाओं पंचवर्षीय, वार्षिक शिक्षा प्रगति रिपोर्टों, शिक्षा विभाग के अधिकारीगणों का पत्राचार, समिति रिपोर्ट पब्लिकपत्र तथा निवेदनों आदि को देखे तो हम यह कह सकते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में धर्म, नैतिक–मूल्य शारीरिक शिक्षा अनुशासन आदि विषयों को समझा गया है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह संरचना हमे यह समझने में भी मदद कर सकती है मारियामान्टेसरी के भारत में सात साल रहने प्राध्यापकों को प्रशिक्षण देने उच्यस्तर पर नर्सरी स्कूलों के खुलने का आपस में सह संबंध है या नहीं और अगर है तो क्या?

शिक्षा का ऐतिहासिक दृष्टिकोण तथा उपागमः–

कतिपय इतिहास एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण की चर्चा करते हुये यह कहा जा सकता है इतिहासकार के दृष्टिकोण का ऐतिहासिक अनुसंधान के सवालों, अन्वेषण, खोजे गये साक्ष्य तथा साक्ष्यों का क्या संबंध है। यह समझने के लिये किस प्रकार के विभिन्न दृष्टिकोणों और उपागमों के द्वारा शिक्षा के इतिहास के अध्ययन को प्रभावित किया है क्या प्रश्न किया गया है, हम उनके कुछ दृष्टिकोणों उपागमों के विषय में बात करेंगे।

पाश्चात्य देशों में शिक्षा के इतिहास का प्राथमिक समय राष्ट्र–राज्य के निर्माण के संदर्भ में शिक्षा को समझने का रहा है। यह माना जा सकता है कि हर राष्ट्र–राज्य की विशिष्टता के कारण ही प्रत्येक देश की शिक्षा की अपनी पहचान होगी। साथ ही साथ यह भी माना गया है कि पूरे देश में शिक्षा का विकास एक ही प्रकार से होगा। ऐसी मान्यता है कि स्थानीय इतिहास राष्ट्रीय शिक्षा के इतिहास का एक छोटा रुप था। या फिर वह राष्ट्रीय मानक एवं कथा को उसी रुप में स्थापित करता है। अथवा उल्लंघन है इसके कारण राष्ट्र समरुपीय इकाई था, इसमें द्वंद्व और संघर्ष को जगह नहीं दी गयी है। इतिहास लेखन की इस नई परिपाठी को नए उपागमों से चुनौती मिली। स्थानीय इतिहास को राष्ट्रीय समष्टि का अंश मानकर देशी शैक्षणिक ढ़ाचे की स्थानीयता पर ध्यान दिया गया। भारतीय शिक्षा का इतिहास अलग–अलग राज्यों का भी इतिहास है। राजघरानों अथवा राजे रजवाड़ों के अधीन हिस्सों तथा अंग्रेजो के अधीन भारत की शिक्षा के इतिहास में एक रुप नहीं है। बॉम्बे प्रैसीडेंसी, मद्रास प्रैसीडेंसी, बंगाल प्रैसीडेंसी में निजी मशीनरी और सरकारी विद्यालयों का समर्थन तथा उनकी संख्या में अंतर में अलग–अलग प्रकार की शिक्षा व्यवस्था की रचना की है। श्रावणकोण, बड़ौदा एवं कोल्हापुर के राजाओं ने जनशिक्षा तथा हाशिये के समूहों की शिक्षा के लिए उठाए गए कदम–राजपूताना और सौराष्ट्र–काठियावाड़ के शासकों के द्वारा बनाई हुई तथा लागू की गई नई नीतियों से किस प्रकार समान और अलग थे। इसका लेखन स्थानीय विशेषताओं को ध्यान में रखकर ही लिखा जा सकता है। साथ ही साच उन भौगोलिक परिवेश में कौन से समूह किन सामाजिक सुधारों तथा आन्दोलनों सेना भर्ती के कारण देश विदेश में हुए प्राप्त अनुभव और स्थानीय लोगों के बीच लौटकर शुरू किया गया प्रयास व्यापार खेती तथा लघु उद्योग में हुए बदलावों से प्रभावित होकर शिक्षा तक अपनी पहुँच कब बनाने लगे इसका इतिहास केवल राष्ट्रीय राजनेताओं के कार्यों तथा परिभाषित राष्ट्रीय उद्देश्यों पर नही किया जा सकता है। स्कूलों की उपलब्धता एवं शैक्षणिक परिणामों को स्थानीय आर्थिक, सामाजिक, संरचनाओं बच्चों और बालिकाओं के श्रम, जनसंख्या, कर नियमों और राजनीति के साथ में देखा गया। स्थानीय इतिहास साक्ष्य परियोगों की सफलता एवं असफलता विवादों तथा समझौतों के साथ शिक्षा का राष्ट्रीय इतिहास की ताजपोशी की जा सकती है। (ब्रिग्स 2000:154–158)

शिक्षा के इतिहास के राष्ट्रीय कथा को दूसरी चुनौती तुलनात्मक इतिहास से मिली। भिन्न–भिन्न समाजों के बीच एक रूपता तथा भिन्नता को ढूढने में इतिहासकारों ने एक ओर तो उन श्रेणियों तथा परिभाषाओं को आधारशिला रखा है जिनके आधार पर एक ही सामाग्री से एक से प्रश्न की जा सके (ब्रिग्स 2000:154)। वहीं दूसरी और दिखाया गया है कि कही दूसरे स्थान पर पैदा हुए विचारों परियोग और नीतियाँ अन्य देशों तक पहुॅची। उन्होंने वहा की शैक्षिक व्यवस्था और नीतियों पर प्रभाव डालकर अथवा नकल करके की गयी है।

राष्ट्रवाद तथा राष्ट्रराज्य निर्माण के विषय में हुई घटित घटनाओं, बहसों और अनेक ऐतिहासिक अनुसंसाधनों ने नित नये प्रश्नों को उठाये है। इनमें राष्ट्र के अन्दर भिन्न–भिन्न सामाजिक समूहों और हितों के टकराव एवं राष्ट्र की परम्परा एवं भविष्य के विषय में हुई बहसे भी ऐतिहासिक अनुसंधान का विषय बनी। प्रश्न यह है कि अगर राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता की भावना से उपजी उभार और मजबूत होने की क्रिया में राष्ट्र अपनी परम्परा का आविष्कार (एरिक हॉल्सवॉय) करते है तो उसमें शिक्षा का क्या आधारभूत भूमि का है? क्या राष्ट्रीय परम्पराओं के सामने शिक्षा तथा पाठ्यक्रम को प्रभावित कर रही थी? क्या राष्ट्रीय परम्परा की परिभाषाएँ किसी एक या कई समूहों के द्वारा अन्य समूहों पर अपना स्थान बनाये रखने या स्थापित करने के लिए प्रयोग कर रही थी? औपनिवेशिक भारत में राष्ट्रीय शिक्षा पर हुई इन बहसों ने अंग्रेजी, संस्कृत, अरबी, फारसी का स्थान विज्ञान तथा तकनीकि शिक्षा का महत्व बालिकाओं को शिक्षा दी जाय अथवा नही कब तक उन्हे पढ़ाया जाय या धार्मिक और नैतिक शिक्षा स्कूली पाठ्य चर्चा और कार्यकल्पों का हिस्सा हो प्राथमिक शिक्षा तथा उच्च शिक्षा में किसको अधिक महत्व दिया जाय जैसे प्रश्न उठाये गये (देखे भट्टाचार्य 2003)। इन बहसों के आधार पर ही राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के निर्माण की एक सहमति के बनाय उसके उद्देश्यों, स्वरूपों, मूल्यों, हितों के टकरावों के विषय में समझा जाने लगा।

शिक्षा के इतिहास की एक मुख्य अंग परम्परा विचारों का इतिहास है। शुरूआत की समय में इसका अर्थ है प्रमुख चिन्तकों तथा शिक्षा शास्त्रीयों के विचारों के अध्ययन से माना जाता था किन्तु अब बौद्धिक एवं सांस्कृतिक इतिहास अपने विचारों की कड़ी तथा भिन्न–भिन्न मीडिया द्वारा विचारों के प्रचार प्रसार को भी ऐतिहासिक अनुसंधान का विषय बनाता है। ऐसी दशा शिक्षा के इतिहास का को महान शिक्षा शास्त्रियों को कार्यों एवं व्यक्तित्व के ऐतिहासिक विवेचना तक सीमित नही रखा गया। बौद्धिक एवं सांस्कृतिक उपागम के तहत विचारों के परिवर्तन तथा उन पर अन्य विचारों के प्रभाव की भी खोज की जाने लगी। यह पूछा गया कि छपाई के आविष्कार और प्रचार में इस प्रकार से साक्षरता के इतिहास को बदल दिया। औपनिवेशित भारत में प्रिंटिंग प्रेसों के अलग–अलग राज्यों फैले तथा विद्यालयी पाठ्य पुस्तकों तथा कालेजों की पुस्तकों के व्यापार में उनकी उपस्थिति और प्रभाव के अध्ययनों की संख्या बहुत कम है। (देखे स्टॉर्क 2007) इसी तरह से भारतवर्ष शिक्षा का इतिहास अधूरा अथवा न के बराबर ही रहा है। वस्तुतः आधुनिक समय के ''संचार क्रांन्ति'' के सन्दर्भ में बात करें तो इण्टरनेट सातों पहर चलने वाली टी0वी0 नये विज्ञापन की दुनिया तथा आई0सी0टी0 के शिक्षा के इतिहास के विषय में नये खोज और और भी प्रश्न खड़ा करते है। किन्तु कुछ प्रश्न प्राचीन है जो ''भाषा'' का महत्व तथा सामाजिक नियंत्रण के प्रक्रिया को नित नये सन्दर्भों के साथ उठाते हैं। दूसरी ओर बदलता हुआ विचार सीखने–सिखाने क्रिया है। मशीनरी मानव पुस्तक तथा अन्य विषयों को पढ़ने वाला पाठक पुस्तकालय तथा कम्प्यूटर तथा मोबाइल पर एकान्त में पुस्तक पढ़ने की व्यक्तिगत संस्कृति में अनूर और अनुभव के विषय में नये अनुसंधान की मांग करते है।

आधुनिक शिक्षा के इतिहास में यह बहुत बड़ा सामाजिक बदलाव है तथा नारीवाद एवं जेंडर के इतिहास के उपागमों एवं दृष्टिकोणों के उभार के साथ दिखाई देता है। अब प्रश्न यह उठता है कि शिक्षा के इतिहास में समाज के कमजोर वर्ग को किनारे पर धकेल दिया गया तथा कमजोर वंचित लोगों का सरकार तथा राज–काज में नगण्य हिस्सेदारी रखने वाले वर्ग की क्या जगत, आवाज और इतिहास की ब्रिटेन देश के सन्दर्भ में विषय में प्रश्न उठया गया है कि क्या 19वीं शताब्दी में गरीब तथा कमजोर अथवा मजदूर वर्ग शिक्षा के प्रयास सामाजिक नियंत्रण की प्रयत्न की? क्या 1850–70 के काल में एक बंद वर्ग पर आधारित शिक्षा व्यवस्था बनाने का प्रयत्न हुआ तथा क्या इस व्यवस्था में बाद में बदलाव हुआ? विद्यालयों की उपलब्धता के अतिरिक्त विद्यालयी प्रक्रिया, शिक्षा पाने वालों का अनुभव क्या रहा होगा? क्या विद्यालय का मूल्य मध्यमवर्गीय मूल्य था या उपेक्षित वर्ग के मूल्य थे? क्या पुरातन विद्यालय के समान नए विद्यालय इन नये विद्यालयों में मुख्यता नये विद्यालय इन उपेक्षित वर्ग के अधिक गुणवत्ता पूर्व थे। क्या वे उनकी आवश्यकताओं के लिए अधिक संवेदना युक्त या अधिनायकवादी और नौकरशाही अंदाज तथा नियम कानून के चलते यह स्कूल एक डरावने स्वप्न की भॉति थे? क्यों उपेक्षित वर्ग के बालक केवल मुक्त भोगी थे? मजदूर वर्ग अपने तथा अपने बच्चों के लिए शिक्षा का प्रयास कर रहा था (एलड्रिच 2000:260)?

इन प्रश्नों की ऐतिहासिक संरचना नये तरह के ऐतिहासिक स्त्रोतों की माँग करती थी। इंग्लैण्ड की शिक्षा व्यवस्था इतिहासकारों के निजी उपेक्षित वर्ग के स्कूलों उनके पंजीकरण रजिस्टरों तथा पाठ्यक्रमों को खोजा। उन लोगों ने मजदूर वर्ग के लिए चलाये जाने वाले रविवार के स्कूलों के साजों–सामानों एवं दस्तावेजों 19वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इंलैण्ड में प्रारम्भिक शिक्षा के कानूनों के उपरान्त मजदूर वर्ग के निजी विद्यालयों की संख्या में अवनति देखने को मिली।

भारत के विषय में सामाजिक इतिहास पर अधारित खोज और भी उपयोगी हो जाती है। यह हम याद करते हैं गरीब बच्चे अत्यधिक संख्या में विद्यालय से बाहर रहे हैं। शिक्षा के लिखित कागजातों में वंचित वर्ग की संख्या न के बराबर है तथा उच्चवर्गीय बालकों की शिक्षा में अनपढ़ अनुचर एवं स्त्रियाँ अपनी अलग पहचान बना रहे थे तो क्या यह परम्परा तथा आधुनिकता से एक साथ तैयार हुए इस शिक्षित वर्ग की शिक्षा का इतिहास इन अनुपस्थित तथा विना सुनी हुई आवाजों के बिना पूरा हो सकता है (देखे, कुमार नीताः 2005)

महिलावादी इतिहासकारों द्वारा शिक्षा के इतिहास में बालिकाओं एवं महिलाओं की शिक्षा की अनुपस्थिति की तरफ जानकारी देते हुए इतिहासकार विदों की चिन्तन एवं पद्धति दोनों के ही सामाजिक चरित्र पर प्रश्न खड़ा किया है। अव प्रश्न यह उठाया गया है कि इतिहास का निर्माता कौन है, इसे कौन बनाता है, किसका अनुभव पहल तथा संघर्ष इतिहास में स्थान प्राप्त करता है। किसके कार्यों पर अथवा भूमिका को अनदेखा किया जाता है इसके आलोचना के अनुरूप एक तरफ आरम्भिक शिक्षा को लेकर शिक्षा के विभिन्न सोपानों तक महिलाएँ पहुँच गयी। उनकी कक्षाओं में सक्रियता, उपस्थिति टिकने के वर्ष, पाठ्यक्रमों, परिणाम, अपेक्षाएँ एवं सेवा सम्बन्धित प्रश्न उठाए। दूसरी तरफ, शिक्षा संस्थानों में सामाजिक–लैंगिक एवं पूर्वकाल के आधार पर महिलायें क्या पढ़े तथा किस स्तर तक पढ़े उनका आचार–व्यवहार क्या हो, उनका वेश–भूषा क्या हो अनुशासन का अर्थ महिला प्राध्यापिकाओं के कार्य की स्थतियाँ एवं अपेक्षाओं के अनुसाधन के परिप्रेक्ष्य मे लाया गया।

महिलावादी नजरिये ने अनेक नए प्रश्न उठाये। क्या शिक्षा बालिकाओं को व्यस्क नारी की भूमिका निभाने के लिए तैयार करने हेतु दी जा रही थी? क्या गृह की जिम्मेदारियों को उठाती और उसके हेतु तैयार की जाती, बालिकाओं के लिए शिक्षा एवं विद्यालय का अर्थ बालकों जैसा ही था? माँ, बहन, पत्नी, मातृत्व तथा घरेलू भूमिका के साथ इस प्रकार में बालिकाएँ तथा स्त्रियों की शिक्षा पर पहुँच तथा उस शिक्षा का साजो–सामान को प्रभावित किया। यह बालिका और महिला श्रेणियों को आपस में संयुक्त कर देना चाहिए महिलाओं को अव्यस्क बालिका के समान निर्भर तथा कमजोर नही दिखाना होगा। क्या शिक्षा के इतिहास में बालिकाओं ने महिलाओं के अनुभव को नजर अन्दाज किया जाना, पड़े समाज और इतिहास में उनकी स्थिति स्थान वर्चस्व तथा दमन रिश्ता द्वारा जुड़ा हुआ है? क्या स्त्री होने को अर्थ है और अनुभव तथा वर्चस्व के नातो से जुड़ा है? क्या महिला होने का अर्थ है अनुभव वर्चस्व एवं सामाजिक स्त्रीकरण की अन्य वर्गो जैसे वर्ग, जाति नस्ल औपनिवेशिक आदि से जुड़ा है।

महिलावादी प्रश्नों में नजरिये ने शिक्षावादी को सभी सामाजिक संस्थाओं एवं प्रक्रिया के सामाजिक लैंगिक चरित्र के ऊपर प्रश्न करने के साथ नई स्त्रोतों को ढूंढने के लिए कहा जिसके माध्यम से महिलाओं को सही दिशा तथा दशा का चयन हो सके। सरकारी रपटों में इनका स्थान शून्य था। यह भी नही जानकारी हो पाती थी कि उनका उनके विषय में कैसी जानकारी एकत्रित की गई है कि किसी तरह से निजी स्त्रोतों के माध्यम से जैसे, पत्र, डायरी, आत्मकथाओं का प्रयोग किया पर इनमें भी अनेकों समस्यायें थी। क्योंकि ऐसे माध्यम वर्गीय महिलाओं के द्वारा लिखा जाना अधिक सम्भव था। है (पर्विस 2000–405–7) इस प्रकार से महिलावादी इतिहासकारों ने लिखित स्त्रोतों के साथ मौखिक स्त्रोतों का भी सहारा लिया ।

अतः यद्यपि इतना कहना ठीक होगा कि शिक्षा के इतिहास की समझ बदली है तथा नवीन प्रश्न एवं स्त्रोत शिक्षा के ऐतिहासिक स्वरूप की अच्छी समझ बनाने में समाज की मदद करेंगे।

lanHkZ%&

Silver, Harold (1983). Introduction in Education as History; Interpreting Nineteenth – and twentieth – century Education- London: Methuen , pp: 1: 14

'Aldrich, Richard (2000) Central Issues in history of education; in Ray Lowe (ed.) History of education : Major Themes , Vol. 1 Debates in the history of education, London: Routledge , pp: 255-263.

Briggs, Asa (2000) the study of the history of education : in Roy Lowe (ed.) history of education: major themes Vol. 1,

Debates in the history of education, London Routledge, pp 153-167

Bhattachrya, Sabyasachi, (2003), Introduction : in bhattacharya sabyasachi , bara Joesbh, Yagateb, Chinna Rao and sankhdher B.M., the development of women's education in india : A Collection of Documents 1859-1920 , New Delhi, kaniska publishers in association with education records research unit, Jawaharlal Nehru university. pp. ix.-xi viii,

Kumar, Nita (2005) mothers and non mothers: Gendering the pis course of education in south asia; Gender and history. Vol. 171 no. 1 / April.pp. 154-182

Tyack, David B. (1983) Foveword . in Harold silver, Education as history: interpreting Nineteenth – and twentieth – century education London: Methuen.pp: ix-xiii.

Nite, Dhiraj (2013) Memory and history unit 3 in problems of history knowledge, MA history care course MHC04 Monsoon semester. Delhi – Ambedkar University.

Bhatlacharya sabyasachi, (2003) Introduction : in Bhatlacharya sabyachi, yagali chinna Rao (ed) Education the nation : Documents of the discourse of national education in india 1880- 1920 new delhi : Kanishka Publisher in association with educational records research unit, jawahar lal Nehru university, pg ix – xx vii.

Purvis june (2000) the historiography of british education a feminist critigue : in Roy lowe (ed) history of education Major themes. Vol. 1 Debates in the history of education London: Routledge.pp: 394-410

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

बौद्ध धर्म में भारतीय संस्कृति : एक अध्ययन

डॉ0 अखिलेश कुमार पटेल
असि0 प्रोफेसर (संस्कृत)
कूबा पी0जी0 कॉलेज,
दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़

जिस समय भारत की धरा पर बुद्ध का आगमन हुआ, उस समय मत–मतान्तरों का जाल बिछा हुआ था जो बौद्धिक एवं व्यावहारिक दोनों क्षेत्रों को आक्रान्त किये हुए थे। उस समय हत्या, चोरी, व्यभिचारादि दोष वृहदमात्रा में विद्यमान थे, दान, त्याग, सेवा आदि का अभाव था। पाप–पुण्य का कोई आधार नहीं था। उस समय कोई विशेषमार्ग नहीं था जिसका दामन पकड़कर जनता शान्तिपूर्वक अपना जीवन–यापन कर सकें। इन विचारों में जनता इस प्रकार उद्विग्न तथा उलझी हुई थी कि उसे कुछ भी समझ नहीं आ रहा था। ऐसी दशा में भगवान बुद्ध अपने अमृतरूपी विचारों के साथ जनता के मध्य अवतीर्ण हुए। उनके विचारों में भौतिकता एवं आध्यात्मिकता का सम्मिश्रण था। इनके सन्तुलित एवं सम्मिश्रण से जिस जीवनविधा का उदय हुआ वही बुद्ध के अनुसार भौतिक जीवन था। जिसमें भारतीय संस्कृति की झलक स्पष्टरूप से देखी जा सकती है।

महात्मा बुद्ध ने अपने अनुयायियों के योग से संघ का निर्माण किया। भारतीय धर्म के इतिहास में यह प्रथम बार था जब गृहस्थों की भाँति भिक्षुओं के समाज का निर्माण हुआ। जिस प्रकार गृहीसमाज एक सुव्यवस्थित धरातल पर स्थित था उसके सभी क्रिया–कलाप नियमानुसार संचालित होते थे, उसी प्रकार भिक्षुओं के समाज का भी उदय हुआ। इस समाज को प्रव्रजित समाज कहा जाता है। यह समाज नियमों से सुनियन्त्रित होकर धर्म–व्यवस्था तथा अनुशासन के साथ कार्यरत हो चला। इनके कार्यकलाप गृहस्थों से भिन्न थे जहाँ गृहस्थों के अत्यधिक कार्य स्वार्थमूलक थे एवं स्व की परिधि से घिरे हुए थे वहीं पर प्रव्रजितों के कार्य परार्थ थे। इसके अन्तर्गत जिन–जिन कार्यविधाओं का उदय हुआ वे सभी कार्यविधाएँ दूसरों के सुख एवं हित के लिए थी। इस प्रकार जिस समाज का गठन हुआ उस समाज को भिक्षु समाज प्रव्रजित समाज या संघजीवन कह सकते हैं।

भगवान बुद्ध ने संसार का अवलोकन किया तथा सम्पूर्ण संसार को दुःख परिवारित पाया जिस प्रकार किसी सरोवर में कमलिनी, उत्पलविनी या पुण्डरीकिनी नामक कमलकुल आदि कुछ जल के भीतर, कुछ जल के सतह पर तथा कुछ जल के ऊपर विद्यमान होते हुए भी किसी न किसी रूप में जल में ही विद्यमान होते हैं। उसी प्रकार मनुष्य भी किसी न किसी रूप में दुःख से परिवारित है। ऐसे दुःख से घिरे मानव के रक्षार्थ भगवान बुद्ध ने अपने अर्जित ज्ञान राशि का समर्पण किया। उन्होंने दुःख से भयभीत नहीं होने का उपदेश दिया तथा उसके निवारणार्थ प्रयत्नशील रहने का उपदेश दिया।

अपारूता तेसं अमतस्स द्वारा
ये सोतवन्तो पमुचन्तु सद्धं।।[1]

उन्होंने बताया कि संसार में दुःख है किन्तु वह सनातन नहीं है वरन् कारणभूत है। अतः उन कारणों का निरोध कर उन दुःखों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। दुःखों की समाप्ति का एक निश्चित मार्ग है। इस प्रक्रिया को उन्होंने दुःख, दुःख समुदय, दुःख निरोध एवं दुःख निरोध मार्ग का उपदेश दिया।

इदं दुक्खं अरियसच्चं, इदं दुक्ख समुदयं अरियसच्चं इदं दुक्खनिरोधं अरियसच्चं इदं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं।।[2]

भगवान बुद्ध भिक्षुओं को सहजभाव से उपदेश देते हैं कि जाओ स्वाख्यातिधर्मानुरूप सम्यकरूप से दुःख की परिसमाप्ति के लिए ब्रह्मचर्य जीवन का पालन करो।

प्रव्रज्या की इच्छा रखने वाला व्यक्तिअपने केश तथा श्मश्रु का मुण्डन कराकर कषाय वस्त्र से अपने को आच्छादित कर लेता था, वह योग्य भिक्षुओं के सम्मुख घुटने के बल बैठकर अन्य भिक्षुओं को अंजलिबद्ध प्रणाम करता था एवं श्रद्धाचित्त से त्रिशरणगमन की याचना करता था, वह कहता था– मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ, मैं धर्म की शरण जाता हूँ, मैं संघ के शरण जाता हूँ। ऐसे कथन के पश्चात् उसकी प्रव्रज्या हो जाती थी इसे त्रिशरणगमन प्रव्रज्या कहा जाता था।

इमेहि तीहि सरणगमनेहि पब्वजं उपसम्पदंति।[3]

प्रव्रजित को सामान्य रूप से नैतिक शिक्षा तथा साधनमूलक आध्यात्मिक शिक्षा सुचारू रूप से प्राप्ति होती थी। इसके लिए दो पदों आचार्य एवं उपाध्याय की व्यवस्था की गयी थी। आचार्य एवं उपाध्याय के माध्यम से भिक्षुओं के सर्वांगीण विकास की शिक्षा चलने लगी। भिक्षु जिन सिद्धान्तों को उपाध्याय के माध्यम से सिखते थे आचार्य के माध्यम से उन्हें जीवन में अवतरित करते थे। आचार्य के साथ रहकर जीवन–यापन करने वाले भिक्षु को अन्तेवासी कहा जाता था यहाँ भी उनका परस्पर पिता–पुत्र का सम्बन्ध तथा पारस्परिक कर्तव्य का विधान है।

विद्यार्थी को उपाध्याय तथा आचार्य दोनों मिलकर धर्म एवं नैतिक शिक्षा प्रदान करते थे। विद्यार्थी शिक्षा को कितना ग्रहण करते हैं इसके अवलोकनार्थ समय–समय पर परीक्षण भी किया जाता था।

भिक्षुओं का जीवन त्याग का जीवन होता था। गृह के समस्त बन्धनों को समूल नष्ट कर वह इस जीवन को अपनाता था। भिक्षुओं को समाज में रहने के लिए वस्त्र तथा शरीर धारण करने के लिए कुछ अन्न की आवश्यकता पड़ती थी। इस प्रकार भिक्षु का जीवन सरल एवं सुगम होता था। भिक्षुओं को विद्यार्थी जीवन में संयमित रहना पड़ता था उन्हें भिक्षा से प्राप्त अन्न से जीवन–यापन करना पड़ता था एवं उतना ही भोजन करना पड़ता था जितना कि शरीर संचालन हेतु आवश्यक हो। कभी–कभी अस्वस्थ होने की दशा में मधु नवनीत घृत इत्यादि का विधान है।

भिक्षु जो परिधान या वस्त्र धारण करते थे उसे चीवर कहा जाता था। चीवर का अर्थ होता है चुनकर बनाया हुआ। गृहस्थ जब अपने अनुपयोगी वस्त्रों को नदी, घाटी, तालाब, चौराहा, मैदान इत्यादि स्थानों पर फेंक देते थे तो भिक्षु उन्हीं वस्त्रों को इकट्ठा करके स्वच्छ करके अपने लिए वस्त्रों का निर्माण करता था। इस प्रकार जिस चीवर (वस्त्र) का निर्माण होता था वह विविधाकार का होता था। भिक्षु तीन प्रकार के वस्त्रों को धारण करता था जिनमें– अन्तरवासक (अधोवस्त्र), उत्तरासंग (पीठ वक्षस्थल, कंघा) संघाटी (ऊपर वाले वस्त्र) थे।

अनुजानामि भिक्खवे तिचीवरं द्विगुणं संघाहि
एकच्चियं उत्तरासगं एकच्चिय अन्तरवासक।[4]

प्रव्रजित को सोने तथा बैठने के लिए आसन की व्यवस्था करनी पड़ती थी जिसे शयनासन कहा जाता था। प्रारम्भ में भिक्षुओं के लिए शयनासन का उल्लेख नहीं मिलता है, क्योंकि उस समय निवास की कोई समस्या नहीं थी, लेकिन जब भिक्षुओं की संख्या बढ़ने लगी तब अनेकों प्रकार के बिहारों का प्रावधान किया गया जिनमें– कुटी, आराम बिहार प्रासाद, गुहा, वृक्षमूल, अम्र, आकाश इत्यादि है। इस प्रसंग में सर्वप्रथम मगधराजा बिम्बिसार द्वारा बेलुवन आराम के दान का प्रसंग आता है। इसे बुद्ध ने राजगृह में स्वीकार किया था।

एताहं भन्ते बेलुवन उय्यानं बुद्धप्पमुखस्स भिक्खुसंघस्य।[5]

मनुष्य के जीवन के साथ रोगों का लगा रहना स्वाभाविक है। अतः भगवान ने रोगों के निवारणार्थ विभिन्न प्रकार के औषधियों का विधान किया है। इस सम्बन्ध में सर्वोपयोगी एवं सर्वसुलभ स्वयं का मूत्र बतलाया है। एतदभिन्न परिस्थितिजन्य अन्य औषधियों का भी विधान किया गया है।

पूतिमूत्त भेसज्जं।[6]

भारतीय धर्म इतिहास में प्रथम बार हुआ जब पुरुषों के समान स्त्रियों ने संघ में प्रवेश किया। वैदिक युग में स्त्रियों को पुरुषों की भाँति शिक्षा एवं अधिकार समान मात्रा में प्राप्त थे लेकिन समय के साथ–साथ उनकी स्थिति दयनीय होती गयी। बौद्ध युग में स्त्रियाँ गृहजीवन में अनेक समस्याओं से घिरी थी जिसके परिणामस्वरूप उनका जीवन कलुषित वातावरण में चल रहा था लेकिन जब उन्हें संघ में प्रवेश कर शान्तिपूर्वक जीवन यापन करने का अवसर मिला तो उन्होंने इसमें बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। यह भी सत्य है कि वैदिक युग में जिन स्त्रियों को विद्या के प्रति अनुराग था। उन्होंने स्वाध्याय एवं आध्यात्मिक लाभ से अपने को उच्च पद पर स्थापित किया। गार्गी, मैत्रेयी, अपाला इत्यादि महिलाओं का नाम इस क्षेत्र में सम्मान के साथ लिया जाता है।

वैदिक काल में आश्रम–व्यवस्था थी लेकिन उस समय आश्रमवासी गृहीजन थे, लेकिन बुद्धकाल में प्रथम बार स्त्रियें को गृहजीवन से भिन्न स्वतन्त्र वातावरण में आध्यात्मिक जीवन–यापन का अवसर मिला। आरम्भ में भगवान बुद्ध ने नारी प्रवेश को संघ में अनुमति नहीं दी, लेकिन तमाम अनुनय विनय के पश्चात् सर्वप्रथम महाप्रजापति को प्रव्रज्या दी। नारियों के प्रवेश के साथ ही उनके नियम एवं विधान की भी व्यवस्था की गयी।

बुद्ध का उद्देश्य लोक कल्याण था, वे सभी प्राणियों का कल्याण चाहते थे। संघ की स्थापना से उन्होंने लोक में सुव्यवस्थित ढंग से एक ऐसे समाज का निर्माण किया जिसे प्रव्रजित समाज कहा जाता है। उन्होंने गृहीसमाज को उपासक परिषद एवं उपासिका परिषद नामक दो भागों में विभक्त किया तथा इस बात पर बल दिया कि उपासक तथा उपासिकाएँ अपने गृहजीवन के दायित्वों का निर्वाह करत हुए धर्ममय जीवन यापन करें। गृहस्थ जीवन में उपासक तथा उपासिकाएँ भौतिक–धन एवं नैतिक–धन का सामंजस्य करके जीवन यापन करें।

इध नन्दति पेच्च नन्दति कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति, पुञ्ञं मे कतंति नन्दति मिथ्यो नन्दति सुगतिगतोति।[7]

बुद्ध ने गृही–उपासक तथा उपासिका के लिए समान जीवन पद्धति की व्यवस्था की थी अर्थात् पुरुष तथा नारी के लिए समान नियम बनाये गये थे।

भगवान बुद्ध के समय समाज कई वर्णों या समुदायों में बंटा था। भगवान ने छः दिशाओं के माध्यम से उस समय प्रचलित सम्बन्धों तथा वर्णों को दर्शाया है। उन्होंने विविध दिशाओं का प्रतीक बताया है। यथा–

पूर्व दिशा	–	माता–पिता
पश्चिम दिशा	–	पत्नी–पुत्र
उत्तर दिशा	–	मित्र एवं सलाहकार
दक्षिण दिशा	–	आचार्य
ऊपर की दिशा	–	श्रमण एवं ब्राह्मण
नीचे की दिशा	–	दास एवं कर्मकार।

माता–पिता दिशा पुष्प आचरिया दक्खिणादिशा
पुत्र–दारा दिशा पच्छा मित्ताम च वा च उत्तरा
दास कम्म करा हेट्ठा उदवं सभण–ब्राह्मण
एत्तादिशा नमस्सेय्यं अलन्तो कुले गिरी।[8]

अतः गृहस्थों को सभी दिशाओं को प्रणाम करते हुये अपने मर्यादाओं का पालन करते हुए जीवन–यापन करना चाहिए। इन छः इकाईयों के प्रति विहित कर्त्तव्य ही गृही आचार है।

भगवान बुद्ध ने इन नियमों को वास्तविकता के धरातल पर स्थापित किया है। उन्होंने माता–पिता, पुत्र–पत्नी, गुरु–शिष्य तथा दास कर्मकार आदि के अपने–अपने कर्तव्य निर्धारित किये थे जिनको न केवल सिद्धान्त वरन् व्यवहार में भी लागू किया।

बौद्ध धर्म में कर्मसिद्धान्त को स्पष्ट रूप से मान्यता दी गयी है। भगवान ने सम्पूर्ण संसार को दुःखमय बताया तथा दुःखों को दूर करने के लिए कर्म–सिद्धान्त को अवश्यक बताया। उन्होंने कर्म को दो भागों– कुशलकर्म एवं अकुशलकर्म में विभाजित किया है। कुशलकर्म के परिणामस्वरूप इस जीवन के सुख का संचार होता है तथा मरणोपरान्त सुमति की प्राप्ति हो सकती है। अकुशलकर्मों के परिणामस्वरूप इस जीवन के दुःख की अनुभूति तथा मरणोपरान्त दुर्गति की प्राप्ति हो सकती है। अभिप्राय यह ध्वनित होता है कि मनुष्य अपने कर्मों के परिणामस्वरूप अपने दुःख एवं सुख का भोक्ता बनता है। अपने द्वारा किये गये अकुशल कर्मों के परिणामस्वरूप वह मलिन हो सकता है फलतः दुःखानुभूति करता है तथा कुशलकर्मों से सुखानुभूति करता है।[9]

बौद्ध धर्म में निर्वाण प्राप्ति पर जोर दिया गया है। अन्य दर्शनों में जिसे मोक्ष कल्याण अपवर्ग आदि नामों से बताया गया है उसे बौद्ध दर्शन में निर्वाण संज्ञा से अभिहित किया गया है। बौद्ध दर्शन का निर्वाण अन्य दर्शनों के मोक्ष से सर्वथा भिन्न प्रकार का है। निर्वाण को मन की एक दशाविशेष बताया गया है। जब चित्त सभी मलों से रहित अत्यन्त परिशुद्धदशा में विद्यमान हो जाता है तो उसे निर्वाण की दशा कहा जाता है। निर्वाण की इस अवस्था को व्यक्ति जीवनकाल में भी प्राप्त कर सकता है, मनुष्य तृष्णाविहीन जीवन प्राप्त करके सुख–पूर्वक अपना जीवन–यापन कर सकता है। जब तक उसके कर्मों के परिणामस्वरूप उसका शरीर बना रहता है वह शरीर धारण करते हुए भी निर्वाण सुख की अनुभूति करता है। इस अवस्था को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि– जीवन–मरण परम्पराक्षीण हो गयी, ब्रह्मचर्य जीवन का सफल पर्यवसान हो गया जो करणीय थे वे सभी कर लिये गये सन्दर्भ की प्राप्ति हो गयी।

खीणं पुराणं नवं नत्थि सभवं
विरत्तचित्ता आयति भवस्मिं
ते खीणं बीजा अवरूल्छिन्दा मिब्बन्ति
धीरा यथायं पदीपो।[10]

व्यक्ति को ज्ञान हो जाने पर संसार के समस्त वस्तुओं की नश्वरता का बोध हो जाता है। व्यक्ति तृष्णा का परित्याग कर देता है। जिन पूर्व जन्म में किये गये कर्मों का संस्कार वह ढो रहा था वह अब परिसमाप्त हो जाता है। इस संसार में अब उसे नहीं आना है। इन सभी बातों को वह जान लेता है। यह जो ज्ञान है, अनुभूति है वही निर्वाण है या निर्वाण की प्राप्ति है। जीवन्मुक्ति है एवं इस जीवन में निर्वाण का लाभ है। बौद्धकाल में वर्ण–व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है लेकिन भगवान ने वर्ण–व्यवस्था को जन्माधारित नहीं मानकर कर्माधारित स्वीकारा है। लोग अपनी आवश्यकता एवं रूच्यानुसार अपने–अपने व्यवसाय को करते हुए वर्ण–व्यवस्था का निर्वाह करते थे। बुद्ध ने उस मनुष्य को मनुष्य तथा देवों से श्रेष्ठ बताया जो विद्या तथा आचरण में श्रेष्ठ हा।

न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो

कम्मुना वसलो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो।[11]

यहाँ यह भी दर्शनीय है कि गृही समाज एवं प्रव्रजित समाज दोनों एक–दूसरे के सहायक तथा पूरक थे। प्रव्रजित गृहत्याग के पश्चात भी समाज में ही रहे। वे भौतिक उपलब्धियों से विरत होकर आध्यात्मिक एवं नैतिक उपलब्धियों को प्राप्त कर उससे जनवर्ग को लाभान्वित करने में लगे रहे।

प्रव्रजित जीवन के गतिशील होने के कारण ग्रामों में छोटे–बड़े बिहारों का निर्माण होने लगा। कालान्तर में यही बिहार शिक्षण–संस्थानों के रूप में विकसित हो गये। बिहारों में मुख्यतः नैतिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। किन नियमों के परिपालन से मनुष्य में वाचिक, मानसिक एवं कायिक दुराचारों का निरोध हो जाता है इसकी शिक्षा बिहारों में दी जाती थी।

इस प्रकार बौद्धधर्म में विशेष रूप से संघ के माध्यम से भारतीय संस्कृति को आत्मसात किया गया है। जिनमें भारतीय संस्कृति के सभी तत्त्व किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान हैं। भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे प्राचीन संस्कृति है इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है। भारतीय संस्कृति में जहाँ पर संस्कार वर्णव्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था, नारी शिक्षा, कर्म सिद्धान्त, पुनर्जन्म का सिद्धान्त, मुक्ति या मोक्ष का सिद्धान्त आदि का उल्लेख मिलता है, वहीं पर बौद्ध धर्म में भी इसका सम्पूर्ण स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है।

सन्दर्भ सूची :

1. महावंस– 10
2. म0व0– 13
3. म0व0– 24
4. म0व0– 305
5. म0व0– 38
6. म0व0– 55
7. खुद्दकनिकाय– 1, 19
8. दी0नि0–1, 148
9. खु0नि0– 1, 33
10. खु0नि0– 1, 303
11. खु0नि0– 1, 289

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

मृच्छकटिकम् में वर्णित स्त्रियों की सामाजिक स्थिति–एक नया आयाम

दीपक
शोध छात्र
प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

विश्व साहित्य में संस्कृति नाटकों को जो गौरव प्राप्त हुआ है उसका श्रेय कालिदा, भवभूति तथा शूद्रक जैसे नाटककारों को है, जिनकी भव्य रचनाएं अभिज्ञान शाकुन्तलम् उत्तररामचरित तथा मृच्छकटिकम् आज भी अद्वितीय है।[1] मृच्छकटिकम् में वर्णित स्त्रियों की स्थिति में विरोधाभास दिखाई देता है।

ऋग्वेद से लेकर समस्त लौकिक साहित्य में नारी का अभिचित्रण उसके कर्मठ जीवन, त्याग, उत्कर्ष आदि गुणों की व्याख्या करते हुए किया गया है, मृच्छकटिक के रचनाकार शूद्रक ने इन आदर्शों से परे एक सांसारिक नारी पात्र की कल्पना की है, जिसकी स्थिति राजदारा एवं निम्नवर्गीय नारियों के मध्य की है।

प्राचीन साहित्य में स्त्रियों को समस्त विद्याओं और कलाओं के साथ देवी स्वरूप कहा गया है और धर्मशास्त्रों में उन्हें अवध्य माना गया है।[2]

हड़प्पा सभ्यता के काल में स्त्रियों की स्थिति अच्छी रही होगी, बड़ी संख्या में प्राप्त नारी मूर्तियों को, जिन्हें मातृ देवी के रूप में पहचाना गया है, के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि उस काल में स्त्रियों का सम्मानित स्थान रहा होगा। वैदिक काल में स्त्रियों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।[3] परन्तु बाद के काल में उनके स्थिति में गिरावट आने लगी। विवेच्य काल में स्त्रियों की स्थिति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए।[4]

सामाज में स्त्रियों की स्थिति में भले ही पूर्ववर्ती काल की अपेक्षा गिरावट आयी हो किन्तु अभी भी उनकी स्थिति संतोष जनक थी। इस काल में महिलाओं के साम्पत्तिक अधिकारों में पर्याप्त वृद्धि हुयी।[5] याज्ञवल्क्य ने विधवा विवाह का समर्थन किया, इससे महिलाओं की स्थिति में कुछ सुधार हुआ।[6]

आलोच्य काल में स्त्रियों की प्रवृत्ति प्रायः विलासितापूर्ण[7] थी उनका झुकाव श्रृंगार की ओर थी। वे आभूषण प्रिय थीं। चारुदत्त की पत्नी धूता एक आदर्श पतिव्रता कुलवधू थी, जिसका बहुत सम्मान था। वसन्तसेना कुलवधू बनने के लिए लालायित थी। वह इसे अपना सौभाग्य समझती थी।[8] विवाहित स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।

धन के सम्बन्ध में स्त्रियां, पुरुषों पर निर्भर थी। स्त्री धन पर महिला का अधिकार था। अधीत काल में महिला शासिका प्रभावती गुप्ता का नाम उल्लेखनीय है।[9] इससे महिलाओं की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। परन्तु समाज में महिलाओं की अवस्था एक समान नही थी। सम्भ्रान्त परिवार और जनसाधारण के बीच स्त्रियों के अधिकारों में व्यापक असमानता दिखायी देती है। स्त्रियों को दासी भी बनाया जाता था।[10] कालिदास के ग्रंथ मेघदूत में देवदासियों का उल्लेख आया है।[11] इसी काल में सती प्रथा का पहला अभिलेखीय साक्ष्य प्राप्त होता है।[12] इससे स्पष्ट है

कि महिलाओं को इस कुप्रथा के माध्यम से उनके अस्तित्त्व पर संकट उत्पन्न हुआ। मृच्छकटिक में गर्भदासी शब्द का उल्लेख आया है।[13] इसका प्रयोग महिलाओं को अपशब्द कहने के लिए किया जाता था। वेश्या से सम्बन्ध रखना निन्दनीय माना जाता था। इसीलिए जब न्यायाधीश चारुदत्त से पूछता है कि आर्य क्या यह गणिका तुम्हारी मित्र है तो चारुदत्त लज्जा से सिर झुका लेता है।[14]

इस प्रकार समाज में स्त्रियों की स्थिति एक समान नहीं थी। उसमें भी स्तरीकरण पाया जाता है। साधारण तथा सम्भ्रान्त स्त्रियों के बीच व्यापक असमानता थी। यद्यपि विवेच्य काल में सम्पूर्ण रूप में देखा जाए तो, यह कहा जा सकता है कि स्त्रियों की स्थिति आदर्श तो नहीं किन्तु काफी हद तक संतोषजनक थी।

स्त्रियों की सम्पत्ति में अधिकार– प्राचीन भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज था, जहाँ पर उत्तराधिकारी पुत्री को नहीं माना जाता था, जिससे उसके सम्पत्ति के अधिकार को स्वीकार नहीं किया गया। प्रारम्भिक समाज में सम्पत्ति में स्त्रियों का अधिकार नहीं था। सर्वप्रथम वैदिकोत्तर काल में स्त्रियों के साम्पत्तिक अधिकारों को मान्यता प्राप्त हुयी। आलोच्य काल में इस व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इस काल में स्त्रीधन के क्षेत्र का विस्तार हुआ तथा स्त्रियों के साम्पत्तिक अधिकारों में पर्याप्त वृद्धि हुयी।

सर्वप्रथम मनु ने स्त्रीधन का उल्लेख किया तथा उसके 6 प्रकार बताएं।[15] याज्ञवल्क्य पहले ऐसे विचारक है जिन्होंने सम्पत्ति में स्त्रियों के अधिकार को मान्यता दी तथा सम्पत्ति विभाजन में स्त्रियों का एक हिस्सा बताया।[16] नारद ने कहा कि यदि पुत्र न हो तो सम्पत्ति पर स्त्री का अधिकार होना चाहिए।[17] किन्तु मनु ने पुत्री को पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नहीं माना है।[18]

परन्तु विवेच्य काल में स्त्रीधन तथा स्त्रियों के साम्पत्तिक अधिकार को पूरी मान्यता मिल गयी थी। मृच्छकटिक में इसका स्पष्ट उल्लेख आया है। मृच्छकटिक नाटक में, चूंकि जनसाधारण के गतिविधियों का चित्रण किया गया है, इसलिए यहाँ यह जानना आवश्यक हो जाता है कि जनसामान्य में यह कितना व्यावहारिक था। धूता द्वारा उसके मां से प्राप्त रत्नावली को चारुदत्त को दे दिया जाता है कि वह वसन्तसेना के आभूषणों के बदले दे दे तो चारुदत्त मना कर देता है।[19] इससे तात्पर्य यह है कि स्त्रीधन की वास्तविक उत्तराधिकारी उसकी पुत्री होती थी। याज्ञवल्क्य[20], नारद[21] तथा विष्णु[22] ने भी इसी प्रकार का प्रावधान किया था।

स्त्रीधन पर स्त्रियों का एकाधिकार होता था। स्त्रीधन को किसी के पास धरोहर भी रखा जा सकता था। ऐसा संकेत वसन्तसेना द्वारा अपना धरोहर चारुदत्त के पास रखने से मिलता है।[23] अन्यत्र स्त्रीधन पर स्त्री का पूर्ण अधिकार का संकेत मिलता है। रोहसेन को स्वर्ण की गाड़ी बनवाने के लिए वसन्तसेना अपना आभूषण दे देती है।[24] एक स्थान पर 10 सुवर्ण देने का संदर्भ आया है, यह भी स्त्रीधन की ओर संकेत है।[25]

स्त्रीधन को ग्रहण करना उचित नहीं माना जाता था। चारुदत्त स्वयं कहता है, अपने भाग्य से नष्ट धन वाला चारुदत्त स्त्रीधन से अनुगृहित किया जा रहा है, यह कष्ट की स्थिति है क्योंकि धन न होने से पुरुष नारी के तुल्य है और नारी धनयुक्त होने के कारण पुरुष के समान है।[26] इस कथन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सामान्यतः स्त्रियां आर्थिक रूप से पुरुषों पर आश्रित होती थी। चूंकि वसन्तसेना एक गणिका थी इसीलिए वह आत्मनिर्भर थी अतः उसके पास अपार सम्पत्ति, वही दूसरी स्त्रियां जो घर में रहती थी वे पुरुषों पर ही आश्रित होती थी।[27]

परिवार की सम्पत्ति के विभाजन के समय स्त्रीधन का विभाजन नहीं होता था, यह स्त्री के पास उसी रूप में बना रहता था।[28] नारद ने प्रावधान किया है कि स्त्रीधन उसकी मृत्यु पर उसकी सन्तान को मिलेगी यदि सन्तान न हो तो उसके पति को प्राप्त होगा।[29] किन्तु यह नियम केवल प्रशस्त विवाह के सम्बन्ध में था, अप्रशस्त विवाह में यह धन स्त्री के माता–पिता को मिल जाता था।[30]

सती प्रथा– भारत में सती प्रथा के उत्पत्ति तथा विकास पर विद्वानों में भारी मतभेद है। सती प्रथा के आरम्भिक साक्ष्यों की प्राप्ति कुछ विद्वानों द्वारा प्रागैतिहासिक काल से कर ली गयी है। कुछ विद्वान इसकी संभावना मध्यपाषाणकाल में सराय नाहर राय तथा दमदमा पुरास्थल से प्राप्त युगल शवाधान से व्यक्त की है। पर्याप्त साक्ष्यों के अभाव में जी०आर०शर्मा ने इस मत का खण्डन कर दिया है।[31] लोथल से प्राप्त तीन युगल समाधियों के आधार पर एस०आर०राव ने इसे सती प्रथा का प्रारम्भिक साक्ष्य माना है।[32] यह तर्क मात्र संभावनाओं पर अधारित है।

ऋग्वेद में आये अग्रे[33] शब्द के आधार पर श्रेष्ठ[34], वेस्टरमार्क[35], केगी[36] आदि ने इसे अग्नेय पढ़कर सती प्रथा का साक्ष्य मान लिया किन्तु इस शब्द का अर्थ नितान्त भिन्न है। ऐसा ही तैत्तिरीय संहिता में मिलता है। यद्यपि लिखित इतिहास में सती प्रथा का सर्वप्रथम उदाहरण 316 ई०पू० का है। किन्तु उस समय इस प्रथा का सामान्य प्रचलन नहीं था। सर्वप्रथम शताब्दी ई० के तीन लेखकों– अश्वघोष, हाल तथा विष्णु ने सती प्रथा का उल्लेख किया है। रामायण तथा महाभारत में सती प्रथा का उल्लेख प्राप्त होता है। रामायण मे ब्राह्मणी वेदवती सती हो गयी थी।[37] महाभारत में पाण्डु की पत्नी माद्री ने अन्वारोहण किया था।[38]

वात्स्यायन, भाष्य, कालिदास तथा शूद्रक ने सती प्रथा का उल्लेख किया है, जो चौथी–पांचवीं शताब्दी ई० के है।[39] कामसूत्र में वर्णित है कि नर्तकियां अपने प्रेमियों को सती होने का कैसा झूठा आश्वासन देती थी।[40] दूतघटोत्कच तथा उरुभंग में भास ने सती प्रथा का उल्लेख किया।[41] कुमारसंभव में रति अपने पति की मृत्यु के बाद सती हो गयी थी।[42] मृच्छकटिक में सती प्रथा के साक्ष्य प्राप्त होते है इस समय सती प्रथा का जनसामान्य में भी प्रचलन हो गया था। इसका प्रमाण धूता के संकल्प से मिलता है। जब चारुदत्त को मृत्यु दण्ड की सजा मिली तो उसकी पत्नी धूता स्वयं को अग्नि में समर्पित करने के लिए तैयार हो गयी।[43] एरण से प्राप्त एक अभिलेख[44] (510 ई०) में उल्लिखित है कि हूणों के आक्रमण के समय भानुगुप्त का सेनापति गोपराज युद्ध में मारा गया तत्पश्चात उसकी पत्नी सती हो गयी थी। वृहस्पति ने वैधव्य जीवन से अच्छा सती होना श्रेयस्कर माना है।[45] वाराहमिहिर सती प्रथा को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। उनका मानना था कि विधवा स्त्री का कष्ट सहन करने से अच्छा है सती हो जाना।[46]

मुद्राराक्षस नाटक में नंदराज के मारे जाने के बाद उसकी पत्नी शत्रु के जीवित रहने पर प्रश्न करती है कि क्या मुझे जीवित रहना चाहिए क्योंकि सती होना ही श्रेयस्कर है।[47] कालिदास ने सती के लिए पति–वर्त्मगा शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ है पति के पीछे अर्थात उसी के साथ पत्नी का स्वर्ग जाना।[48] कौमुदी महोत्सव में अग्रमहिषियों द्वारा पति के मृत्यु पर सती होने का उल्लेख मिलता है।[49] कामसूत्र में तो सती को आदर्श पत्नी के रूप मे स्थापित किया गया है।[50] उपर्युक्त साक्ष्यों से इतना तो स्पष्ट हो गया है कि सती प्रथा समाज में प्रचलित हो गयी थी, किन्तु इसकी व्यापकता कितनी थी, विचारणीय है।

सती प्रथा के प्रचलन के पीछे कुछ कारण विद्यमान थे जो इस प्रकार है–

1– भारतीय समाज प्रारम्भ से ही पितृसत्तात्मक रहा है जिसके कारण स्त्रियों

को पुरुष के तुलना में निम्नतर समझा जाता था।

2– विधवा पुनर्विवाह तथा नियोग प्रथा को निन्दनीय माना जाता था, जिसके कारण सती प्रथा को बढ़ावा मिला।

3– विधवाओं का जीवन पति के अभाव में निरस तथा कष्टदायक होता था। अतः सती हो जाना श्रेयस्कर था।

4– स्त्रियां पुरुषों से भावनात्मक रूप से जुड़ी होती थी।

5– स्त्रियों के बढ़े हुए साम्पत्तिक अधिकार। बाद के शास्त्रकारों तथा लेखकों ने भी स्त्री का सम्पत्ति में अधिकार स्वीकार कर लिया। इसलिए यदि स्त्री सती हो जाय तो धन में हिस्सा नहीं देना पड़ेगा, ऐसा माना जाने लगा।

विवेच्य काल में सती प्रथा को प्रोत्साहन दिया जाने लगा था किन्तु अभी इसका व्यावहारिक जीवन में अधिक प्रचलन नहीं हुआ। किसी गुप्त रानी के सती होने के साक्ष्य नहीं मिलता। रामगुप्त के मृत्यु पर उसकी पत्नी ध्रुवस्वामिनी ने चन्द्रगुप्त द्वितीय से विवाह कर लिया। शूद्रक भी सती प्रथा का विरोध करते हैं। इस प्रथा के विकास के पीछे पितृसत्तावादी सोच और स्त्रियों के साम्पत्तिक अधिकार में वृद्धि को, कारण माना जा सकता है।

पर्दा प्रथा– प्राचीन भारत में पर्दा प्रथा बहुत सीमित रूप में दिखायी देती है। वैदिक काल में इसका प्रचलन नहीं था क्योंकि वधू को सभी आगन्तुकों को दिखाया जाता था।[51] किन्तु पुत्र वधुएं अपने श्वसुर के सामने पर्दा करती थी।[52] राजघरानों में इसका सर्वाधिक प्रचलन था। अष्टाध्यायी में स्त्री के लिए असूर्यम्पश्या शब्द आया जिसका अर्थ है सूर्य को न देखने वाली।[53] रामायण[54] तथा महाभारत[55] में भी ऐसा उल्लेख आया है।

मृच्छकटिक के रचनाकालीन समाज में पर्दा प्रथा के विषय में बहुत अधिक समर्थन नहीं मिलता, क्योंकि धूता को बिना अवगुण्ठन किये चित्रित किया गया है, जब कि इसके विपरित वसन्तसेना के चरित्र का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में कुछ विशिष्ट वर्गो तक पर्दा प्रथा अवश्य विद्यमान थी, तथापि व्यवहारिक दृष्टि से समाज मे इसका प्रचलन किस सीमा तक था कहना कठिन है।[56]

पर्दा प्रथा के प्रचलन के पीछे निम्नलिखित कारण रहे होंगे–

1– पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं के राजनीतिक तथा आर्थिक अधिकारों से वंचित करना।

2– वाह्य आक्रमण के भय तथा आक्रान्ताओं की कुदृष्टि से स्त्रियों के सम्मान की रक्षा।

3– सम्मान प्रदर्शित करने के लिए।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पर्दा प्रथा होने और न होने के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि थी और यह भारत की व्यवहारिक नियमावली में वैकल्पिक सत्य के रूप में सम्मिलित रही, इसके लिए न तो कोई राजकीय कानून था और न ही इसके निषेध के लिए कोई विधिसम्मत विचार, अपितु आवश्यकताओं के अनुरूप विशेषतः विदेशी आक्रान्ताओं के भारत आने

के बाद भारतीय समाज में प्रचलित पर्दा प्रथा निःसृत एक अनिवार्य एवं वैकल्पिक सामाजिक मान्यता बन गयी।

संदर्भ सूची :

1. यादव, सुमन, मृच्छकटिकम् में वर्णित स्त्रियों की स्थिति, शोध पत्र
2. पर्सी ब्राउन, इण्डियन आर्किटेक्चर, पृ० 293
3. लेगे, फाह्यान, पृ० 89
4. गुप्त, पी०एल०, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, पृ० 149
5. मिश्र, एस०एम०, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, पृ० 258
6. वही, पृ० 274
7. वही, पृ० 276–302
8. ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, पृ० 151–162
9. वही,
10. मृच्छ, अंक 9, पृ० 580, अंक 10, पृ० 653
11. मिश्र, एस०एम०, पूर्वोद्धृत, पृ० 303
12. मृच्छ, अंक 1, पृ० 66, अंक 4, पृ० 253
13. वही,
14. वही, अंक 9, पृ० 580, अंक 10, पृ० 653
15. मैती, एस०के०, इकोनामिक लाइफ आफ नार्दर्न इण्डिया, पृ० 120
16. अमर, 2.2, पृ० 74
17. मृच्छ, अंक 3, पृ० 82
18. वही, अंक 9, पृ० 580
19. वही, अंक 2, पृ० 121
20. वही,
21. रघु, 4.36
22. मृच्छ, अंक 6, पृ० 389
23. वही, अंक 8, पृ० 508
24. रघु, पूर्वोद्धृत
25. नारद, 6,7,8
26. मैती, एस०के०, पूर्वोद्धृत, पृ० 124
27. वृहस्पति, 18, 3
28. मृच्छ, अंक 5, पृ० 315
29. वही,
30. वही, अंक 8, पृ० 516
31. वही,
32. वही, अंक 2, पृ० 305, 461
33. वही,
34. वही, अंक 1, पृ० 46, 299
35. वही, अंक 1, पृ० 61, 311
36. वही, अंक 9, पृ० 580
37. वही, अंक 2, पृ० 121

38. अभिज्ञान, 6, पृ० 962–963
39. मैती, एस०के०, पूर्वोद्धृत, पृ० 245–255
40. चौधरी, राधा कृष्ण, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, पृ० 157–158
41. लेगे, पूर्वोद्धृत, पृ० 100
42. वही,
43. कुमारसंभव, 7, 3; अभिज्ञान, 1,838
44. वही,
45. मृच्छ, अंक 1, पृ० 46; अंक 4, पृ० 302
46. मैती, एस०के०, द्रष्टव्य
47. गुप्त, पी०एल०, पूर्वोद्धृत, पृ० 102
48. मैती, एस०के०, द्रष्टव्य
49. प्राचीन भारत में नगरों का पतन, द्रष्टव्य
50. मैती, एस०के०, पूर्वोद्धृत, पृ० 135–138
51. वही,
52. प्राचीन भारत में नगरों का पतन, पृ० 146–161
53. गुप्त, पी०एल० पूर्वोद्धृत, पृ० 102
54. भारत का इतिहास, पृ० 111,112
55. शिल्पावाप्तै समुदयैः पट्टवायैरुदारम्।
श्रेणी भूतैः भवनमतुलं करितम् दीप्तरश्मैः।। – मन्दसोर का लेख, 102
56. मृच्छ, अंक 9, 10, पृ० 580, 653

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

गाँधी की अहिंसक-आर्थिकी

प्रशान्त राय
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शोध सार: भारत में औपनिवेशिकता के प्रभाव से उभरती साभ्यतिक विसंगतियों के दौर में गाँधी ने अहिंसा और स्वदेशी के आलोक में 'सभ्यता' का विकल्प रचने की कोशिश की। गाँधी मानव जीवन के अनिवार्य अंग के रूप नें 'अर्थ' की भी महत्ता स्वीकारते हैं। वे आर्थिकी और नैतिकी के समन्वय पर बल देते हैं। इस समन्वय का फल है 'अहिसंक-आर्थिकी'। गाँधी की अहिंसक-आर्थिकी में मानव-मानव, मानव-समाज और मानव-प्रकृति सम्बन्धों की व्याख्या नैसर्गिक ढंग से हुई है। गाँधी की आर्थिकी के केन्द्र में हैं 'स्वदेशी' और 'कुटीर-ग्रामोद्योग'। गाँधी उत्पादन प्रौद्योगिकी, उत्पादन सम्बन्धों और वितरण प्रक्रियाओं में विकेन्द्रीकरण के हिमायती हैं। बहुतराष्ट्रीय पूँजीवाद की मुनाफ़ा-संस्कृति के सबसे बड़े तर्क 'भूमण्डलीकरण' के दुष्प्रभावों से मानवता के समक्ष 'रोज़गारविहीन विकास' और पारिस्थितिक संकट गहरा हुआ है। गाँधी की आर्थिकी रोज़गार और पारिस्थितिक सरोकारों के प्रति सचेत है। उत्तर औपनिवेशिक दृष्टिकोण से भी आर्थिक-साम्राज्यवाद और नवउपनिवेशवाद के परिप्रेक्ष्य में गाँधी के आर्थिक-स्वराज का पुनर्मूल्यांकन ज़रूरी है।

बीजशब्द: स्वदेशी, कुटीर-ग्रामोद्योग, सभ्यता-संकट, अहिंसक-आर्थिकी, पूँजीवाद, भूमण्डलीकरण, पारिस्थितिक-संकट, विकेन्द्रीकरण, रोज़गारविहीन-विकास, समानता, तकनीक, विउपनिवेशीकरण, स्वराज, आर्थिक-स्वराज।

मूल आलेख: गाँधी का आर्थिक चिन्तन उनके स्वराज चिन्तन का अनुषंग है। गाँधी का आर्थिक-चिन्तन भारत में पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव-सन्दर्भों में हुआ है। इसके केन्द्र में अतिशय उत्पादन से मुनाफ़ा कमाने की प्रवृत्ति से उपजी साभ्यतिक विसंगतियाँ हैं। गाँधी ने आर्थिकी के लगभग सभी मुख्य बिन्दुओं—उत्पादन उद्देश्य, उत्पादन प्रौद्योगिकी, उत्पादन सम्बन्ध और वितरण-विनिमय की प्रक्रिया—पर विचार किया है।

आधुनिक पूँजीवाद में मानव तमाम उदात्त-नैतिक मूल्यों से च्युत उपभोक्ता हो गया है। “आधुनिक अर्थशास्त्र उपभोग वृद्धि को एक जीवन-मूल्य के रूप में स्थापित करता है, अर्थात् उपभोग ही सभ्यता का प्रमाण हो जाता है और अधिकाधिक सभ्य होने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि हम अपनी आवश्यकता बढ़ाते चलें। अर्थशास्त्र को माँग और आपूर्ति का शास्त्र माना जाता है, लेकिन 'विकास' के लिए ज़रूरी हो जाता है कि कृत्रिम माँगों की सृष्टि की जाए, क्योंकि उसके बिना आर्थिक विकास की प्रक्रिया के रुक जाने का ख़तरा पैदा हो जाता है, जिसका तात्पर्य है सम्पूर्ण आधुनिक अर्थव्यवस्था का ढह जाना।”[1] उपभोक्ता संस्कृति में सामाजिक-राजनैतिक हिंसा और प्राकृतिक संसाधनों का भी हिंसक नाश निहित है। इस अर्थतन्त्र में बेहतर जीवनशैली का मतलब है

अधिकतम उपभोग और विकास का मानक है उपभोक्ता-सुविधाओं में निरन्तर वृद्धि। इसके उलट गाँधी मानते हैं कि, "सभ्यता, वास्तविक अर्थों में, आवश्यकताओं के बहुलीकरण में निहित नहीं है, बल्कि उनमें सोच-समझकर स्वैच्छिक रूप से कमी करने में है।"[2]

गाँधी के लिए जीवन की सार्थकता प्रेम, अहिंसा और आध्यात्मिकता में है। अक्सर अध्यात्म को संघर्ष से पलायन का तरीक़ा समझ लिया जाता है लेकिन इसका सम्बन्ध जीवन की दुर्धर्ष जटिलताओं से है। गाँधी का कहना है, "मैं यह नहीं मानता कि आध्यात्मिक नियम के प्रवर्तन का अपना कोई विशिष्ट क्षेत्र है। इसके विपरीत वह जीवन के दैनन्दिन क्रियाकलाप के माध्यम से ही स्वयं को अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार, यह आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों को प्रभावित करता है।"[3] आर्थिकी भी जीवन में प्रेम और अहिंसा के विकास का एक साधन है। "अहिंसा, वस्तुतः एक सकारात्मक धारणा है और उसका उत्स पूरे जीवन के प्रति तात्विक ऐक्य के बोध से उत्पन्न भावात्मक आकर्षण, करुणा और लगाव की भावना में है और इसीलिए उसका क्षेत्र केवल मानसिक आध्यात्मिक ही नहीं है, वह पूरे भौतिक जीवन को भी अपनी परिधि में ले लेती है। इस दृष्टि से आर्थिक जीवन और प्रक्रिया को भी अहिंसा की परिधि के अन्तर्गत ही समझना चाहिए।"[4] गाँधी ने अहिंसा को अर्थ-विस्तार देकर उसे व्यक्तिगत गुण से सामाजिक नैतिक मूल्य में रूपायित कर दिया। गाँधी कहते हैं, "मेरी दृष्टि में उस गुण का कोई मूल्य नहीं रह जाता, जो केवल व्यक्तियों तक ही सीमित हो या उस पर आचरण करना केवल व्यक्तियों के लिए ही सम्भव हो।"[5] सभी के लिए असीमित उपभोग उपलब्ध नहीं किया जा सकता है और अधिकतर को इससे वञ्चित रख कुछ के लिए इसे उपलब्ध करना हिंसा है।

पूँजीवादी सभ्यता में आर्थिक असमानता यानी अमीर और ग़रीब के बीच अन्तर गहन होता है। ग़रीबी विवशता है जो स्वतन्त्रता का हनन करती है। गाँधी ग़रीबी को पतन और अभिशाप कहते हैं। 'स्वैच्छिक त्याग' ग़रीबी से भीन्न नैतिक विकास की प्रक्रिया है। आर्थिक समानता व स्वतन्त्रता के लिए शोषण और ग़रीबी का उन्मूलन ज़रूरी है। गाँधी कहते हैं "दरिद्रों के लिए आर्थिक ही आध्यात्मिक है" तथा "ग़रीबों के लिए "ईश्वर रोटी और मक्खन के रूप में ही प्रकट हो सकता है।"[6] गाँधी के लिए ग़रीबी, शोषण और आर्थिक असमानता का उन्मूलन आध्यात्मिक कोटि का कार्य है। अहिंसक-आर्थिकी का एक उद्देश्य ग़रीबी की विवशता से मुक्ति द्वारा अहिंसक स्वतन्त्रता की स्थापना भी है। "आर्थिक समानता को 'अहिंसक स्वाधीनता की सर्वकुंजी (मास्टर-की)' मानने के कारण महात्मा गाँधी का अर्थशास्त्रीय चिन्तन पूँजीवादी सभ्यता के ख़िलाफ़ एक वैचारिक विद्रोह का ही रूप है। इसलिए वह केवल वैयक्तिक स्तर सम्पत्ति-निर्माण का विरोध ही नहीं करते, बल्कि साथ ही पूरी आर्थिक प्रक्रिया में ऐसे मूलगामी संरचनात्मक परिवर्तन का प्रस्ताव करते हैं, जिसमें परिग्रह या सम्पत्ति के केन्द्रीकरण की सम्भावना ही न रहे और सभी का भौतिक ही नहीं, नैतिक कल्याण भी हो सके।"[7]

गाँधी की आर्थिक चिन्ताएँ विविध स्तरों पर मर्मभेदी हैं। इसमें मुख्य है तकनीक के अनियन्त्रित इस्तेमाल से उपजी अति-औद्योगीकरण की समस्या। एडम स्मिथ और जॉन लॉक की मुक्त बाज़ार और सम्पत्ति के अधिकार की अवधारणाओं पर आधारित भूमण्डलीकृत अर्थतन्त्र की कुछ विसंगतियाँ हैं। उत्पादन में उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए बड़े स्तर पर औद्योगीकरण की ज़रूरत होगी, जिससे मशीनीकरण को बढ़ावा मिलेगा और मानवीय श्रम की ज़रूरत घटेगी। जिससे एक तो रोज़गार की सम्भावनाएँ न्यूनतम होंगी, 'विकास' तो होगा लेकिन रोज़गारविहीन। दूसरे आर्थिक

केन्द्रीकरण बढ़ेगा। रोज़गार के अवसर घटने से सामाजिक क्रयशक्ति घटेगी और अर्थतन्त्र पर मन्दी छाएगी। मन्दी आधुनिक आर्थिकी की असफलता नहीं बल्कि सफलता का फल है, यही इसकी सैद्धान्तिक विसंगति है। अर्थतन्त्र पर राज्य का क़ाबू न होने से इस पूरी स्थिति के परिहार का भी कोई विकल्प समाज के पास नहीं होगा। बीसवीं सदी का विश्व इतिहास इस पूरे सन्दर्भ का साक्षी है "यदि हम इस बात को भूल भी जाएँ – यद्यपि वह भूल जाने की बात नहीं है-कि उत्पादन में इस अन्धाधुन्ध वृद्धि ने–मार्शल के अनुकरण में—कितनी कृत्रिम माँगों को जन्म दिया, पर्यावरण और पारिस्थितिकी की कितनी हानि की और आर्थिक प्रतिस्पर्धा के चलते सैनिकवाद के विकास ने दो महायुद्धों और जाने कितने छोटे-छोटे युद्धों को जन्म दिया तथा बाज़ार को भयंकर संहारक शस्त्रों से भर दिया है, तो भी केवल शुद्ध आर्थिक दृष्टि से इसने स्वयं ही एडम स्मिथ की मान्यताओं को झुठला दिया है।"[8]

गाँधी के मशीन विरोध को व्यापक सन्दर्भ में समझने की ज़रूरत है। "आधुनिक उत्पादन प्रक्रिया और आर्थिक विकास एक भारी और जटिल तकनीकी पर निर्भर करता है। लेकिन आर्थिक विकास को पूर्णतया मशीनों पर निर्भर कर देने का अर्थ उत्पादन-प्रक्रिया और आर्थिक जीवन को अमानवीय नियंत्रण में कर देना है। सामान्यतः, मनुष्य यही सोचता है कि यंत्रोद्योग उसके नियंत्रण में है और वह अपनी इच्छानुसार उनका उपयोग कर सकता है। लेकिन यंत्रों और तकनीकी की अपनी प्रकृति और प्रक्रिया होती है और वह ऐसा दुश्चक्र होता है, जिससे बचना सम्भव नहीं है।"[9]

अति-औद्योगीकरण से ख़त्म होते रोज़गार और मुनाफ़े के लिए चलाए जा रहे उद्योगों से फैलती असमानता और ग़रीबी देखकर ही गाँधी ने कहा है, "लाखों-करोड़ों लोगों का दमन और शोषण करने के लिए मशीन एक ऐसा दैत्य है, जिसका कोई जवाब नहीं है। यदि समाज में सभी लोगों को बराबरी का दर्जा दिया जाना है तो मानव अर्थव्यवस्था में मशीन का कोई स्थान नहीं हो सकता। मेरा विश्वास है कि मशीन ने आदमी की हैसियत में कोई इज़ाफ़ा नहीं किया है और जब तक हम इसे इसके उचित स्थान पर नहीं बिठाएँगे तब तक यह दुनिया की सेवा नहीं करेगी बल्कि उसे विघटित कर देगी।"[10] यह विघटन न केवल सामाजिक-राजनीतिक स्तर बल्कि प्राकृतिक, पारिस्थितिक-असन्तुलन के रूप में भी चिह्नित किया गया है। "आधुनिक औद्योगिकीकरण ने धरती और इसके संसाधनों पर बोझ घटाने की बजाय लगातार बढ़ाया ही है। खनिजों और उद्योगों के लिए वनोपजों की बढ़ती माँग के कारण लगातार वनभूमि एवं कृषि-योग्य भूमि को बंजर या कृषि के लिए अनुपयुक्त भूमि में तब्दील किया जा रहा है। ...इसी तरह विपणन के विस्तार के लिए यातायात बढ़ता है और इससे कृषि योग्य भूमि को अधिगृहीत कर सड़कों का जाल बिछाया जा रहा है। यह भयावह स्थिति है, जो अति-औद्योगिकीकरण के कारण उत्पन्न हुई है।"[11] 'तकनीकी नियतिवाद' की इस स्थिति के लिए ही गाँधी ने कहा है, "मशीन साँप की बाँबी की तरह है जिसमें एक नहीं सौ साँप हैं। एक के बाद दूसरा लगा ही रहता है।"[12] जयप्रकाश नारायण ने गाँधी की चिन्ताओं का विस्तार देते हुए कहा है "स्वयं मनुष्य को ही पुर्ज़ों में, यन्त्र में या यन्त्र-मानव में परिवर्तित कर दिया जाए, तो फिर बाक़ी क्या रहा? पुराने ज़माने की दास-प्रथा में मनुष्य-मनुष्य को गुलाम बनाता था, इस नयी दासता में मशीन मनुष्य को गुलाम बनाती है। हमें यन्त्र की ऐसी गुलामी नहीं चाहिए। हम चाहते हैं कि यन्त्र मनुष्य का सेवक बनकर काम करे।"[13]

आर्थिकी के लिए प्रौद्योगिकी तो आवश्यक है। इसलिए गाँधी 'स्वदेशी' का विकल्प देते हैं। स्वदेशी की हिमायत व तकनीक विरोध के कारण गाँधी को यन्त्र मात्र का विरोधी समझ लिया

जाता है। लेकिन गाँधी स्पष्ट स्वीकारते हैं कि, "यंत्रों का भी स्थान है और यंत्रों ने अपना स्थान प्राप्त भी कर लिया है। लेकिन मनुष्यों के लिए जिस प्रकार की मेहनत करना अनिवार्य होना चाहिए, उसी प्रकार की मेहनत का स्थान उन्हें ग्रहण न कर लेना चाहिए।"[14] श्रम की भूमिका घटने से निष्क्रियता की समस्या उभरती है। निष्क्रियता से जीवन में निरर्थकता बोध गहराता है। मार्क्स ने इसे ही 'एलिएनेशन' कहा। एरिक फ़्रॉम्म ने 'एलिएनेशन सिण्ड्रोम' यानी 'विलगाव संलक्षण' की व्याधि को आधुनिक मनुष्य के चारित्रिक लक्षण के रूप में पहचाना है।

स्वदेशी और देशज प्रौद्योगिकी से संचालित कुटीर-ग्रामोद्योग गाँधी की आर्थिकी के आधार हैं। स्वदेशी वैकल्पिक तकनीक है। गाँधी स्वदेशी की परिभाषा देते हैं, "स्वदेशी की भावना का अर्थ है- हमारी वह भावना, जो हमें दूर को छोड़कर अपने समीपवर्ती प्रदेश का ही उपयोग और सेवा करना सिखाती है। ...अर्थ के क्षेत्र में मुझे अपने पड़ोसियों द्वारा बनाई गई वस्तुओं का ही उपयोग करना चाहिए और उन उद्योगों की कमियाँ दूर करके, उन्हें ज्यादा सम्पूर्ण और सक्षम बनाकर उनकी सेवा करनी चाहिए।"[15] गाँधी-चिन्तन में "स्वदेशी का तात्पर्य है स्थानीय जरूरतों के लिए स्थानीय संसाधनों और स्थानीय तकनीकी से किया गया उत्पादन। स्वदेशी से गाँधी जी का तात्पर्य एक ऐसी विकेन्द्रीकृत उत्पादन व्यवस्था से है, जिसके प्राकृतिक संसाधन तथा तकनीकी भी मूलतः आस-पास पर आधारित तथा उससे सम्बन्धित हों तथा जिसे वहीं तैयार किया, सुधारा और विकसित किया जा सके।"[16]

गाँधी की आर्थिकी विशाल उद्योगों के पक्ष में नहीं है, "मैं पक्के तौर पर अपनी राय जाहिर करना चाहूँगा कि विशाल पैमाने का उत्पादन विश्व-संकट के लिए उत्तरदायी है। एक क्षण के लिए अगर मान भी लें कि मशीनें मानव-जाति की सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सकती हैं तो भी इनका कार्य उत्पादन के विशिष्ट क्षेत्रों पर ही केन्द्रित होगा और आपको वितरण का नियमन करने के लिए एक जटिल व्यवस्था अलग से करनी पड़ेगी। इसके विपरीत, जिस क्षेत्र में जिस वस्तु की आवश्यकता है, अगर वहीं उसका उत्पादन और वितरण दोनों किए जाएँ तो इनका नियमन स्वयमेव हो जाता है और उसमें धोखाधड़ी की गुंजाइश कम रहती है तथा सट्टेबाजी की तो बिल्कुल नहीं।"[17]

ग्रामोद्योग में छोटे स्तर पर स्थानीय ज़रूरतों के लिए उत्पादन से वितरण की लागत में अतिरिक्त बढ़ोतरी नहीं होती है। अतः मनाफ़े के लिए क़ीमतों में वृद्धि भी ज़रूरी नहीं रहती है। रोज़गार की समस्या भी स्थानीय स्तर पर हल करके ग़रीबी को जड़ से मिटाया जा सकता है। गाँधी-आर्थिकी के हिसाब से ग़रीबी को अतिशय उत्पादन से नहीं बल्कि ग़रीबों को उत्पादन-कार्यों में रोज़गार देकर ही मिटाया जा सकता है। नन्दकिशोर आचार्य ने 'स्वदेशी' के आर्थिक-साभ्यतिक सरोकारों के व्यापक आशयों की तफ़्सील दी है, "महात्मा गाँधी, दरअसल, जिस तकनीकी या 'स्वदेशी' का आग्रह करते हैं, उसमें उत्पादन के साधनों पर किसी तरह के केन्द्रीकृत स्वामित्व और शोषण की सम्भावना अत्यन्त न्यून हो जाती है। इस तकनीकी में हर व्यक्ति या कुटुम्ब ही श्रमिक होता है और वही स्वामी भी। उस उत्पादन को उपभोक्ता तक पहुँचाने के लिए किसी बिचौलिए संस्थान की भी ख़ास ज़रूरत नहीं रहती। इस तकनीकी और उससे विकसित उत्पादन-सम्बन्धों के कारण पूँजी का शोषणपरक केन्द्रीकरण सम्भव नहीं रहता और लाभ के सम्भव समान वितरण अर्थात् आर्थिक समानता का आदर्श भी स्वयमेव ही लागू जाता है। ऐसी ही समाज व्यवस्था को वास्तविक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था कहा जाना चाहिए, जिसकी आर्थिक प्रक्रिया में शोषण की सम्भावना ही न रहे।"[18] ई. एफ़. शुमाकर के 'स्मॉल इज़ ब्यूटीफ़ुल' का भी सार लगभग यही है।

गाँधी की अहिंसक-आर्थिकी में बड़े उद्योगों की भूमिका ग्रामोद्योगों के सहायक की है। क्योंकि बड़े उद्योगों की मुख्य भूमिका एकाधिकारवादी निरंकुशता में तब्दील होती जाती है। गाँधी कहते हैं, "मेरी कल्पना के अनुसार गाँव की दस्तकारियों के साथ-साथ बिजली, पोत-निर्माण, लोहे के कारखाने, मशीन बनाने के कारखाने आदि भी रहेंगे। किन्तु निर्भरता का क्रम उलट जाएगा।"[19] मशीनों और बड़े उद्योंगों का उचित स्थान यही है।

आधुनिक अति-औद्योगिक अर्थतन्त्र में विकास की क़ीमत कमज़ोर ही चुकाता है। यह अर्थतन्त्र देश के भीतर तथाकथित 'विकास' के लिए एक समुदाय के हितों की क़ीमत पर दूसरे को लाभ पहुँचाता है, जिसे 'आन्तरिक उपनिवेशन' कहा जाना चाहिए। 'विकास' के तर्क से प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए वनवासियों को उनके नैसर्गिक निवास से विस्थापित किया जाना 'आन्तरिक उपनिवेशन' का ही एक प्रकार है। वैश्विक स्तर पर यह हिंसक-अर्थशास्त्र आर्थिक साम्राज्यवाद और नवउनिवेशवाद के रूप में सकार होता है। "यह तकनीकी ग़रीब और अविकसित देशों पर बड़े और विकसित देशों का आर्थिक ही नहीं, राजनैतिक नियंत्रण बढ़ाने में भी सहयोग करती है, क्योंकि इसके लिए जिस विशेषज्ञता और पूँजी की आवश्यकता होती है, वह अविकसित या विकासशील देशों के पास नहीं होती और यदि हर चीज़ बाज़ार की वस्तु है तो इस बात की अनदेखी नहीं की जा सकती कि विकसित और शक्तिशाली देश अपनी तकनीकी विशेषज्ञता और पूँजी निवेश की क्या कीमत वसूल करते हैं।"[20] यह आकस्मिक नहीं कि, बहुराष्ट्रीय निगमों से संचालित अर्थव्यवस्था में 'ग़रीबी का वैश्वीकरण' हुआ है। इस दशा में अविकसित या विकासशील देश अपने विकास लिए विकसित देशों पर निर्भर हो गये हैं। इस निर्भरता के बदले प्रभु देशों द्वारा उनका शोषण किया जाता है, नतीजतन उनका विकास अवरुद्ध हो जाता है। "निर्भरता सिन्ड्रोम अल्पविकसित देशों को समृद्ध और शक्ति सम्पन्न देशों की घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों से बाँध देता है और उनके स्वाधीन और देशज विकास की सम्भावना को उलट पुलट देता है।"[21]

स्वदेशी प्रौद्योगिकी आत्मनिर्भरता का सूत्र है। 'स्वदेशी' तकनीक का विउपनिवेशित रूप है। स्वदेशी और ग्रामोद्योग आर्थिक-स्वराज की कुंजी हैं, इनसे साम्राज्यवादी आर्थिकी और नवउपनिवेशवाद का प्रतिकार किया जा सकता है। "स्वदेशी ... प्रकारान्तर से आधुनिक तकनीकी से प्रसूत अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक साम्राज्यवाद के सभी ज्ञात-अज्ञात रूपों के बरक्स एक सत्याग्रह हो जाता है। इस अर्थ में गाँधी जी द्वारा प्रस्तावित 'स्वदेशी' उस व्यवस्था के विकल्प का बीज है, जिसके कारण मानव-जाति अपने अस्तित्व की जड़ों पर ही कुठाराघात करती जा रही है। 'स्वदेशी' से प्रेरित उत्पादन-शक्तियों के आधार पर ही ऐसे उत्पादन-सम्बन्ध विकसित होंगे, जो हमें एक 'न्यायपूर्ण' अधिरचना- सुपर स्ट्रक्चर-की ओर ले जा सकेंगे।"[22] इस नज़रिए से गाँधी की अहिंसक-आर्थिकी आर्थिक-स्वराज का प्रस्थान है। भारत के विकास की आत्मनिर्भर गति के लिए गाँधी के 'स्वदेशी' मार्ग की ओर भी देखा जाना चाहिए।

गाँधी ने संसाधनों के स्वामित्व और लाभ के वितरण पर भी विचार किया है। अहिंसक-आर्थिकी की स्थापना के लिए गाँधी ने उत्पादन के साधनों और लाभ के वितरण पर पूरे समाज का हक़ माना, "मेरे विचार में भारत, और भारत ही क्यों सारी दुनिया, का आर्थिक गठन ऐसा होना चाहिए कि उसमें किसी को रोटी-कपड़े की तंगी न रहे। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त काम उपलब्ध होना चाहिए। यह आदर्श सर्वत्र तभी प्राप्त किया जा सकता है जब जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं के उत्पादन के साधन आम जनता के नियंत्रण में हों।"[23]

श्रम उत्पादन के लिए अनिवार्य संसाधन है बल्कि श्रम भी पूँजी का एक रूप है। उत्पादन के लाभ पर श्रम का भी हक़ पूँजी के बराबर होना चाहिए। 'श्रम' को उसके अधिकार से वंचित करना हिंसा है। "श्रम के अलावा अन्य संसाधन भी किसी एक व्यक्ति के नहीं हैं। जो कच्चा माल चाहिए, वह पूरे समाज का है। जिस तकनीकी ज्ञान द्वारा उत्पादन सम्भव होता है, वह भी पूरे समाज के विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया का फल है। यहाँ तक कि जो पूँजी निवेश किया जाता है, वह भी बैंकों, राजकीय कर्ज़ या सहायता, शेयरों आदि के माध्यम से प्राप्त होता है, अत: उस पर भी किसी का निजी अधिकार नैतिक आधार पर मान्य नहीं हो सकता। कहा जा सकता है कि एक पूँजीपति अपने प्रबन्धन-कौशल के आधार पर इन सबका संयोजन कर उत्पादन सम्भव कराता है। लेकिन तब उसे उस प्रबन्धन कौशल के लिए उसी प्रकार पारिश्रमिक या मानदेय दिया जाना संगत होगा, जिस प्रकार कच्चे माल, तकनीकी या श्रम आदि के लिए दिया जाता है। अगर ये सभी संसाधन समाज के हैं तो उनके लाभ पर भी पूरे समाज का ही अधिकार होना चाहिए।"[24]

विशाल उद्योगों के लिए गाँधी ने 'न्यासिता' का सिद्धान्त दिया है। न्यास का अर्थ है किसी चीज़ को दूसरे के यहाँ इस विश्वास पर रखना कि वह उसकी रक्षा करेगा और माँगने पर लौटा देगा। न्यासिता स्वामित्व का अनासक्त रूप है। न्यासी द्वारा संचालित किसी बड़े कारख़ानों का उद्देश्य मुनाफ़ा नहीं जनहित होना चाहिए और इनका स्वामित्व राष्ट्र या जनता की सरकार के पास हो। कुछ मामलों में गाँधी इनपर राज्य का नियन्त्रण ज़रूरी मानते हैं। इस सन्दर्भ में गाँधी ने मज़दूरों और राज्य को भी अपने कर्त्तव्यों के प्रति सचेत किया है, "यदि मालिक अभिभावकों की तरह व्यवहार करने को उद्यत न हों तो उन्हें मालिकों के प्रति असहयोग और सविनय अवज्ञा का सहारा ले लेना चाहिए।"[25] न्यासिता के लिए अपनी मर्ज़ी से तैयार न होने वाले पूँजीपतियों के सन्दर्भ में गाँधी का सुझाव है कि, "हमें राज्य के ज़रिये न्यूनतम हिंसा का प्रयोग करते हुए उन्हें उनकी सम्पत्ति से वंचित करना होगा।"[26] न्यासिता का सिद्धान्त कोई आदर्शवादी कपोल कल्पना नहीं है, लोकतन्त्र भी राजनीतिक न्यासिता है।

गाँधी का सभ्यता-विकल्प तत्कालीन उपनिवेशवाद और युरोकेन्द्रीयता से बहस करते हुए रचा गया है। उनकी चिन्ताएँ मूलगामी हैं इसीलिए मानवता के सामने तहज़ीबी संकट पेश आये तो हमें गाँधी की ओर भी देखना चाहिए। "पहले तो यूरोपीय सभ्यता का रोना था अब तो वह यूरोपीय सभ्यता का विराट रूप वैश्वीकरण में बदलकर महादानव के रूप में आ खड़ा हुआ है। वह भाषा, संस्कृति, भाईचारे, अर्थ और जीवन के मूल्यों को निगलता जा रहा है।"[27]

औपनिवेशिक ज्ञानमीमांसा के प्रभाव में उपनिवेशितों ने भी अपनी देशज ज्ञान सरणियों और जीवनपद्धतियों की अवहेलना की। विकास की उपनिवेशवादी यूरोकेन्द्रित अवधारणा में भौतिक समृद्धि के लिए न सिर्फ़ प्रकृति-ध्वंस बल्कि क़ुदरत को ग़ुलाम बना लेना भी जाएज़ है। इससे बढ़कर हिंसा का कोई रूप नहीं है। इसके विपरीत उपनिवेशित समाजों की पारम्परिक जीवनपद्धति के मर्म में प्रकृति-साहचर्य का दर्शन है। गाँधी की अहिंसक-आर्थिकी में भारतीय देशज ज्ञान-विज्ञान से प्रेरित प्रकृति-साहचर्य की जीवनपद्धति की अनुशंसा है। उपभोग पर आधारित हिंसक-आर्थिकी द्वारा मनुष्य, समाज और देशों के न्यायपूर्ण अधिकारों की अवहेलना भी एक तरह की हिंसा ही है। "इनके विपरीत भारतीय परम्परा का अनुधावन करते हुए गांधीजी ने आत्मा पर आधारित एक अर्थशास्त्र की परिकल्पना रखी है जो सही अर्थों में शास्त्र की श्रद्धापूर्ण संज्ञा पाने की अधिकारी है। यह अहिंसा और जीवन-निष्ठा पर आधारित है। जिस तथ्य से किसी प्रकार अवदमन और दमन घटित हो,

अपना या किसी और का, वह अहिंसा नहीं। सच्ची जीवननिष्ठा अहिंसा की विश्वासी है।"[28] गाँधी की अहिंसक-आर्थिकी की केन्द्रीय चिन्ता है मनुष्य का नैतिक साभ्यतिक विकास। "अहिंसक तकनीकी, अहिंसक उत्पादन-सम्बन्ध और अहिंसक स्वामित्व विकसित करने की अहिंसक प्रक्रिया के दिशा-संकेतों द्वारा महात्मा गाँधी बार बार हमें स्मरण दिलाते हैं कि हम केवल आर्थिक प्राणी या उपभोक्ता मात्र नहीं हैं और हमारी आर्थिक आवश्यकताएँ न केवल हमारे नैतिक विकास में कहीं भी आड़े नहीं आतीं बल्कि उसमें एक प्रमुख माध्यम बन सकती हैं–यदि हम अपने वास्तविक आत्म को भूलें नहीं।"[29]

किसी भी महान व्यक्तित्व का मूल्यांकन उसके विचार पुंज और कृतित्त्व के आधार पर तो होना ही चाहिए, इस पैमाइश में उन विचारों की हालिया प्रासंगिकता भी जाँची जानी चाहिए। इस लिहाज़ से गाँधी हज़ार-हज़ार मर्तबा प्रासंगिक साबित हुए हैं, "दुनिया की तरफ निगाहें दौड़ायें तो दक्षिण अफ्रीका के रंगभेद विरोधी आन्दोलन से लेकर यूरोप के पर्यावरण आन्दोलन और ब्राजील के निर्धनता निवारण प्रयासों से लेकर भारत की ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना और महिला सशक्तिकरण योजना, सबमें गाँधी की गूँज सुनाई पड़ती है। अगर हम सुन नहीं पा रहे हैं तो दोष गाँधी का कैसे होगा?"[30] गाँधी की अहिंसक-आर्थिकी सभ्यता और विकास के विउपनिवेशीकरण का एक पहलू है। विउपनिवेशित मानस से ही उसका मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ :

1. नन्दकिशोर आचार्य; विद्रोही महात्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ. 47
2. यंग इंडिया, 5 फ़रवरी, 1925, पृ.48
3. वही, 3 सितम्बर, 1921, पृ. 325
4. नन्दकिशोर आचार्य; सभ्यता का विकल्प, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 2012, पृ. 37-38
5. हरिजन, 1 सितम्बर, 1940, पृ. 271-272
6. यंग इंडिया, 15 अक्टूबर, 1931, पृ.310
7. नन्दकिशोर आचार्य; सभ्यता का विकल्प, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 2012, पृ. 43
8. नन्दकिशोर आचार्य; विद्रोही महात्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ. 52
9. वही, पृ. 56
10. हरिजन, 25 अगस्त, 1946, पृ. 281
11. हेमंत कुकरेती; गांधी-दर्शन : आलोचनात्मक अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृ. 41
12. हिन्द स्वराज : मूल पाठ और कुछ ऐतिहासिक टिप्पणियाँ, पृ. 209, राष्ट्रीय गाँधी संग्रहालय, नई दिल्ली, 2010
13. जयप्रकाश नारायण; मेरी विचार-यात्रा भाग-1, सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 57-58
14. हेमंत कुकरेती; गांधी-दर्शन : आलोचनात्मक अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृ. 35 पर उद्धृत।

15. वही, पृ. 124
16. नन्दकिशोर आचार्य; विद्रोही महात्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ. 61
17. हरिजन, 2 नवम्बर, 1934, पृ. 301-302
18. नन्दकिशोर आचार्य; विद्रोही महात्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ. 67-68
19. हरिजन, 27 जनवरी, 1940, पृ. 428
20. नन्दकिशोर आचार्य; विद्रोही महात्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ. 58
21. श्यामाचरण दुबे; विकास का समाजशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 78
22. नन्दकिशोर आचार्य; विद्रोही महात्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ. 65
23. यंग इंडिया, 15 नवम्बर, 1928, पृ. 381
24. नन्दकिशोर आचार्य; विद्रोही महात्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ. 67
25. हरिजन, 25 अगस्त, 1940, पृ. 260-261
26. दि मॉडर्न रिव्यू, अक्टूबर, 1952, पृ. 301
27. गिरिराज किशोर; गांधी और समाज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 86
28. कुबेरनाथ राय; मराल, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2008, पृ. 68
29. नन्दकिशोर आचार्य; विद्रोही महात्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ. 70
30. आनन्द कुमार; गाँधी-लोहिया जयप्रकाश और हमारा समय, नयी किताब, दिल्ली, पृ. 48

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता तथा शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध का अध्ययन

डॉ0 स्वाती जायसवाल
व्याख्याता (शिक्षाशास्त्र)
सोहागी कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
खटिया, सोहागी, रीवां (म0प्र0)

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन का शीर्षक **"माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता तथा शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध का अध्ययन"** करना है। प्रस्तुत अध्ययन में शोध विधि के रूप में वर्णनात्मक अनुसंधान विधि के अन्तर्गत सहसम्बन्धात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्रयागराज जनपद के अन्तर्गत माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को जनसंख्या माना गया है। प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्रयागराज जनपद के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् 200 विद्यार्थियों (100 छात्र एवं 100 छात्राओं) का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा न्यादर्श के रूप में चुनाव किया गया है। माध्यमिक स्तर के छात्रों के शैक्षिक दुश्चिंता के मापन के लिए डॉ0 आर0एल0 भारद्वाज, एच0 शर्मा एवं एम0 भार्गव, डी.एस. कालेज, अलीगढ़ द्वारा निर्मित 'दुश्चिंता परीक्षण' का प्रयोग किया गया है। यह परीक्षण नेशनल साइकोलॉजिकल कारपोरेशन, आगरा द्वारा प्रकाशित किया गया है। शैक्षिक उपलब्धि के लिए विद्यार्थियों के कक्षा–9 की परीक्षा में प्राप्तांक को सम्मिलित किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण के लिए गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक सांख्यिकी विधि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष में कि– **लिंग एवं क्षेत्र के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि में ऋणात्मक सहसम्बन्ध पाया गया अर्थात् शैक्षिक** दुश्चिंता में वृद्धि का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में कमी तथा शैक्षिक दुश्चिंता में कमी का उनके शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि पाया गया।

मुख्य शब्द– माध्यमिक स्तर, शहरी, ग्रामीण, छात्र, छात्राएँ, शैक्षिक दुश्चिंता, शैक्षिक उपलब्धि, सम्बन्ध

प्रस्तावना

प्रश्न अब उठता है कि क्या तनाव 21वीं सदी की ही देन है पूर्णतः सही नहीं है तनाव और मनुष्य की उत्पत्ति साथ–साथ होती है तथा उसके मृत्यु के साथ समाप्त हो जाती है। यद्यपि यह कहना अतिश्योक्ति न होगी की व्यक्तियों में तनाव की अतितीव्रता में औद्योगिक क्रान्ति ने उच्च योगदान दिया है। **अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने आधुनिक काल को मानव के लिए एक विशेष प्रकार की आपात स्थिति की अवस्था कहा है।** विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की प्रगति के फलस्वरूप मानव को सुख–सुविधा के सभी साधन उपलब्ध हो रहे मात्र 'बटन चीप' कर वह सभी कुछ प्राप्त करने अवस्था में आ जा रहा है। किन्तु जैसे–जैसे सुख भोग के उपकरण बढ़ते जा रहे हैं

वैसे–वैसे सुख की अनुभूति शिथिल पड़ती जा रही है। मशीनी जीवन जीते–जीते मनुष्य भी मशीन बनता जा रहा है। उसके सारे कार्य यन्त्रवत होते जा रहे हैं तथा मनुष्य की आन्तरिकता, उसकी मानवीयता का हनन होता जा रहा है तथा मानव संवेगात्मक अस्थिरता एवं 'चिन्ता' से घिरता जा रहा है इस प्रकार मानव अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है।

डॉ0 राधाकृष्णन आयोग (1948–49) ने उच्च शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करते हुए प्रथम उद्देश्य में यह कहा कि **''ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना जो शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से स्वस्थ्य एवं प्रबुद्ध हों''** इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निश्चित रूप से छात्रों को गुणवत्तायुक्त एवं रोजगारपरक शिक्षा देकर छात्रों को उनके सुरक्षित भविष्य की गारण्टी दी जा सकती है जिससे छात्र तनाव से दूर रहकर शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ्य रहकर देश एवं स्वयं के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए राधाकृष्णन आयोग ने **'छात्र कल्याण बोर्ड'** के गठन की मांग की जिसमें शारीरिक शिक्षा की उचित व्यवस्था एवं मानसिक रूप से छात्रों को तनावमुक्त रखने के लिए पर्याप्त मात्रा में मनोरंजन की उचित व्यवस्था की बात कही।

भय तथा दुश्चिंता दोनों एक दूसरे से काफी सम्बन्धित संवेग है। डर एक ऐसी संवेगात्मक स्थिति हे जिसमें किसी एक ऐसे खतरनाक वस्तु या घटना के प्रति व्यक्ति को प्रतिक्रिया करना होता है जिससे व्यक्ति आसानी से छुटकारा नही पा सकता है।

भय केवल व्यक्तित्व विकास को ही अवरूद्ध नहीं करता है बल्कि भय एक ऐसा पेनकिलर है जो तात्कालिक राहत भले देता हो, लेकिन भयग्रस्त व्यक्ति में झूठ, पाखण्ड, चोरी, नकल, बहानेबाजी जैसी अनेक मानसिक विकृतियों को जन्म दे जाता है जिसके कारण मनुष्य अविश्वासी हो जाता है तथा अविश्वास मनुष्य को कमजोर करता है। भयग्रस्त व्यक्ति प्रश्न करने में हिचकिचता है साथ ही प्रतिरोध तो बहुत दूर की बात रही वह अपने साथ होने वाली जोर–जबरजस्ती और न्याय को अपनी नियति मान लेता है।

भय, दुश्चिंता, कु–व्यवस्था तथा नकारात्मकता से उत्पन्न मनोविकार है, जिसमें सीखने की जगह विस्मरण होता है या कहें शिक्षा, दुश्चिंता उत्पन्न करने वाले घटक ही बन कर रह जाता है। ऐसी स्थिति में छात्र के भीतर आत्मिक, भावात्मक एवं संवेगात्मक विकास के मार्ग को अवरूद्ध करता करता है।

भय के इन दुष्प्रभावों को देखते हुए ही शिक्षा अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत शारीरिक और मानसिक दण्ड को पूरी तरह से प्रतिबंधित कर दिया गया है। यह कहा जा रहा है कि बच्चे को भय दिखाने की नहीं बल्कि उससे आत्मीय संवाद करने की जरूरत है ताकि उसके भीतर सही–गलत के बीच अन्तर करने का एक बोध पैदा हो। यह नही भूलना चाहिए कि बोध कभी भी भय से पैदा नहीं किया जा सकता है। यदि भय से पैदा करने की कोशिश करेंगे तो सजा का डर खत्म होते या अभी कौन देख रहा है, का भाव पैदा होते ही, अपनी मनमानी करने लग जाएगा। उसके भीतर की गलत प्रवृत्तियां खत्म नहीं होंगी, मौका मिलते ही फिर उभर आएंगी।

भारत बाल अधिकारों का समझौता 1989 को मानने वाला देश है। इसमें अन्य बाल अधिकारों के साथ–साथ एक महत्वपूर्ण बाल अधिकार यह है कि बच्चे को भयमुक्त एवं तनावमुक्त वातावरण में जीवन का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र संघ का बाल अधिकारों पर कन्वेशन 1989 के अनुच्छेद 12, 19, 28 व 34 में बच्चों को भयमुक्त, तनावमुक्त एवं दुश्चिंता से मुक्त करने हेतु महत्वपूर्ण मार्गदर्शक सिद्धान्त अभिविहित किये गये हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 कहती है कि– ''सीखने की क्षमता देने वाला वातावरण वह होता है जहाँ बच्चे सुरक्षित महसूस करते हैं, जहां भय का कोई स्थान नहीं होता और स्कूली रिश्तों में बराबरी और जगह में समता होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में विद्यालय में अधिगम को आनन्ददायक बनाने तथा भयमुक्त करने के लिये बाल केन्द्रित अधिगम पर जोर दिया गया था।

दुश्चिंता चिरकालिक भय का दूसरा नाम है, दुश्चिंता में मानसिक स्थिति अस्पष्ट होती है लेकिन यह संचयी होती है, और प्रत्येक क्षण एक खास समय तक बढ़ते ही जाता है। दुश्चिंता की उत्पत्ति भय से होता है जब भय चिरकालिक हो जाता है इससे व्यक्ति में दुश्चिंता की उत्पत्ति होती है।

दुश्चिंता की परिभाषा मन की एक प्रकार की बेचैनी या एक प्रका की आशंका, चिड़चिड़ापन, अनिष्ट के पूर्वाभास या व्यक्ति के आन्तरिक जीवन के विक्षोभ से उत्पन्न क्लेश के रूप में दी जाती है।

दुश्चिंता एक प्रक्रिया में रूकावट समझी जाती है। एक व्यक्ति जो दुश्चिंता से पीड़ित होता है वह व्यकित किसी भी कार्य को करने में अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है।

अगर हम माध्यमिक शिक्षा की बातें करें तो इस स्तर पर शिक्षा किशोर छात्र एवं छात्राओं के लिए होती है। यह अवस्था उनके बनने–बिगड़ने की अवस्था होती है, यदि इस आयु स्तर पर उनमें समाज एवं राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य की भावना विकसित कर दी जाती है तो वे समाज के लिए एक अच्छे सदस्य एवं देश के लिए एक अच्छे नागरिक साबित होते है। चंचल किशोर–किशोरियों को उचित दिश–निर्देश देना माध्यमिक शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है, इसलिए माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था की गई है।

माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों में पाठ्यक्रम को इतना अधिक होता है कि शिक्षकों द्वारा पाठ्यक्रम को पूरी तरह से नहीं पढ़ाया जाता है और उनमें अपने पाठ्यक्रम के पूर्ण जानकारी न होने पर उनमें शैक्षिक दुश्चिंता व्याप्त हो जाती है जिससे उनके शैक्षिक उपलब्धि प्रभावित होती है।

जहेरी एवं अन्य (2012) ने निष्कर्ष में पाया कि– छात्र–छात्राओं में प्रवेश दुश्चिंता में सार्थक अन्तर पाया गया जबकि छात्राओं में प्रवेश दुश्चिंता छात्रों की अपेक्षा उच्च पाया गया। निष्कर्ष से प्राप्त होता है कि रोजाना आरामदायक अतिसंवेदनशीलता का विलोपन एवं चिन्ता कम करने के साथ अन्तःशक्ति की क्षमता को बढ़ता है एवं प्रवेश दुश्चिंता का कम करता है। **महतो एवं जंगीर (2012)** ने निष्कर्ष के रूप में पाया कि– सरकारी एवं गैर सरकारी स्कूल के वातावरण एवं विद्यार्थियों के शैक्षिक दुश्चिंता में सार्थक सहसम्बन्ध पाया गया। सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में उच्च शैक्षिक दुश्चिंता पायी गयी इसका कारण यह हो सकता है कि सरकारी विद्यालयों में शिक्षण कार्य निम्न स्तर का हो। **अटरी एवं नीलम (2013)** ने निष्कर्ष के रूप में पाया कि– छात्राओं में शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि छात्रों की अपेक्षा उच्च पाया गया। **हकन एवं अन्य (2013)** ने निष्कर्ष के रूप में पाया कि– उच्चतर हाईस्कूल विद्यार्थियों के प्रवेश दुश्चिंता एवं प्रवेश परीक्षा के मध्य नकारात्मक सहसम्बन्ध नहीं पाया गया। शैक्षिक उपलब्धि एवं विश्वविद्यालय प्रवेश परीक्षा में धनात्मक सहसम्बन्ध पाया गया। छात्राओं में प्रवेश दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि छात्रों की अपेक्षा उच्च पाया गया जबकि विश्वविद्यालय प्रवेश परीक्षा के सम्बन्ध छात्र उच्च दुश्चिंता प्राप्त किये। **बिहारी, (2014)** ने निष्कर्ष के रूप में पाया कि– माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं एवं शहरी तथा ग्रामीण विद्यार्थियों के शैक्षिक दुश्चिंता में कोई सार्थक अन्तर

नहीं पाया गया। सरकारी विद्यालयों की अपेक्षा गैर सरकारी विद्यालयों में सुविधा, अच्छा वातावरण, मीडिया एवं अन्य कारक के कारण विद्यार्थियों की उच्च शैक्षिक उपलब्धि एवं निम्न दुश्चिंता पाया गया। **सिद्दिकी एवं रहमान (2014)** ने निष्कर्ष में पाया कि– माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के शैक्षिक दुश्चिंता एवं सामाजिक– आर्थिक स्तर के मध्य ऋणात्मक सहसम्बन्ध पाया गया। लिंग एवं सामाजिक–आर्थिक स्तर का प्रभाव शैक्षिक दुश्चिंता पर पाया गया। छात्राओं में छात्रों की अपेक्षा उच्च शैक्षिक दुश्चिंता पायी गयी। **फात्मा (2015)** ने निष्कर्ष के रूप में पाया कि– किशोरावस्था के छात्र–छात्राओं के दुश्चिंता में सार्थक अन्तर पाया गया तथा छात्राओं में दुश्चिंता छात्राओं की अपेक्षा उच्च पाया गया जबकि छात्र–छात्राओं के शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक नहीं पाया गया। शहरी एवं ग्रामीण किशोरों के दुश्चिंता में सार्थक अन्तर पाया गया जबकि दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि में नकारात्मक सहसम्बन्ध पाया गया। **महाजन (2015)** ने निष्कर्ष में पाया कि– माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के शैक्षिक दुश्चिंता एवं अभिभावक–सहभागिता के मध्य सार्थक एवं ऋणात्मक सहसम्बन्ध पाया गया। छात्र–छात्राओं के शैक्षिक दुश्चिंता में अन्तर नहीं पाया गया अर्थात् लिंग के आधार पर शैक्षिक दुश्चिंता में कोई अन्तर नहीं पाया गया। **कुमार (2016)** ने निष्कर्ष के रूप में पाया कि– लिंग के आधार पर विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि, दुश्चिंता एवं तनाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। परिवार के आकार, पिता के शैक्षणिक आधार एवं पिता के व्यवसाय के सम्बन्ध में विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि, दुश्चिंता एवं तनाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। **सिवशंकर एवं रविन्द्रनन्दन (2016)** ने निष्कर्ष के रूप में पाया कि– लिंग के आधार पर शैक्षिक दुश्चिंता, गुणात्मक चिन्ता एवं स्थिति चिन्ता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। लिंग के आधार पर संवेगात्मक बुद्धि की विमा परानुभूति, स्व–अभिप्रेरणा एवं स्व–विकासात्मक में सार्थक अन्तर पाया गया जबकि स्व–जागरूकता, संवेगात्मक स्थिरता, कुशल सम्बन्ध, अखण्डता मूल्य स्थिति, वनबद्धता एवं परोपकारिता में अन्तर नहीं पाया गया। **बंगा एवं शर्मा (2016)** ने निष्कर्ष के रूप में पाया कि– उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं के दुश्चिंता में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। छात्रों में शैक्षिक दुश्चिंता छात्राओं की अपेक्षा उच्च पाया गया। **युसुफ (2016)** ने दुश्चिंता से प्रभावित विद्यार्थियों में निम्न शैक्षिक उपलब्धि पाये गये। विद्यार्थियों में दुश्चिंता अव्यवस्था में विद्यालयी नियम, शिक्षक आचरण एवं व्यवहार, शारीरिक दण्ड के साथ–साथ विद्यार्थियों के गैर जिम्मेदारी का प्रभाव पाया गया। **बंगा (2016)** ने निष्कर्ष में प्राप्त किया कि– आयु के विभिन्न आधार पर छात्रों एवं छात्राओं में शैक्षिक दुश्चिंता में अन्तर पाया गया। आयु के विभिन्न आधार पर छात्र–छात्राओं एवं विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता अधिकता, कमी एवं समानता पायी गयी।

अतः प्राप्त अध्ययनों से ज्ञात होता है कि शैक्षिक दुश्चिंता विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक एवं ऋणात्मक सम्बन्ध होता है।

समस्या कथन–

प्रस्तुत अध्ययन का शीर्षक निम्नवत् है–

''माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता तथा शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध का अध्ययन।''

अध्ययन का उद्देश्य–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों हैं–

1. लिंग के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध का अध्ययन करना।
2. क्षेत्र के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों के आधार पर निम्नलिखित परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जायेगा–

1. लिंग के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।
2. क्षेत्र के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

शोध विधि

प्रस्तुत अध्ययन में शोध विधि के रूप में वर्णनात्मक अनुसंधान विधि के अन्तर्गत सहसम्बन्धात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या–

प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्रयागराज जनपद के अन्तर्गत माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को जनसंख्या माना गया है।

न्यादर्श–

प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्रयागराज जनपद के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् 200 विद्यार्थियों (100 छात्र एवं 100 छात्राओं) का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा न्यादर्श के रूप में चुनाव किया गया है।

प्रयुक्त उपकरण–

माध्यमिक स्तर के छात्रों के शैक्षिक दुश्चिंता के मापन के लिए डॉ0 आर0एल0 भारद्वाज, एच0 शर्मा एवं एम0 भार्गव, डी.एस. कालेज, अलीगढ़ द्वारा निर्मित 'दुश्चिंता परीक्षण' का प्रयोग किया गया है। यह परीक्षण नेशनल साइकोलॉजिकल कारपोरेशन, आगरा द्वारा प्रकाशित किया गया है। शैक्षिक उपलब्धि के लिए विद्यार्थियों के कक्षा–9 की परीक्षा में प्राप्तांक को सम्मिलित किया गया है।

सांख्यिकी विधि–

प्रस्तुत अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण के लिए गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक सांख्यिकी विधि का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्त विश्लेषण एवं निर्वचन

H_1 लिंग के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध है।

H_{01} लिंग के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सम्बन्ध नहीं है।

सारणी संख्या–1

लिंग के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक

लिंग	न्यादर्श का आकार	स्वतंत्रता का अंश (df) (N-2)	प्राप्त सहसम्बन्ध गुणांक (r)	सार्थकता स्तर
विद्यार्थी	200	198	–0.2462*	सार्थक
छात्र	100	98	–0.3965*	सार्थक
छात्राएँ	100	98	–0.1720	असार्थक

*0.05 स्तर पर सार्थक

सारणी 1 से स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक –0.2462 है जो 198 स्वतंत्र्यांश के लिए 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु आवश्यक मान 0.138 से अधिक है। यह मान 0.05 स्तर पर सार्थक है अतः शून्य परिकल्पना निरस्त की जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध है अर्थात् विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता अधिक होने पर शैक्षिक उपलब्धि में कमी तथा शैक्षिक दुश्चिंता में कमी उनके शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि होगी।

माध्यमिक स्तर के छात्रों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक –0.3965 है जो 98 स्वतंत्र्यांश के लिए 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु आवश्यक मान 0.195 से अधिक है। यह मान 0.05 स्तर पर सार्थक है अतः शून्य परिकल्पना निरस्त की जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि माध्यमिक स्तर पर छात्रों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध है अर्थात् छात्रों की शैक्षिक दुश्चिंता अधिक होने पर शैक्षिक उपलब्धि में कमी तथा शैक्षिक दुश्चिंता में कमी उनके शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि होगी।

माध्यमिक स्तर की छात्राओं की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक –0.1720 है जो 98 स्वतंत्र्यांश के लिए 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु आवश्यक मान 0.195 से कम है। यह मान 0.05 स्तर पर असार्थक है अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि माध्यमिक स्तर पर छात्राओं की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं असार्थक सहसम्बन्ध है अर्थात् छात्राओं की शैक्षिक दुश्चिंता में कमी या वृद्धि से उनके शैक्षिक उपलब्धि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

2. क्षेत्र के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध का अध्ययन करना।

H_2 क्षेत्र के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध है।

H_{02} क्षेत्र के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सम्बन्ध नहीं है।

सारणी संख्या–2

क्षेत्र के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक

क्षेत्र	न्यादर्श का आकार	स्वतंत्रता का अंश (df) (N-2)	प्राप्त सहसम्बन्ध गुणांक (r)	सार्थकता स्तर
ग्रामीण विद्यार्थी	100	98	–0.3505*	सार्थक
ग्रामीण छात्र	50	48	–0.3866*	सार्थक
ग्रामीण छात्राएँ	50	48	–0.0606	असार्थक
शहरी विद्यार्थी	100	98	–0.1456	असार्थक
शहरी छात्र	50	48	–0.4860*	सार्थक
शहरी छात्राएँ	50	48	–0.3627*	सार्थक

*0.05 स्तर पर सार्थक

सारणी 2 से स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर के ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक –0.3505 है जो 98 स्वतंत्र्यांश के लिए 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु आवश्यक मान 0.195 से अधिक है। यह मान 0.05 स्तर पर सार्थक है अतः शून्य परिकल्पना निरस्त की जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध है अर्थात् ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता अधिक होने पर शैक्षिक उपलब्धि में कमी तथा शैक्षिक दुश्चिंता में कमी उनके शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि होगी।

माध्यमिक स्तर के ग्रामीण छात्रों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक –0.3866 है जो 48 स्वतंत्र्यांश के लिए 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु आवश्यक मान 0.273 से अधिक है। यह मान 0.05 स्तर पर सार्थक है अतः शून्य परिकल्पना निरस्त की जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण छात्रों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध है अर्थात् ग्रामीण छात्रों की शैक्षिक दुश्चिंता अधिक होने पर शैक्षिक उपलब्धि में कमी तथा शैक्षिक दुश्चिंता में कमी उनके शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि होगी।

माध्यमिक स्तर की ग्रामीण छात्राओं की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक –0.0606 है जो 48 स्वतंत्र्यांश के लिए 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु आवश्यक मान 0.273 से कम है। यह मान 0.05 स्तर पर असार्थक है अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि माध्यमिक स्तर पर छात्राओं की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं असार्थक सहसम्बन्ध है अर्थात् छात्राओं की शैक्षिक दुश्चिंता में कमी या वृद्धि से उनके शैक्षिक उपलब्धि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

माध्यमिक स्तर के शहरी विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक –0.1456 है जो 98 स्वतंत्र्यांश के लिए 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु आवश्यक

मान 0.195 से कम है। यह मान 0.05 स्तर पर सार्थक है अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि माध्यमिक स्तर पर शहरी विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं असार्थक सहसम्बन्ध है अर्थात् शहरी विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता कम या अधिक होने पर शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि एवं कमी नहीं होगी।

माध्यमिक स्तर के शहरी छात्रों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक –0.4860 है जो 48 स्वतंत्र्यांश के लिए 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु आवश्यक मान 0.273 से अधिक है। यह मान 0.05 स्तर पर सार्थक है अतः शून्य परिकल्पना निरस्त की जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि माध्यमिक स्तर पर शहरी छात्रों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध है अर्थात् शहरी छात्रों की शैक्षिक दुश्चिंता अधिक होने पर शैक्षिक उपलब्धि में कमी तथा शैक्षिक दुश्चिंता में कमी उनके शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि होगी।

माध्यमिक स्तर की शहरी छात्राओं की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक –0.3627 है जो 48 स्वतंत्र्यांश के लिए 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु आवश्यक मान 0.273 से अधिक है। यह मान 0.05 स्तर पर सार्थक है अतः शून्य परिकल्पना निरस्त की जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि माध्यमिक स्तर पर छात्राओं की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध है अर्थात् छात्राओं की शैक्षिक दुश्चिंता में कमी का उनके शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि तथा शैक्षिक दुश्चिंता में कमी शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि को दर्शाता है।

निष्कर्ष–

1. लिंग के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध से प्राप्त निष्कर्ष–

- माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध है।
- माध्यमिक स्तर पर छात्रों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध है।
- माध्यमिक स्तर पर छात्राओं की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं असार्थक सहसम्बन्ध है।

2. क्षेत्र के आधार पर विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध से प्राप्त निष्कर्ष–

- माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध है।
- माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण छात्रों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध है।

- माध्यमिक स्तर पर छात्राओं की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं असार्थक सहसम्बन्ध है।
- माध्यमिक स्तर पर शहरी विद्यार्थियों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं असार्थक सहसम्बन्ध है।
- माध्यमिक स्तर पर शहरी छात्रों की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध है।
- माध्यमिक स्तर पर छात्राओं की शैक्षिक दुश्चिंता एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य ऋणात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध है।

सुझाव–

हमारा जीवन चुनौतियों एवं संघर्षों से परिपूर्ण है। बालकपन से ही जीवन की विविध समस्याओं का सामना करना पड़ता है जो जिस सीमा तक जितने अच्छे ढंग से जीवन संग्राम की लड़ाई को लड़ता जाता है। वह उतने ही अच्छे रूप में सफलता से प्रगति करता रहता है। मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त जीवन में हम बहुत कुछ चाहते है और यही चाह हमें पल–पल संघर्ष करने को प्रेरित करती है, बहुत बार ऐसा भी होता है कि हम जो चाहते है जिसके लिए हम दिन–रात परिश्रम करते हें, उस उद्देश्य की प्राप्ति हमें नहीं हो पाती है। इससे मानसिक संघर्ष उत्पन्न होता है जो कि कुण्ठा को उत्पन्न करता है और यही कुण्ठा को समायोजन द्वारा कम किया जा सकता है। वर्तमान में जहाँ विद्यालयों की स्थिति दयनीय होती जा रही है वहीं गैर सरकारी विद्यालयों में संसाधनों की कमी, अच्छे शिक्षकों की कमी तथा उच्च वातावरण की कमी को नजर अदांज नहीं किया जा सकता है। मोटी फीस देने के बावजूद विद्यार्थियों को रोजाना मानसिक रूप से कुण्ठित होना पड़ता है। पढ़ाई को लेकर विद्यार्थियों में होने वाले कुण्ठा धीरे–धीरे उनमें तनाव, दुश्चिंता, अवसाद आदि को बढ़ाता जा रहा है जिससे वे मानसिक रूप से अस्वस्थ होते जा रहे हैं।

अध्ययन के परिणाम शिक्षा के गुणात्मक विकास एवं मानव संसाधन की प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। वर्तमान शोध अध्ययन के परिणाम उन शिक्षाशास्त्रियों, समाज सुधारकों, शिक्षाविदों, परामर्शदाताओं , मनोवैज्ञानिक, चिकित्सकों, एवं शिक्षा निदेशकों का मार्ग दर्शन करते है जो छात्र एवं छात्राओं की समस्याओं को अनदेखा करते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- जहेरी एवं अन्य (2012). जेण्डर डिफरेन्सेस इन टेस्ट दुश्चिंता एमंग स्टूडेन्ट्स ऑफ गाइडेन्स स्कूल्स इन सनन्दाज, ईरान, *वुडपिकर जर्नल ऑफ मेडिकल सांइसेस*, 1(11), पृ0 1–5
- महतो एवं जंगीर (2012). ए स्टडी ऑफ ऐकेडमिक एंग्जायटी एमंग ऐडोलसेन्ट्स ऑफ मिनीकाऊ, इसलैण्ड, *इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ साइंस एण्ड रिसर्च, इण्डिया ऑनलाईन*, 1(3), पृ0 12–14
- अटरी एवं नीलम (2013). ऐकेडमिक एंग्जायटी एण्ड एचिवमेन्ट ऑफ सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स – ए स्टडी ऑफ जेण्डर डिफरेन्सेस, *इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ बिहैविरल सोशल एण्ड मूवमेन्ट सांइसेन्स*, 2(1), पृ0 27–33

- हकन (2013), कोरिलेट एमंग हाईस्कूल सीनियर स्टूडेन्ट्स टेस्ट एंग्जायटी, ऐकेडमिक परफार्मेन्स एण्ड प्वाइंट ऑफ यूनिवर्सिटी इन्ट्रेन्स एक्जाम, *ऐकेडमिक जर्नल्स एजूकेशनल*, 8(13), पृ0 919–626

- बिहारी, साकेत (2014). ऐकेडमिक एंग्जायटी एमंग सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स विथ रिफरेन्स टू जेण्डर, हैबिटेट एवं टाइप ऑफ स्कूल, *इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजूकेशन एण्ड साइकोलॉजिकल रिसर्च*, 3(4), पृ0 30–32

- सिद्दिकी एवं रहमाान (2014). एन इन्टरऐक्शनल स्टडी ऑफ ऐकेडमिक एंग्जायटी इन रिलेशन टू सोशियो–इकोनॉमिक स्टेट्स, जेण्डर एण्ड स्कूल टाइप एमंग सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स, *इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजूकेशनल रिसर्च एण्ड टेक्नोलॉजी*, 5(2), पृ0 74–79

- फात्मा, फरीन (2015). ए स्टडी ऑफ एंग्जायटी ऑफ एडोल्सेन्ट्स इन रिलेशन टू देयर जेण्डर, लोकेलटी एण्ड ऐकेडमिक एचिवमेन्ट, *इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च*, 9(2), पृ0 407–411

- महाजन, गौरव (2015). ऐकेडमिक एंग्जायटी ऑफ सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स इन रिलेशन टू देयर पैरेन्टल इन्करेजमेन्ट, *इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन ह्युमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेस*, 3(4), 23–29

- कुमार, सुरेश, के (2016). ऐकेडमिक एचिवमेन्ट इन रिलेशन टू देयर एंग्जायटी एण्ड डिप्रेशन, एमंग हाईस्कूल, *इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च*, 2(3), पृ0 25–27

- सिवाशंकर एवं रविन्द्रनन्दन (2016). जेण्डर डिफरेन्सेस ऑन एंग्जायटी, ऐडजेस्टमेन्ट, इमोशनल इंटेलिजेन्स, स्टडी हैबीट एण्ड एटीट्यूड एमंग एडोल्वसेन्स, *इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ इण्डियन साइकोलॉजी*, 4(1), पृ0 90–101

- बंगा एवं शर्मा (2016). ए स्टडी ऑफ ऐकेडमिक एंग्जायटी ऑफ सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स कांगड़ा डिस्ट्रिक्ट इन रिरलेशन टू जेण्डर, लोकेट एण्ड सोशल केटेगरी, *इन्टरनेशनल मल्टीडिस्पिलनरी ई–जर्नल एन इन्टरनेशनल पियर रिव्यूड, रिफर्ड जर्नल*, 5(4), पृ0 46–55

- युसुफ (2012), एंग्जायटी एण्ड ऐकेडमिक परफार्मेन्स एमंग सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स इन तनजानिया, *इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ इनोवेटिव साइकोलॉजी एण्ड सोशल डेवलपमेन्ट*, 4(2), पृ0 1–8

- बंगा, चमन लाल (2016). ऐकेडमिक एंग्जायटी ऑफ ऐडोलेसेन्स ब्वाय एण्ड गर्ल्स इन हिमाचल प्रदेश, *द ऑनर्लाइन जर्नल ऑफ न्यू होरिजन्स इन एजूकेशन*, 6(1), पृ0 7–12

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

हिंदी साहित्य में डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी की सामाजिक चेतना

जयप्रकाश
शोधार्थी
हिंदी विभाग -ओ. प्र. जो.सिं. विश्वविद्यालय चूरु, राजस्थान
पर्यवेक्षक- डॉ. नवनीता भाटिया (एसोसिएट प्रोफेसर)
हिंदी विभाग- ओ.प्र.जो.सिं. विश्वविद्यालय चूरु, राजस्थान

सामाजिक चेतना किसी भी साहित्यकार के लिए एक प्रेरणादाई शक्ति के रूप में उसे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। समाज में मानवीय संबंधों एवं विविध सरोकारों को समझ कर समाज के लिए उचित व्यवस्था प्रदान करना सामाजिक चेतना के अंतर्गत आता है। क्योंकि व्यक्ति इस समाज की एक अनिवार्य इकाई है अतः समाज की नब्ज टटोलकर समाज की पीड़ा को दूर करना एक जागरूक साहित्यकार का अनिवार्य उत्तरदायित्व होता है। "व्यक्ति अपनी अंतर्गुहा में बंदी सामाजिक शक्तियों से प्रभावित कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है और न अकेले उसकी कोई सार्थकता ही है। वह सामाजिक जीवन के प्रवाह में बहता हुआ, उसकी समूची चेतना को झेलता हुआ गतिशील सत्ता है, अपनी जगह स्थित नदी का दीप नहीं।"[१]

व्यक्ति संपूर्ण समाज की भावधारा में बहता हुआ अपनी सार्थकता एवं गतिशीलता को सिद्ध करता है। वहीं एक साहित्यकार समाज की संपूर्ण चेतना को अपने में धारण किए हुए प्रवाहित होता है। समाज की संस्कृति, समाज की मान्यताएं, समाज के दुख- दर्द उसके अपने होते हैं और वह साहित्य को एक दर्पण के समान समाज के लिए उपयोगी बनाता है। उसका साहित्य समाज के लिए दिशा दिखाने वाली एक जलती हुई मशाल है जो हर वर्ग को अग्रसर होने के लिए सदैव प्रेरित करती है।

सामाजिक चेतना के संदर्भ में डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी का साहित्य भी समाज एवं सामाजिक संस्कृति से पृथक नहीं है। उनका संपूर्ण साहित्य सामाजिक चेतना की जीती जागती तस्वीर है। उनका गद्य साहित्य मानवीय संबंधों के श्रेष्ठतम सृजन को अभिव्यक्त करने में सफल रहा है वहीं उनकी कविता भी समाज के विभिन्न रंगों को पूर्ण प्रतिबद्धता के साथ वाणी देने में समर्थ हुई है।

जिन महान् व्यक्तित्वों का वर्णन डॉ. बेदी ने अपने साहित्य में किया है, उनके द्वारा प्रदर्शित पथ को आदर्शरूप में प्रस्तुत किया है। जो मनुष्य जाति के लिए स्वाभिमान एवं गौरवपूर्ण जीवन जीने के लिए अनिवार्य है। गुरु गोविंद सिंह, गुरु नानक देव, गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर जैसे महान् साहित्यकारों एवं विचारकों के माध्यम से डॉ. बेदी ने अपनी सामाजिक चेतना के मंतव्य को अभिव्यक्त किया है। समाज की एकता, देश की स्वतंत्रता एवं जागरूकता के लिए खालसा पंथ जैसे संगठनों का बेदी ने महिमामंडन

किया है क्योंकि भारतीय जनता के आत्मविश्वास एवं सम्मान को वापस दिलाने के लिए ऐसे संगठन कारगर साबित हुए। तत्कालीन समय में समाज में विघटनकारी एवं दमनकारी नीतियों का विरोध करने के लिए लेखक ने ऐसे महान् वीर व्यक्तित्वों को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है ताकि समाज का पुनरुद्धार हो सके। डॉ. बेदी अपने संपूर्ण साहित्य में समाज की छोटी से छोटी समस्या को समझ कर उनके निराकरण के लिए प्रतिबद्ध साहित्यकार जान पड़ते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में भी सामाजिक चेतना के बिंदु को प्रमुखता से उठाया है इसलिए उन्हें एक ऐसे युग दृष्टा पुरुष की तलाश रही है जो समाज को नए आयाम की ओर ले जा सके। कवि लिखते हैं-

"हो सकता है
आपने ना देखा हो,
ना पहचाना हो
या
अजनबी जान अनदेखा कर दिया हो
लेकिन मुझे उसकी तलाश है।"

कवि जिस भाव भूमि से जुड़े हुए हैं वहाँ की सामाजिक जटिलताएं इतनी दुष्कर हैं कि कवि को क्रांतिकारी रूप अपनाना पड़ता है। वे हर संभव समाज की विषमता, अत्याचार, संहार, भयावह स्थिति और हत्या जैसी समस्याओं के लिए ठंडे लोहे की बजाय गर्म लोहे की बात करते हैं। इसी से समाज में शांति एवं समता स्थापित करना चाहते हैं। कवि लिखते हैं -

'ठंडे लोहे से
कुछ नहीं होगा
हमें चाहिए
गर्म लोहा
गर्म लोहा।'

समाज की अव्यवस्था एवं अराजकता का उन्मूलन करने के लिए कवि ने अपनेआपको समर्पित कर दिया है। वे समाज को एक ऐसा रूप देने के लिए प्रस्तुत हैं, जहाँ हर व्यक्ति निर्भय एवं शांति के साथ रह सके। इसके लिए कवि एक नए सूरज की तलाश में हैं, जो सबका पथ प्रदर्शन कर सके-

'मेरे पास नहीं है।
कोई दूसरा सूरज।
× × ×
घरों में दीवारों में-
कार्यालयों में -
संसद भवन में-

जब नहीं उगेगा -
कोई दूसरा सूरज।'

कवि बेदी ने अपने समाज की मध्यमवर्गीय परिवारों की दयनीय स्थिति एवं पीड़ा को पूरी संवेदना के साथ उकेरा है। श्रमिक की पीड़ा, एक मजदूर की बेबसी उन्हें विचलित कर देती है। ऐसे करुणापूर्ण दृश्यों को कवि ने अपनी कविता 'धूप- सागर और मैं' के अंतर्गत अभिव्यस्त किया है-

"जेठ की दोपहरी की
अंधी धूप में
सड़क पर रोड़ी कूटने वालों का दुःख
जब मैं सीलिंग फैन के नीचे
महसूस करता हूं -
एक अनचिन्हा सा दर्द मुझे सोने नहीं देता"[2]

कवि ने न केवल समाज की पीड़ा एवं यातनाओं को वाणी दी इसके अलावा समाज में जीवन की चुनौतियों को भी समाज के सामने रखा है। शहरी भीड़भाड़ में अस्तित्व के लिए छटपटाता इंसान, मानवीय मूल्यों में ह्रास, प्रदूषण, स्वार्थपरता, धोखाधड़ी जैसे बिंदुओं को सम्मुख रख कवि ने मानवीय समाज के सामने प्रश्न चिह्न खड़ा कर दिया है और उन्हें इनके प्रति जागरूक करना चाहता है-

"फैसला करें आप
शहर को जीना है
या मरना है।
सड़कें बसें और बस स्टॉप
बहुत देर हुई
भीड़ के अंदर
दफन हो चुके हैं
कार्यालय धुंआ और धूल
गुबार बन इसकी हत्या कर रहे हैं"[3]

रचनाकार अपने युग का भोक्ता होता है अतः जिन परिस्थितियों एवं समस्याओं से उसका सामना होता है, वह उन्हें अपने साहित्य में उतारता है। वह जानता है कि सामान्य जनता के दुःख दर्द क्या हैं? किन अभावों में जनता का जीवन निरर्थक हो रहा है?, समाज की दशा एवं दिशा के लिए जिम्मेदार कारकों को वह रेखांकित करता है। अपने साहित्य द्वारा वह इन परिस्थितियों से समाज को निकालना चाहता है ताकि समाज को निराशा के घोर अंधेरे से निकाला जा सके। डॉ. बेदी का साहित्य भी इन परिस्थितियों से अछूता नहीं रहा विभिन्न कालों की प्रतिध्वनि इनके साहित्य का प्रमुख बिंदु है। कवि ने जन सामान्य के बीच से गायब होने वाले हास- परिहास, सुख- शांति, मानवीयता को बारीकी से देखा

है। आदमी आतंक के साए में जीने के लिए मजबूर है, समाज की विषम एवं विकराल परिस्थितियां उसे अभिशप्त कर रही हैं। तब कवि लिखता है -

"फिलहाल
आदमी निहत्था है
× × ×
गेहूं की खुशबू भी
खेतिहर मजदूर से
बच्चों का हाल नहीं पूछती।"[4]

डॉ. बेदी ने जहां पंजाबी संस्कृति के समृद्ध एवं गौरवशाली रूप को उजागर किया है, समाज में बदलाव की स्थिति एवं प्रगतिशील साहित्यिक उपादानों की ओर ध्यान केंद्रित किया है, वहीं समाज के मध्यवर्ग के कारुणिक रूप को बेदी ने अत्यंत संवेदनशीलता के साथ उद्धृत किया है। मजदूरिनी की पीड़ा, बेरोजगारी की यातना, नए शहरों में समायोजन की पीड़ा, परिस्थितियों की दासता, पलायन की मजबूरी को डॉ. बेदी ने यथासंभव वाणी दी है। जब वह लिखते हैं -

"और मैं ऊंची आवाज में चिल्लाता हूं-
यह शहर छोड़ चलो -
कहीं भी चलो
शहर की लारनस रोड
मुझे घेर लेती है चारों ओर
आतंक पीड़ा और संत्रास -
घोंघे सीपियां सांप
सब कहीं बिखरे हैं
हर मोड़ पर, हर चौराहे पर।"[5]

डॉ. बेदी का सामाजिक आयाम पंजाबी समाज से आगे बढ़कर मानव मात्र के कल्याण तक विस्तृत है क्योंकि उनका संपूर्ण साहित्य मानवीय हित एवं कल्याण के लिए समर्पित है। उन्होंने अपने गद्य साहित्य में समाज के एक श्रेष्ठ आदर्श को स्थापित करने के लिए भारतीय संस्कृति की पहचान को बनाए रखने के लिए मानवीय मूल्यों एवं नैतिक आदर्शों की वकालत की है। उन्होंने अपनी मातृभूमि एवं समाज के हित को ध्यान में रखकर कहा है कि "पंजाब की युवा पीढ़ी नशे से निजात पाए और अपनी धरती के दु:ख- दर्द से जुड़े, विदेशों की खाक छानने से अच्छा है कि पंजाब के खेतों को फिर से हरा-भरा बनाया जाए क्योंकि अपनी धरती की आधी रोटी विदेश की पूरी रोटी से कहीं बेहतर होती है।"[6]

सार रूप में कहा जा सकता है कि बेदी समाज के प्रति एक जागरूक प्रगतिशील एवं सचेत रचनाकार हैं जिन्होंने अपने संपूर्ण साहित्य में समाज की चेतना को प्रगतिशील बनाने में प्रमुख भूमिका

निभाई है। सामाजिक चेतना के सुख-दुखात्मक रूपों को डॉ. बेदी ने बिना लाग लपेट के अभिव्यक्त किया है जिससे भारतीय समाज की वस्तुस्थिति को समझा जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ -

1. डॉ. रामदरश मिश्र, हिंदी उपन्यास एक अंतर यात्रा, पृष्ठ संख्या 112
2. हरमहेंद्र सिंह बेदी : 'पहचान की यात्रा', पृष्ठ संख्या 37
3. हरमहेंद्र सिंह बेदी : 'किसी और दिन', पृष्ठ संख्या 38
4. हरमहेंद्र सिंह बेदी : 'गर्म लोहा', पृष्ठ संख्या 11-12
5. हरमहेंद्र सिंह बेदी : 'पहचान की यात्रा', पृष्ठ संख्या 74
6. हरमहेंद्र सिंह बेदी रचनावली खंड -5, पृष्ठ संख्या 38

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

महात्मा बुद्ध एवं डा0 भीमराव अम्बेडकर के शैक्षिक विचार का तुलनात्मक अध्ययन

शोध निर्देशक
डॉ0 देवेन्द्र यादव
असिस्टेण्ट प्रोफेसर
शिक्षक शिक्षा विभाग,
नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय)
प्रयागराज, उ0प्र0)

शोध छात्रा
वीनू श्रीवास्तव
शिक्षाशास्त्र
नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय)
प्रयागराज, उ0प्र0)

सारांश

महात्मा बुद्ध एवं बाबा अम्बेडकर ने जीविकोपार्जन के लिए व्यवसायिक एवं आर्थिक विकास को स्थान दिया गया था, परन्तु बौद्ध काल में अवश्यकता से अधिक धन संचय की प्रवृत्ति नहीं थी परन्तु आज शिक्षा का मुख्य उद्देश्य धनोपार्जन ही माना जा रहा है। आज संचय की प्रवृत्ति है। इसके परिणाम स्वरूप प्रदेश सरकारों के कार्यक्रमों द्वारा धन संग्रह करने वालों पर ध्यान न देना दो तरफ संकेत कर रहा है–या तो सरकार धन संग्रह करने वालों को जानती नहीं या जान कर उपेक्षा करती है। इसके पीछे क्या कारण है यह प्रश्न अनुत्तरित है, इसके उत्तर की अपेक्षा है। लूट, हत्या, अनाचार, पापाचार, चोरी, खूनखराबा आदि नाना पकार के अनैतिक कार्य धन अर्जित करने के लिए किये जाते है। धन संचय की दुस्प्रवृत्ति ने इस संसार में कोहराम मचा दिया है। 2जी स्पेक्ट्रम घोटाला, चारा घोटाला, कोयला घोटाला आदि तरह–तरह के घोटाले किये जा रहे है। अतः ऐसी स्थिति में बौद्ध शिक्षा का अनुकरण करके धन संचय की दुष्प्रवृत्ति को त्यागना चाहिए जिससे समाज में शान्ति एवं सद्भावना का उदय हो।

मुख्य शब्द– महात्मा बुद्ध, डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण, शिक्षक, शिक्षार्थी, विद्यालय, अनुशासन, तुलना

प्रस्तावना–

शिक्षा किसी भी समुदाय के विकास का महत्वपूर्ण साधन मानी गयी है। विश्व के सभी देशों में मानव संसाधन के विकास में शिक्षा की भूमिका को अपरिहार्य माना गया है। भारतीय समाज में जन सामान्य के लिए और विशेष रूप से अनुसूचित जातियों के बहुमुखी विकास के लिए शैक्षिक सुविधाओं के विकास की आवश्यकता अनुभव की गयी। वर्तमान में बदली हुई परिस्थितियों और प्रगति के नये अवसरों के साथ समाज के कमजोर वर्गों के लोग अपना समुचित समायोजन कर सके तथा अपनी बुद्धि को विकसित कर सके और शैक्षिक क्षेत्र में विशेष उपलब्धियॉ अर्जित कर सके इस दृष्टि से उनके लिए शिक्षा का विशेष महत्व है। अनुसूचित जातियों के लिए शिक्षा एक ऐसा प्रेरणा स्रोत है। जिससे न केवल उनका आर्थिक विकास होता है। बल्कि शिक्षा के प्रति अग्रसर हुए बल्कि नई चुनौतियों का सामना करने की क्षमता विकसित होती है। शिक्षा संतुलन का एक बहुत बड़ा आधार है इसलिए अनुसूचित जातियों के उत्थान के

लिए शैक्षिक कार्यक्रमों को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। संविधान के अनुच्छेद 46 में राज्यों को यह जिम्मेदारी सौंपी गयी है कि वह समाज के कमजोर वर्गों के लोगों की और विशेष कर अनुसूचित जाति के लोगों के शैक्षिक और आर्थिक हितों की रक्षा की ओर विशेष ध्यान दें। यदि देश की सामान्य जनता से तुलना की जाये तो अनुसूचित जातियों का सामाजिक और आर्थिक स्तर काफी नीचा है।

आज विश्व के अधिकतर देशों में लोकत्रांत्मक शासन प्रणाली हैं जिसमें नागरिकों की स्वतंत्रता एवं उसके अधिकारों की प्रमुखता दी गयी हैं। भारत विश्व का विशालतम प्रजातन्त्र हैं वर्तमान शिक्षा पद्धति व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं उसके अधिकारों की रक्षा करने में असफल रही हैं। बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, अराजकता, आतंकवाद, भाषा व क्षेत्रवाद की विचारधारा में मानव से घुल मिल जाता हैं। इन समस्याओं का हल निकालने में डॉ0 भीमराव अम्बेडकर एवं महात्मा बुद्ध के शैक्षिक विचारों को अपनाकर इन समस्याओं से निपटा जा सकता है। आज भारतीय शिक्षा की दशा अत्यन्त दयनीय हैं इसका व्यक्ति एवं समाज के साथ सन्तुलित सामंजस्य नही हैं। जब देश 21वीं शताब्दी में प्रवेश कर चुका है तब शिक्षा का सामर्थ्यवान होना आवश्यक है। इस शिक्षा प्रणाली को देखते हुए शोधकर्ता ने अपने लघुशोध का विषय महात्मा बुद्ध और डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के शैक्षिक विचारों के तुलनात्मक अध्ययन चुना है।

शिक्षा का अर्थः

महात्मा बुद्ध के अनुसार, शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो मनुष्य को लौकिक एवं पारमार्थिक दोनों जीवन के योग्य बनाती है। पारमार्थिक जीवन से उनका तात्पर्य निर्वाण से होता है। उनकी दृष्टि में वास्तविक शिक्षा वह है जो मनुष्य को निर्वाण की प्राप्ति कराये।''

डा0 अम्बेडकर समाज से अज्ञानता के अंधकार को तिरोहित करने के लिए सबसे कारगर उपाय शिक्षा को मानते हैं। उनका मानना है कि शिक्षा वह प्रकाशपुंज है, जो समाज से अज्ञानता रूपी घनघोर तिमिर को थोड़े ही समय में समाप्त करने की क्षमता रखता है।

शिक्षा का उद्देश्य :

महात्मा बुद्ध के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य, व्यक्ति का विकास शिक्षा पर आधारित होता है। अतः शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को विद्या या ज्ञान के साथ–साथ नैतिक, मानसिक, शारीरिक सभी क्षेत्रों में विकास करके सदाचारी और स्वावलम्बी बनाना है। शिक्षा का मूल उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति द्वारा बुद्धि विकास अथवा विवेक जागृत करना है, जिससे मनुष्य प्रत्येक विषय पर स्वयं निर्णय ले सके और दृढ़ता से उसका पालन कर सके।

डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार, शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, समाज की चतुर्मुखी उन्नति व सभ्यता के सर्वांगीण विकास की आधारशिला है। शिक्षा शारीरिक, मानसिक, भौतिक, आध्यात्मिक शक्तियों तथा क्षमताओं को निरन्तर, सामंजस्यपूर्ण विकास करके व्यक्ति को आत्म–साक्षात्कार के योग्य बनाती है। यह मनुष्य की पाश्विक प्रवृत्तियों का शोधन करके उसे सफल सामाजिक व्यकित बनाती है।

पाठ्यक्रम :

महात्मा बुद्ध के अनुसार पाठ्यक्रम को दो भागों में विभाजित किया गया था। 1. धार्मिक पाठ्यक्रम एवं 2. लौकिक पाठ्यक्रम।

धार्मिक पाठ्यक्रम भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों के लिए निम्न विषयों का समावेश था–

1. **'चार आर्य सत्यों का पूर्ण ज्ञान**
2. **बौद्ध धर्म साहित्य लिपिटक :** सुत्त, विनय, धम्म आदि।
3. मठों तथा विहारों के निर्माण का व्यवहारिक ज्ञान।
4. विहारों के दिये गये ज्ञान हेतु दान की संपत्ति का आय–व्यय रखना व प्रबन्धन।
5. तुलनात्मक ज्ञान के लिए वैदिक साहित्य का अध्ययन

पाँच विधाएँ : बौद्ध मठों तथा विहारों में पाँच प्रकार की विधाओं का अध्ययन किया जाता था– शब्द विद्या, शिल्प विद्या, चिकित्सा विद्या, हेतु विद्या एवं आध्यात्मिक विद्या।

(2) लौकिक पाठ्यक्रम : लौकिक पाठ्यक्रम में निम्न विषय सम्मिलित थे– लेखन, गणित और शास्त्रार्थ, शिल्पकलाएँ यथा–कताई, बुनाई, छपाई, रंगाई, वास्तुकला, मूर्तिकलाएँ, चित्रकला एवं संगीत, कृषि, पशु पालन, चिकित्सा, व्यायाम, खेलकूद आदि।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर रोजगारपरक शिक्षा के समर्थक थे इसलिए उन्होंने शिक्षा का उद्देश्य ही आत्मसम्मान मानव गरिमा के साथ–साथ स्वतंत्रता, समता, भ्रातृतव का विकास चाहते थे इसी तरह वे पाठ्यक्रम में ही रोजगारपरक पाठों का समावेश चाहते थे। उच्च स्तर की शिक्षा के पाठ्यक्रम में वे सामाजिक, राजनैतिक, अर्थशास्त्र, अंग्रेजी एवं व्यावसायिक शिक्षा के पक्षधर थे।

उच्च स्तर की शिक्षा के पाठ्यक्रम में वे सामाजिक, राजनैतिक, अर्थशास्त्र, अंग्रेजी एवं व्यावसायिक शिक्षा के पक्षधर थे।

शिक्षण विधि :

महात्मा बुद्ध द्वारा व्याख्यान विधि द्वारा गुरू शिष्य को भाषण द्वारा शिक्षा प्रदान करते थे। वाद–विवाद विधि को भी बुद्ध ने बहुत महत्व दिया है। शिक्षा प्रणाली से सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् व्यवहारिक ज्ञान प्राप्ति हेतु पर्यटन विधि के महल को स्वीकार किया गया है। सूत्र विधि को भी शिक्षण विधि का एक अंग माना गया है। महात्मा बुद्ध के अनुसार शिक्षा प्रणाली में स्वाध्याय विधि का मुख्य स्थान है।

डॉ0 अम्बेडकर ने शिक्षाप्रद लेखन विधि को सर्वोपरि मानते थे। उनकी उपाधियों में स्वयं कहा गया है कि ''अध्ययन से ही ज्ञान प्राप्त और व्यक्तित्व निर्माण किया जा सकता है।'' तथा व्याख्यान द्वारा भी शिक्षा प्रदान करने पर बल दिया है।

अतः महात्मा बुद्ध एवं डॉ0 अम्बेडकर के शिक्षण विधियों में व्याख्यान विधि की समानता है।

शिक्षक :

बौद्ध शिक्षा में वही व्यक्ति शिक्षक हो सकता था जिसने चार आर्य सत्यों को जान लिया हो और जो अष्टांग मार्ग का अनुसरण करता हो और जो शुद्ध आचरण, पवित्र विचार, विनम्रता तथा मानसिक क्षमता से परिपूर्ण हों।

महात्मा बुद्ध के अनुसार शिक्षक नैतिक क्रियाओं में प्रवीण हो, आत्म चिन्तक व ज्ञानी हो, उसमें दूसरे के पूर्णता तक सहायता करने की क्षमता होनी चाहिए, उसे सरल, पाप से डरने वाला, कुशाग्र बुद्धि, तीव्र स्मृतिवाला, शिक्षित व मेधावी होना चाहिए।

डॉ0 अम्बेडकर द्वारा शिक्षक समाज से अज्ञानता के अंधकार को दूर करने वाला हो एवं समाज से अज्ञानता रूपी घनघोर मितिर को दूर करने वाला हो।

शिक्षार्थी :

महात्मा बुद्ध के अनुसार शिक्षार्थी निम्न गुण होने चाहिए– जीव हिंसा न करना वाला, किसी की वस्तु न लेना, अशुद्ध आचरण से दूर रहना, असत्य भाषण न करना, मादक पदार्थो का सेवन न करना, कुसमय भोजन न करना, किसी की निन्दा न करना, नृत्य गायन से दूर रहना, सुगंधित व श्रृंगारिक वस्तुओं का उपयोग न करना एवं सोना–चाँदी बहुमूल्य वस्तुओं का दान न लेना हो।

डॉ0 अम्बेडकर द्वारा शिक्षार्थी में कर्म प्रधान होना चाहिए एवं शिक्षा के प्रति समर्पित हो तथा अपने सामाजिक–आर्थिक स्तर को ऊपर उठाने को ध्यान में रखे। शिक्षार्थी में समानता की भाव विद्यमान होनी चाहिए।

अनुशासन :

महात्मा बुद्ध एवं डॉ0 अम्बेडकर दोनों ने अनुशासन पर महत्त्व दिया है। नैतिक अनुशासन का दर्शन है। नैतिक अनुशासन वास्तव में बहुत ही प्रभावकारी अनुशासन हैं।

विद्यालय–

महात्मा बुद्ध के अनुसार विद्यालय (मठों एवं विहारो) में छात्रावास सम्बद्ध थे, छात्रों को निःशुल्क शिक्षा, भोजन, वस्त्र, चिकित्सा आदि की सुविधा होनी चाहिए। डा0 **आर0के0 मुकर्जी** ने लिखा है कि– प्राचीन काल में कुछ मठों एवं विहारों ने विश्वविद्यालयों के रूप में विकसित होकर पर्याप्त ख्याति अर्जित की। बौद्ध शिक्षा से संबन्धित कुछ विश्वविद्यालय इस प्रकार हैः– **तक्षशिला विश्वविद्यालय, नालन्दा विश्वविद्यालय, विक्रम शिला विश्वविद्यालय, वलभी विश्वविद्यालय, नदिया विश्वविद्यालय।**

डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार ऐसे विद्यालय का निर्माण करना चाहिए जिसमें सभी निर्धन तथा दलित समुदायों को भेदभाव के बिना शिक्षा की अनिवार्यता सुनिश्चित की जाये ताकि वे राष्ट्रीय जीवन में प्रगति कर सकें।

डॉ0 अम्बेडकर द्वारा ''पीपल्स ऑफ एजूकेशन सोसायटी'' की स्थापना की और ''सिद्धार्थ महाविद्यालय' की स्थापना की गयी है।

महात्मा बुद्ध एवं डा0 भीमराव अम्बेडकर के शैक्षिक विचारों की तुलना से प्राप्त निष्कर्ष

- महात्मा बुद्ध एवं डॉ0 भीमराव अम्बेडकर दोनों शिक्षाविदों ने शिक्षा को मनुष्य के अज्ञानता के अधंकार से बाहर निकालने का प्रकाशपुंज है।
- महात्मा बुद्ध एवं डॉ0 भीमराव अम्बेडकर दोनों शिक्षाविदों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य को व्यक्ति के विद्या या ज्ञान के साथ–साथ नैतिक, मानसिक, शारीरिक सभी क्षेत्रों में विकास करके सदाचारी और स्वावलम्बी बनाने परा जोर दिया है।
- प्रस्तुत अध्ययन से निष्कर्ष प्राप्त होता है कि महात्मा बुद्ध एवं डॉ0 भीमराव अम्बेडकर दोनों शिक्षाविदों ने पाठ्यक्रम में धार्मिक पाठ्यक्रम के साथ–साथ रोजगारपरक शिक्षा एवं व्यवसायिक शिक्षा पर जोर दिया है।
- महात्मा बुद्ध एवं डॉ0 अम्बेडकर के शिक्षण विधियों में लेखन विधि एवं व्याख्यान विधि में समानता पायी गयी।

- प्रस्तुत अध्ययन से निष्कर्ष प्राप्त होता है कि महात्मा बुद्ध एवं डॉ0 भीमराव अम्बेडकर दोनों शिक्षाविदों ने शिक्षक को समाज के लोगों को अज्ञानता को दूर करने वाला माना है।
- प्रस्तुत अध्ययन से निष्कर्ष प्राप्त होता है कि महात्मा बुद्ध एवं डॉ0 भीमराव अम्बेडकर दोनों शिक्षाविदों ने शिक्षार्थी में कर्म प्रधान, शिक्षा के प्रति समर्पित हो तथा अपने सामाजिक–आर्थिक स्तर को ऊपर उठाने को ध्यान में रखे। शिक्षार्थी में समानता की भाव विद्यमान होनी चाहिए।
- प्रस्तुत अध्ययन से निष्कर्ष प्राप्त होता है कि महात्मा बुद्ध एवं डॉ0 भीमराव अम्बेडकर दोनों शिक्षाविदों ने नैतिक अनुशासन पर महत्त्व दिया है।
- प्रस्तुत अध्ययन से निष्कर्ष प्राप्त होता है कि महात्मा बुद्ध एवं डॉ0 भीमराव अम्बेडकर दोनों शिक्षाविदों ने छात्रावास, निःशुल्क शिक्षा, भोजन, वस्त्र, चिकित्सा आदि की सुविधा से युक्त विद्यालय होना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- कुमार, संजय (2014) डॉ0 भीमराव अम्बेडकर एवं महात्मा बुद्ध के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन, लघुशोध प्रबन्ध, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
- कुमारी, अशोक (2015). गौतम बुद्ध एवं डॉ0 अम्बेडकर के शैक्षिक विचारों की वर्तमान प्रासंगिकता, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च, 1(11), 821–831
- तिवारी, देवेन्द्र प्रताप (2017). अम्बेडकर का राष्ट्रवादी दृष्टिकोण : एक विश्लेषण, शोध श्री–इण्टरनेशनल रिफरिड जर्नल ऑफ मल्टीडिस्पलनरी रिसर्च, वॉ0 24, इश्शू–3, पृ0 13–16
- महान्ति, चौधुरी शिवव्रत (2017). भारतीय परिप्रेक्ष्य में जनजाति, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च एण्ड डेवेलपमेण्ट, वॉ0 2, इश्शू–2, पृ0 804–810
- नीरज (2018). डॉ0 भीमराव अम्बेडकर और सामाजिक न्याय, आर.जे.पी.पी., वॉ0 16, नं0 2, पृ0 44–52, आर्टिकल नं0 7
- यादव, जोगिन्द्र कुमार (2013). भारतीय समाज और डॉ0 अम्बेडकर का जीवन दर्शन, शब्द–ब्रह्म भारतीय भाषाओं की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका, वॉ0 1, इश्शू–3, पृ0 2–7
- लहरे, राजकुमार (2017). बोधिसत्व बाबा साहेब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर : एक प्रकाश–स्तम्भ, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ हिन्दी रिसर्च, वॉ0 3, इश्शू–2, पृ0 51–53

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

हिंदी व्यंग्य उपन्यास और श्रीलाल शुक्ल

काजल कुमारी
शोध छात्रा
भूपेन्द्र नारायण मण्डल वि.वि.मधेपुरा

व्यंग्य विधा तथा श्री लाल शुक्ल :

पिछले अध्यायों में हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि साहित्य में व्यंग्य की परंपरा भारत में प्राचीन काल से ही विद्यमान है। प्रत्येक युग के व्यंग्य की अपनी–अपनी विशिष्टता होती है। उस युग और कालखंड की परिस्थिति व परिवेश के अनुसार ही साहित्य का निर्माण होता है। कहीं काव्यात्मक रूप में व्यंग्य के दर्शन हो जाते हैं तो कहीं गद्य के रूप में। यदि हम पूर्व के कालखंड पर दृष्टिपात करें तो हम इस तथ्य से अवगत होते हैं कि साहित्य के क्षेत्र में व्यंग्य के माध्यम से ही विसंगतियों और विद्रूपताओं को उजागर करने का प्रयास साहित्यकारों द्वारा किया गया है। ऐसे तमाम साहित्यकार हैं जिनका नाम इस श्रेणी में लिया जा सकता है। व्यंग्य साहित्यकारों की एक विशिष्ट परंपरा भारतवर्ष में सदैव विद्यमान रही है। यदि हम तत्कालीन साहित्य पर एक विहंगम दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि संत कवियों के साहित्य में भी किसी न किसी रूप में व्यंग्यात्मकता का दर्शन हो ही जाता है। आदिकवि वाल्मीकि हो, महर्षि वेदव्यास हो अथवा भक्तिकालीन वीरगाथा कालीन व आधुनिक कालीन साहित्यकार हो, सभी के द्वारा सृजित साहित्य में व्यंग्यात्मकता का पुट विद्यमान है। साहित्यकारों ने व्यंग्य को अपनी बात के द्वारा सामाजिक विभीषिकाओं को उजागर करने तथा उनके प्रति मानव मात्र के दृष्टिकोण में सुधार करने के परिप्रेक्ष्य में एक माध्यम के रूप में प्रयोग किया। साहित्य लेखन के क्षेत्र में उपन्यास विधा का प्रारंभ हम 140 तथा 150 वर्षों से अधिक का नहीं मान सकते। उस काल में उपन्यास अपने शैशवावस्था में था। उपन्यासों में व्यंग्यात्मकता के पुट का प्रारंभ उसके बाद का ही माना जा सकता है। यदि हम उपन्यासों के विकास यात्रा की बात करें तो प्रेमचंदोत्तर युग और प्रेमचंद युग इस उपन्यास लेखन के विकास की पृष्ठभूमि स्थापित करते नजर आते हैं। यह एक ऐसा कालखंड था जिसमें समाज में अनेकों विद्रूपताओ और विभीषिकाओं ने जन्म ले रखा था, और उपन्यास साहित्य उसी का साक्षी बनने लगा। प्रेमचंद के साहित्य में दुख और दर्द की विभीषिका है, जबकि परवर्ती साहित्यकारों ने भी प्रेमचंद की विधा से समतुल्यता स्थापित करते हुए समाज एवं मानवीयता की अन्तर्वेदनाओ को प्रस्फुटित करने का प्रयास किया। इस अर्थ में मुंशी प्रेमचंद समाज के वास्तविक शुभचिंतक व सजग प्रहरी बनकर खड़े होते हैं। पांचवें दशक का साहित्य तो और भी महत्वपूर्ण हो जाता है इस कालखंड में भारत को स्वतंत्रता तो प्राप्त हुई किंतु स्वतंत्रता का अर्थ आम जनमानस के लिए अर्थ विहीन होता नजर आने लगा। भारत वासियों के मन की अभिलाषाये समय के कुचक्र के साथ अपने आप धराशाई हो गई, क्योंकि स्वतंत्रता के पूर्व हमने जिन उद्देश्यों और आदर्शों के लिए संघर्ष किया उन संघर्षो को स्वतंत्रता के बाद के राजनेताओं ने अपने स्वार्थ और लोभ के पैरों से ऐसा कुचला कि वह धूल धूसरित होने लगी। इन्हीं टूटे और बिखरे सपनों के मध्य भारत आगे बढ़ चला । टूटे और बिखरे सपने ही भारत वासियों की उपलब्धि बन कर रहे गए। यह युग अपने ही लोगों द्वारा अपने लोगों को ठगने की प्रवृत्ति को

व्यक्त करने का युग बनकर रह गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश में दो वर्गों का उदय हो गया। जिसमें एक तथाकथित उच्च वर्ग जो संपूर्ण सुख और सुविधाओं से सम्पन्न था तो दूसरी ओर निर्बल, दुर्बल, असहाय और विपन्न वर्ग । यही विपन्न वर्ग शोषण का शिकार हो रहा था और उच्च वर्ग अपने सुख सुविधाओं में वृद्धि के उद्देश्य से इन निर्बल वर्गों को अपनी लिप्सा का शिकार बना रहा था। सम्मान की दृष्टि से देखें तो निर्बल वर्ग की अत्यंत दुर्दशा थी। सामाजिक सम्मान इनके लिए दुर्लभ था। यहां तक की इनके परिवार महिलाओं की अस्मिता तक सुरक्षित नहीं रह पा रही थी। यह वर्ग मजबूरियों का शिकार होता रहा, किंतु कालांतर में यह परिस्थिति बदली और इन वर्गों के मन में भी आत्म सम्मान, स्वाभिमान की भावना का उदय हुआ। परिणाम स्वरूप समाज में वर्ग संघर्ष की उत्पत्ति हो गई और दबे कुचले वर्ग के लोग अपने अधिकारों की अभिलाषा में उठ खड़े हुए शुरू हो गया अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष का एक नया कालखंड। इस युग के साहित्यकारों ने इसी परिस्थिति का चित्र खींचने में कोई भी संकोच नहीं किया और यही विचार युग की अभिव्यक्ति बन गया। साहित्यकारों की लेखनी ने समाज के इस यथार्थ को यथार्थ की तरह पूर्ण निष्ठा औरईमानदारी के साथ प्रकट किया। उनके साहित्य में उनकी बेबाक राय स्पष्टता के साथ देखी जा सकती है। उनकी धारदार लेखनी ने समाज की हर उस स्थिति का चित्रांकन किया, जो मानव मात्र के सरोकारों से पूर्ण गहराई से जुड़े हुए थे। इसलिए उनके साहित्य का एकमात्र कल्याण कारक स्वभाव प्रवृत्त हो चला। इस प्रकार हिंदी उपन्यास प्रेमचंद पूर्व युग, प्रेमचंद युग व प्रेमचंदोत्तर युग आदि पड़ावों से गुजरता हुआ आधुनिक काल तक आ पहुंचता है । यद्यपि साहित्य की दृष्टि से प्रेमचंद युगीन साहित्य बहुत प्रभावशाली नहीं थे। उनकी विशिष्टता इस अर्थ में समझी जा सकती है कि ये मनोरंजन कारी होने के साथ–साथ एक सुधारक की भूमिका में भी नजर आते हैं। शिल्प, भाषा शैली और विषय वस्तु की दृष्टि से इनका मूल्यांकन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इनमें महज शैशवावस्था ही विद्यमान है। परवर्ती युग के साहित्य में भाषागत व शिल्पगत विशिष्टता के आधार पर एक नया वैशिष्ट्य उपस्थित होता है।

साहित्यकार सदैव समाज से ही प्रभावित होता है, उसी समाज में अपना जीवन जीता है, और उसी से अपनी कथावस्तु का चयन भी करता है। इसलिए किसी भी साहित्यकार के साहित्य में युगधर्म परिलक्षित होना स्वाभाविक प्रक्रिया बन जाती है। वह समाज के प्रत्येक सांस्कृतिक घटनाओं व दुर्घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी व उसका साक्षी होता है। वह न सिर्फ इन घटनाओं को देखता है बल्कि उन घटनाओं के माध्यम से उनमें सक्रिय सहभागी भी बनता है। अपने लिखे साहित्य का आधार प्रस्तुत करते हुए मुंशी प्रेमचंद ने स्वयं ही लिखा है–''साहित्यकार बहुधा अपने देश काल की परिस्थितिओ से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश बंधुओं के लिए विकल होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक होता है।'' [1]

व्यंग्यकार व उपन्यासकारों की कीर्तिमान श्रेणीमें श्रीलाल शुक्ल का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं होता । श्रीलाल शुक्ल वास्तविक रुप से एक युग के साथ पूरी तरह से आत्मीय भाव रखने वाले और उसमें समाहित हो जाने वाले साहित्यकार है। युगीन समस्याओं पर चिंतन करना तो उनकी सहज प्रवृत्ति है। श्रीलाल शुक्ल का जीवन वृत्त और चरित्र इतना महनीय है कि वह युग की समस्त विशेषताओं को अपनी दृष्टिओं में भर लेते हैं और अपनी लेखनी के माध्यम से उस पर एक प्रकाश प्रक्षेपित करते हैं, जिससे आम जनमानस में उनके विषय में एक नवीन विचार का संचार होता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि श्रीलाल शुक्ल का व्यक्तित्व और कृतित्व एक दूसरे के पूरक हैं और एक के अवलोकन से दूसरा अपने आप अवलोकित हो

जाता है। श्रीलाल शुक्ल की यह दोनों बातें एक सिक्के के दो पहलू के समान होती हैं। प्रथम पहलू में वह उनको प्रकाशित करते हैं तो दूसरे पहलू में वह उनका समाधान ढूंढते हैं। उनके व्यक्तित्व की छाया उनकी रचनाओं में परिलक्षित होती है। इसलिए कहा जा सकता है श्रीलाल शुक्ल के व्यक्तित्व का आकलन उनकी रचनाओं द्वारा और उनकी रचनाओं का मूल्यांकन उनके व्यक्तित्व के मूल्यांकन के द्वारा संभव हो जाता है। इसीलिए तो श्रीलाल शुक्ल के बारे में प्रमुख साहित्यकार श्री राम त्रिपाठी लिखते हैं–''श्रीलाल शुक्ल हिंदी के महत्वपूर्ण उपन्यासकार है। उनका लेखकीय व्यक्तित्व तो उनकी रचनाओं में ही प्रकटा है। इसलिए उनकी रचनाओं को समझना ही उनके व्यक्तित्व को समझना है। उनका प्रारंभिक व महत्वपूर्ण उपन्यास है–राग दरबारी, और उत्तर कालीन महत्वपूर्ण उपन्यास है विश्रामपुर का संत। इन दोनों के बीच आवन जावन करके ही उनके व्यक्तित्व को समझना मुमकिन है।''[2]

श्रीलाल शुक्ल उस विधा के उपन्यासकार हैं जो समाज की विद्रूपताओं को खोलने में सक्षम है। इस अर्थ में श्रीलाल शुक्ल पूर्णतया यथार्थ के अनुगामी सिद्ध होते हैं। श्रीलाल शुक्ल यथार्थ को पूरी तरह से समाज के सामने लाकर खड़ा कर देने में सक्षम उपन्यासकार हैं। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास समाज के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डालते हैं औरसामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक शैक्षिक किसी भी प्रकार के आयाम के यथार्थ का गहराई से अन्वेषण करते हैं। और उस पर अपनी बेबाक राय रखते हैं। सूनी घाटी का सूरज से लेकर राग विराग तक के उनके उपन्यास पूरी तरह से सामाजिक यथार्थ से भरे पड़े है। उन्होंने प्रत्येक विसंगतियों पर कटाक्ष किया है। अलग–अलग विषय वस्तु के माध्यम से वह यथार्थ की तह तक जाते हैं और उस तह से यथार्थ को बाहर लेकर आते हैं। सामाजिक व्यवस्था के पतन पर अपना असंतोष जाहिर करते हैं और उसे सुधारने की दिशा में कदम उठाते भी दिखाई देते हैं। यद्यपि उनके उपन्यासों में समस्याओं का निरीक्षण अधिक है किंतु समस्या के अंदर ही समाधान भी निहित है। वर्तमान समय में सत्ताधारी लोगों द्वारा देश का जो हाल किया गया है उससे श्रीलाल शुक्ल व्यथित होते हैं और उनकी सत्ता लोलुपता, उनके अंतर्मन में विद्यमान भ्रष्टाचार की नियत, प्रपंचो तथा उनको भ्रष्ट नीतियों से कराहते हुए देश वेदना को प्रस्फुटित करना ही श्रीलाल शुक्ल का नैतिक कर्तव्य बन जाता है। उनका राग दरबारी उपन्यास इस तथ्य को उद्घाटित करता है। राग दरबारी में उद्धृत किया गया गांव शिवपाल गंज इन्हीं अव्यवस्थाओं को झेलता हुआ संपूर्ण भारतीय गांव की परिस्थिति का मानचित्र उपस्थित करता है। पहला पड़ाव उपन्यास इस देश के युवा नौजवानों की दयनीय दशा का चित्रण करता है। इसमें पढ़ा–लिखा नवयुवक वर्ग काम के अभाव में दर–दर की ठोकरें खा रहा है और भरपेट रोटी के लिए तरस रहा है। उसकी असहाय स्थिति से उसकी पूरी पारिवारिक व्यवस्था चरमरा जाती है। वस्तुतः यह उस स्वातंत्र्योत्तर भारत का एक चित्र है जो तत्कालीन समाज में उपस्थित था और उसी का चित्र चतुर साहित्यकार ने अपने व्यंग्यके माध्यम से समाज के सम्मुख उपस्थित किया है। 'सीमाएं टूटती है' उपन्यास में धन और ऐश्वर्य के मद में मदमस्त मनुष्य के विलासिता और अपराध की वृत्ति का उद्घाटन है तो उसके कुप्रभाव से टूटती हुए जिंदगी का चित्र । पिता के जेल होने के बाद भी उसे छुड़ाने की चिंता किसी को नहीं है बल्कि अपने मान सम्मान और प्रतिष्ठा की चिंता अधिक है। यह समाज में पतित होते नैतिक संबंधों की पराकाष्ठा है। श्रीलाल शुक्ल की कोई भी कृति किसी नैतिक आदर्श को प्रस्तुत करती हुई दिखाई नहीं देती बल्कि पतित होते हुए जीवन स्तर पर बड़ी ही कठोरता से प्रहार करती है। श्रीलाल शुक्ल की रचनाओं को उनके यथार्थ वृत्ति का ही प्रतिफल माना जा सकता है। किसी भी समस्या के प्रति सम्यक दृष्टिकोण रखना किसी भी साहित्यकार का नैतिक कर्तव्य है और श्रीलाल शुक्ल इस कर्तव्य के परिपालन में पूर्णतया संलग्न होते हैं। श्रीलाल शुक्ल की यथार्थ का परीक्षण करने की दृष्टि अत्यंत विलक्षण है। समस्याओं की पहचान तो बड़ी ही चतुराई

के साथ करते हैं और उनके प्रस्तुतीकरण का तरीका अत्यंत उच्च कोटि का होता है। एक कुशल पर्यवेक्षक की तरह श्री लाल शुक्ला स्वतंत्र भारत की परिस्थितियों का ऐसा पर्यवेक्षण करते नजर आते हैं जो गुण को कम अवगुणों को ज्यादा रेखांकित करता है। अवगुणों को रेखांकित करने के पीछे उनका उद्देश्य महज इतना होता है कि उन अवगुणों से मुक्ति दिलाकर समाज को एक सही रास्ते पर अग्रसर किया जाए।

श्रीलाल शुक्ल एक सफलआलोचक भी है। श्रीलाल शुक्ल न सिर्फ किसी अन्य व्यक्ति की आलोचना करते हैं बल्कि वह स्वयं का भी आलोचनात्मक मूल्यांकन करते नजर आते हैं। इस अर्थ में वह तरह से पक्षपात रहित एक कुशल साहित्यकार की भूमिका में नजर आते हैं। उन्होंने न सिर्फ दूसरों पर बल्कि अपने जीवन और अपनी रचनाओं पर भी कई तरह से व्यंग्य कसे हैं। अपनी रचनाओं के बारे में टिप्पणी करते हुए लिखते हैं–''सबसे पहली कमी हमारे उपन्यासों में चिंतन और वैचारिकता की ही है। पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों के अलावा और अपन–अपने अजनबी या रमेश चंद्र शाह का 'पुर्वापर' जैसे कुछ उपन्यासों को छोड़कर हमें ऐसे उपन्यास आसानी से नहीं मिलते जो वाह्य यथार्थ से हमें ऊपर ले जाते हो। जिस देश में कठोपनिषद जैसा दार्शनिक चिंतन एक कथा के माध्यम से हुआ हो, जिसे हम लघु उपन्यास भी कह सकते हैं, वहां ऐसे दो चार लेखकों का भी ना होना आश्चर्य की बात है जो विचार परक उपन्यासों की ओर उन्मुख हो । यही नहीं हमारे अधिकांश उपन्यास अति सामान्य प्रश्नों से जूझते रहते हैं और उनसे हमारा अनुभूति संसार किसी भी तरह समृद्ध नहीं होता। बहुत से लेखक ऐसे भी हैं जो उपन्यास के माध्यम को शाब्दिक वृतचित्र से भिन्न नहीं समझते। भारत का इतिहास भूगोल, यहां के समाज की विविधता, कलाएं, संस्कृति, वर्तमान समस्याओं और प्रश्नों की अटूट श्रृंखला, यहां के विशद जीवन अनुभव और उनके बदलते हुए नक्शे–उपन्यास ने अभी उनकी परिधि को छुआ भर हैं। हिंदी उपन्यास की और ऐसी ही अनेक सीमाएं स्पष्ट करती है कि इस विधा की संभावनाओं की अभी सम्यक रूप से पहचान नहीं की गई है और उसकी उपलब्धियों के शिखर को अभी हम तलहटी से ही देख रहे हैं, उसका आरोहण नहीं कर पाए हैं।''[3]

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में सामाजिक चेतना के साथ–साथ राजनीतिक चेतना भी विद्यमान है। वे समाज के प्रति पूरी तरह से गंभीर है और समाज में उठे दुख दर्द को सहानुभूति पूर्वक आत्मसात करते हैं। राजनीति के गिरते स्तर पर तो उनका करारा व्यंग अपने आप में बेजोड़ होता है। जिस भाषा और शैली में व्यंग्य के माध्यम से उन्होंने राजनेताओं को फटकार लगाई है वह तत्कालीन परिस्थिति में किसी और साहित्यकार की कृतियों में प्राप्त नहीं होता है। श्रीलाल शुक्ल स्वयं एक निर्धन और विपन्न परिवार से संबंध रखते थे । इसलिए निर्धन और गरीबों के दुख दर्द का उन्हें बहुत ही नजदीक से अनुभव था। अपनी गरीबी के बारे में श्रीलाल शुक्ला लिखते है–''मेरे पिता को निर्धनता, सदाचरण और साहित्य तथा संगीत का संस्कार विरासत में मिला।''[4]

उपरोक्त कथन को यदि हम दृष्टिगत करें तो उसमें निर्धनता शब्द उनके ह्रदय की वेदना को स्पष्ट करता है। उनके उपन्यासों में निर्धनता के कारण अत्यंत दयनीय अवस्था में पहुंच चुके परिवारों का भी चित्रण है। सूनी घाटी का सूरज हो अथवा पहला पड़ाव, सभी में गरीब और गरीबों की विभीषिका का जीता जागता दस्तावेज है। पूंजीवाद और श्रमिक वाद के रूप में दो वर्गों में विभाजित हुए हो चुके समाज में उत्पन्न वर्ग संघर्ष की स्थिति समाज को विकृत कर रही थी यह आधुनिकतम संघर्ष शोषक और शोषितों के मध्य था जिसमें पूंजीपति शासक के रूप में और आम गरीब जनता शोषित के रूप में उपस्थित थी कार्ल मार्क्स इस संबंध में लिखते हैं कि–''इस संघर्ष का अनिवार्य परिणाम पूंजीवाद का विनाश तथा सर्वहारा वर्ग की विजय है।''[5]

भारतवर्ष में हमेशा से जमींदारी प्रथा विद्यमान रही है, जिसमें जमींदार जमीन के मालिक हुआ करते थे और किसान उनके खेतों में काम किया करते थे। ऐसे जमींदार निरंतर श्रमिकों का शोषण करते थे। किसान त्राहिमाम कर रहा था। ऐसी परिस्थिति में श्रीलाल शुक्ल की पैनी दृष्टि इस विसंगति पर अपनी लेखनी के माध्यम से प्रहार करती है। 'पहला पड़ाव' उपन्यास में सत्ते, यशोदा, नेता आदि तमाम मजदूर वर्ग गरीबों की समस्याओं को उद्घाटित करने वाले किरदार है। समाज में फैली चरित्र हीनता का एक उदाहरण यशोदा की परिस्थितियों से भी देखा जा सकता है, जहां नेता की मृत्यु के बाद तमाम लोग यशोदा को परेशान करते हैं। यह तत्कालीन समाज की कुत्सित मानसिकता का द्योतक भी हैं। सते भी अत्यंत गरीब है। इसीलिए वह इच्छा के होते हुए भी अपनी पढ़ाई आगे नहीं बढ़ा पाता और उसे परमात्मा जी की बनती हुई बिल्डिंग में मुंशीगीरी करनी पड़ती है। श्रीलाल शुक्ल समाज के इस यथार्थ को सामने रखकर समाज को धिक्कारते हैं। श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य प्रत्येक परिस्थिति में निकल कर सामने आ जाता है। श्रीलाल शुक्ल देश के गिरते हुए राजनीति के स्तर से भी बहुत व्यथित है। देश और प्रदेश में व्याप्त भ्रष्टाचार का उद्घाटन वे अपनी रचनाओं के माध्यम से करते हैं और राजनीतिक षड्यंत्र का पर्दाफाश करते हैं। उनकी जीवंत कृति राग दरबारी तथा उनके अन्य उपन्यासों में इन्हीं परिस्थितियों का उल्लेख है। शुक्ला जी की इसी विशिष्टता की ओर संकेत करते हुए प्रोफेसर शंभूनाथ लिखते हैं–''श्रीलाल शुक्ल अपने ढंग के अनोखे लेखक हैं जिन्होंने ऐबजरविटी और व्यंग्य को जोड़कर राजनीति की विडंबनाओं को दिखाया है। राग दरबारी में गांव की निष्ठुर राजनीति का नंगा चित्र है जो संभव है अति सूक्ष्म पर्यवेक्षण और कथनात्मक अन्विति की दृष्टि से ज्यादा प्रभावकारी हो उसमें अनावरण है, पर हस्तक्षेप नहीं । विश्रामपुर का संत में एक विस्तृत कैनवास है और कथा कई जगहों की घटनाओं से टकराती है। यह निषेधवादी टोन में ही सही राजनीति की समकालीन विडंबना को एक बड़े परिप्रेक्ष्य में उपस्थित करती है।''[6]

यदि हम श्रीलाल शुक्ल के बारे में अधिक जानना चाहते हैं तो हमें उनके द्वारा रचे गए उनके उपन्यासों का एक अनुशीलन करना ही होगा। उनके साहित्य के अनुशीलन के द्वारा ही हम उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए इस स्थान पर आकर यह आवश्यक हो जाता है कि उनके समस्त उपन्यासों का गंभीर अध्ययन किया जाए। सर्वप्रथम हम उनके समस्त जीवन वृत्त पर एक विहंगम दृष्टिपात करने का प्रयास करेंगे, तत्पश्चात हम उनके उपन्यास और उपन्यासों में व्यंग्यात्मकता के दृष्टिकोण से उनका गहन अध्ययन करने का प्रयास करेंगे।

उपन्यास की विधा में व्यंग्य का प्रवेश निश्चित ही विषय वस्तु को अत्यधिक रोचक तथा प्रभाव कारी बना देता है। अपनी बात को प्रत्यक्ष माध्यम से कहना थोड़ा कठिन होता है, किंतु यदि उसे परोक्ष रूप से कहा जाए तो वाला समझ भी जाता है और कहने वाले को कोई समस्या भी उत्पन्न नहीं होती। इसीलिए श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यासों में यत्र तत्र कथावस्तु के आधार पर व्यंग्य का निर्माण किया है और उनके द्वारा परिस्थिति पर ऐसा प्रकाश डाला गया है कि सुनने वाला समझ कर भी कुछ भी नहीं कर सकता और अपने अंदर सुधारात्मक प्रक्रिया का समावेश करता है। श्रीलाल शुक्ल की यह शैली अत्यंत अनोखी है। उनकी यह शैली उनके निबंध से लेकर उपन्यासों तथा नाटकों सभी में देखी जा सकती है। श्रीलाल शुक्ल ने 10 से अधिक उपन्यासों का सृजन किया है। उनकी राग दरबारी कृति को साहित्य जगत में बहुत ही प्रतिष्ठा प्राप्त है। कुछ विद्वान राग दरबारी को जीवन का दस्तावेज भी घोषित करते हैं।

संदर्भ :

1. *प्रेमचंद : संपादक 'हंस' अप्रैल 1932, पृष्ठ 40*
2. *कृपाल देवांश : संपादक पाठ जनवरी– मार्च 2009 पृष्ठ– 18*
3. *सुशील सिद्धार्थ संपादक श्रीलाल शुक्ल संचयिता, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली : प्रथम संस्करण –2008, पृष्ठ 442*
4. *श्रीलाल शुक्ल यह घर मेरा नहीं पृष्ठ संख्या – 113*
5. *कार्ल मार्क्स : राजनीति शास्त्र, पृष्ठ– 421*

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

ममता कालिया के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना

सीमा चन्द्रा

शोध छात्रा

राणा प्रताप पी0 जी0 कॉलेज, सुल्तानपुर

राजनीतिलोक सेवा तथा लोक कल्याण का साधन होनी चाहिए। राजनीति द्वारा ही तमाम प्रकार की समस्याओं का समाधान प्राप्त किया जाता है। किंतु ऐसा तभी संभव है जब राजनीति का प्रयोग पवित्र उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाए।वर्तमान राजनीतिक परिवेश में पवित्रता शब्द का सर्वथा लोप हो चुका है और उसके स्थान पर अनाचार तथा अत्याचार का बोलबाला है।राजनीति के क्षेत्र में अपराधी मनोवृत्ति के लोगों की घुसपैठ ने आधुनिक राजनीतिक परिवेश को पूर्णतया दूषित कर दिया है। जो राजनीति सेवा का माध्यम मानी जाती थी, आज उसी राजनीति का बेड़ा गर्क हो चुका है। राजनेता अपने कुटिल स्वार्थ की पूर्ति के लिए गरीब तथा कमजोर वर्ग का शोषण करते हैं और अपनी तिजोरिया भरते हैं। लोगों को लूटना तथा उनके हिस्से की वस्तुओं पर अनाधिकार पूर्वक आधिपत्य स्थापित करना राजनीति का हिस्सा बन चुका है। आज देश का ऐसा कोई कोना नहीं है जहां राजनीतिक भ्रष्टाचारविद्यमान न हो। आधुनिक काल में राजनीति शब्द ही भ्रष्टाचार का पर्याय बन गयी है। अपने राजनीतिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए किसी भी हद तक गिर जाने वाले राजनेताओं का आज समाज में कोई सम्मान नहीं रह गया है। वस्तुतः देखा जाए तो किसी भी नेता को आदर्श नेता के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।कोरे कोरे आश्वासनों के द्वारा चुनावी वैतरणी पार करने वाले राजनेता चुनाव जीतने के बाद आम आदमी के लिए केवल संकट उत्पन्न करते हैं और उनके शोषण में लग जाते हैं। जिस जनता के आगे चुनाव से पहले राजनेता हाथ जोड़ते हैं उसी जनता को उनसे किसी कार्य को कराने के लिए हाथ जोड़ना पड़ता है यहां तक की रिश्वत भी देनी पड़ती है। यद्यपि ममता कालिया के उपन्यासों में राजनीतिक भ्रष्टाचार का अधिक उल्लेख नहीं है तथापि कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में भ्रष्टाचार का पुट विद्यमान अवश्य है। ममता कालिया के उपन्यासों में राजनीतिक भ्रष्टाचार कई स्तरों पर परिलक्षित होता है जिनमें शैक्षिक संस्थान से लेकर अस्पताल तथा अन्य प्रकार के संस्थान शामिल है।

शैक्षणिक संस्थाएं न केवल शिक्षा प्रदान करने के साधन है अपितु इन्हीं शिक्षा संस्थानों में राष्ट्र निर्माण की पवित्र प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। ऐसी संस्थाएं छात्रों के चरित्र निर्माण के साथ–साथ राष्ट्र निर्माण के कार्य में भी निरंतर संलग्न रहती हैं। शिक्षा संस्थाओं की स्थापना शिक्षार्थी के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखकर किया जाता है, किंतु ऐसी संस्थाएं कभी कभी राजनीति का शिकार होकर पूरी तरह से नष्ट हो जाती है। शैक्षणिक संस्थाओं में कई प्रकार की राजनीति देखी जा सकती है जिसमें शिक्षक शिक्षण कार्य को तिलांजलि देकर दिन रात आपसी खींचतान तथा राजनीतिक षड्यंत्र में व्यस्त रहते हैं।उन्हें छात्रों की प्रगति तथा उनके किसी भी अन्य सरोकार से कोई लेना–देना नहीं रहता। महाविद्यालयों में शिक्षक एक दूसरे को नीचा दिखाने का कोई भी प्रयास जाया नहीं करते।महाविद्यालयों में चल रहे राजनीतिक षड्यंत्र का

पर्दाफाश करते हुए 'नरक दर नरक' उपन्यास में ममता कालिया इसी तरह की एक परिस्थिति का निर्माण करती हैं। उपन्यास का नायक जोगिंदर साहनी बड़ी मुश्किलों के बाद मुंबई के एक प्रतिष्ठित कॉलेज में नौकरी प्राप्त करने में सफल हो जाता है। जगन वास्तविक रुप से एक इमानदार शिक्षक के रूप में जल्द हीप्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है। उसकी यह प्रतिष्ठा उसके साथ के शिक्षकों को बिल्कुल भी नहीं सुहाती और वह जोगिंदर के खिलाफ षडयंत्र करने लग जाते हैं। जगन बहुत ही अनुशासन प्रिय शिक्षक के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था, किंतु अत्यधिक अनुशासन प्रिय होने के कारण एक दिनवह कक्षा में देर से आने वाली संचालक की बेटी कल्पना यादव को कक्षा में आने से मना कर देता है। जगन के इस व्यवहार की शिकायत कल्पना यादव ने प्राचार्य सामंत से किया जिसको लेकर प्राचार्य ने जगन को बहुत फटकारा। प्राचार्य की यह बात जगन को इतनी बुरी लगती है कि उसके बाद उसने कक्षा पर ध्यान देना बिल्कुल ही बंद कर दिया और देर से आने जाने वाले छात्रों को कभी नहीं टोका। परिणाम स्वरूप कक्षागत अनुशासन पूरी तरह से ध्वस्त हो गया और छात्र मनमाने ढंग से कक्षा में आने जाने लगे। सम्यक विचार करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सही रहने पर भी एक आदर्श शिक्षक को किस तरह से अपने कार्य व्यवहार में परिवर्तन करना पड़ता है,यह घटना उसी को तस्दीक करती है। वैसे भी महाविद्यालय के शिक्षक तथा प्रबंधक जगन से बहुत नाराज थे क्योंकि उसने अपनी ही छात्रा उषा के साथ प्रेम विवाह कर लिया था।

आजकल महाविद्यालयों में एक अन्य प्रकार की समस्या भी दृष्टिगोचर होती है जहां संस्था के अध्यक्ष तथा प्राचार्य की बिल्कुल भी नहीं पटती। ऐसी स्थिति में संस्थाअध्यक्ष प्राचार्य को हटाने के लिए तमाम तरह के षड्यंत्र करने लग जाते हैं। किंतु कुछ प्राचार्य ऐसे होते हैं जिन्हें नियम तथा कानून का पूरा का पूरा ज्ञान होता है और इस कारण व संस्था के अध्यक्ष से बिल्कुल भी नहीं डरते।ऐसी परिस्थिति में प्राचार्य तथा संस्था अध्यक्ष के मध्य एक अघोषित युद्ध चलने लगता है, किंतु दोनों अपने अपने स्थान पर अडिग रहते हैं।शिक्षकों द्वारा किए गए किसी कार्य के लिए प्राचार्य को जिम्मेदार ठहरा कर और उस पर प्रशासनिक अक्षमताका आरोप लगाकरउसे हटाने का प्रयास प्रबंधक द्वारा किया जाने लगता है। नरक दर नरक उपन्यास में जगन साहनी के केस में महाविद्यालय का प्रबंधकमौके का फायदा उठाकर प्राचार्य को हटाने का प्रयास करता है। ऐसी स्थिति का उल्लेख करते हुए लेखिका लिखती है–

"केडिया कॉलेज का मैनेजर गुजराती था। वह इस घटना से बहुत उद्वेलित था।सामंत को निकाल फेंकने के लिए वह इस बात को बम की तरह इस्तेमाल करना चाहता था। पर सामंत इस कॉलेज में इक्कीस साल से थे, इसके कच्चे–पक्के जानते थे, उसे कई तरह से बचा और बना चुके थे। उनसे वह जलता भी था और दबता भी।"[1]

इस घटना का परिणाम यह होता है की प्राचार्य सामंत जगन से जलने लगते है और मैनेजर साहब का पूरा का पूरा गुस्सा साहनी पर ही उतारना चाहते हैं। जोगिंदर साहनी भीतर ही भीतर इन सारी चीजों का प्रतिरोध करता है। उसके विवाह को गलत तरीके से पेश किए जाने को लेकर वह चिंतित होता है और यह मानता है कि यह उसका व्यक्तिगत मसला है। इसके कारण विद्यालय पर कोई असर नहीं पड़ना चाहिए। अपने केबिन से निकलते समय उसका मूड काफी खराब हो जाता है और उसे यह अहसास होने लगता है कि वह घर गांव से दूर रहकर एक छोटी सी नौकरी के लिए इतनी सारी कवायदें कर रहा है। आगे चलकर जगन को महाविद्यालय की इस षड्यंत्रकारी राजनीति में फंसाने का प्रयास किया जाने लगता है जिसमें उसका विभागाध्यक्ष के सी शाह भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और जगन पर अनेकों आरोप–प्रत्यारोप मढ़ता रहता है। एक दिन कॉलेज के कैंटीन में छात्रों के बीच हुए विवाद के

लिए भी जगन को जिम्मेदार ठहराया जाता है।यह महज जगन को कॉलेज से निकाले जाने के लिए रचा गया एक षड्यंत्र ही था। जगन एक स्वाभिमानी प्रवृत्ति का व्यक्ति था और नित्य नए षडयंत्रों से ऊब चुका था। इसलिए वह अब अपनी नौकरी छोड़ने का मन बनाने लगता है और त्यागपत्र प्रस्तुत करना चाहता था। जगन का मन कर रहा था कि –

"वह डायरी में से पन्ना फाड़ कर इस्तीफा लिखें और जूते की नोक पर टिका कर सामंत और शाह के मुंह पर फेंक दें।"[2]

वास्तव में देखा जाए तो यह परिस्थिति किसी जगन जैसे शिक्षक की नहीं बल्कि ऐसे प्रत्येक व्यक्ति की है जो अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए त्यागपत्र देना ज्यादा बेहतर उपाय समझने लग जाता है। वस्तुतः ऐसा महाविद्यालयों में चल रहे षड्यंत्रकारी नीति का ही परिणाम है। जगन रोज–रोज की किच–किच से तंग आ चुका था और इसीलिए वह अपना इस्तीफा देकर अपने घर गांव से वापस जाकर छोटा–मोटा कारोबार कर अपना जीवन निर्वाह करना चाहता था। यद्यपि इस तरह की घटनाएं किसी प्रभावशाली व्यक्ति के साथ नहीं होती क्योंकि संचालक और प्राचार्य दोनों ऐसे लोगों के प्रभाव से दहशत में रहते हैं। अगर कोई प्राध्यापक किसी राजनीतिक दल से संबंध रखता है तो इसकी जानकारी होने पर प्रबंधक और प्राचार्य दोनों उससे अनावश्यक नहीं उलझते। तभी तो प्राचार्य सामंत तथा प्रबंधक दोनों लक्ष्मण देशमुख से बहुत डरते हैं और किसी समस्या के समाधान के लिए उनको आगे कर देते हैं। प्राचार्य सामंत देशमुख को समझाते हुए कहते हैं –

"जरा पता लगाते रहना, साहनी किसी राजनीतिक दल का सदस्य तो नहीं। मैं अपने कॉलेज में कोई राजनीतिक प्रपंच नहीं चाहता।"[3]

वर्तमान समय में महाविद्यालयों का शैक्षणिक वातावरण पूरी तरह से ध्वस्त हो चुका है। शिक्षकों में एक ओर जहां गुटबंदी चरम पर है वहीं दूसरी तरफ प्राध्यापकों के बीच एक दूसरे के विरुद्ध साजिश के कारण शिक्षा का मंदिर कहे जाने वाले संस्थानों को गंदी राजनीति का शिकार बना कर रख दिया है। शिक्षकों तथा प्राचार्य के बीच मनमुटाव इस कदर बढ़ जाता है कि एक दूसरे से संवाद तक स्थापित नहीं हो पाता। किंतु कुछ प्राध्यापक ऐसे भी होते हैं जिन्हें केवल प्राचार्य की जी हजूरी करने में ही भलाई दिखाई देती है और उनके पास बैठकर उनका दरबार सजाए रहते हैं।ऐसे प्राध्यापक प्रिंसिपल के कृपा पात्र होते हैं जबकि उन्हें शिक्षण तथा अन्य महाविद्यालयीय कार्यों से कोई लेना–देना नहीं होता। उनकी मान्यता रहती है कि प्राचार्य ही वह व्यक्ति है जिसे खुश रखते हुए सारा काम आसानी से निकाला जा सकता है। जो शिक्षक ऐसा नहीं करता, उसके साथ षड्यंत्र रच कर उसे झूठे मामलों में फंसाकर महाविद्यालय से निकालने का प्रयास किया जाता है। जगन भी इसी घटिया राजनीति का शिकार हो जाता है। जगन की पत्नी भी उसे प्रिंसिपल के साथ जी हुजूरी करने की सलाह देती है और कहती है कि तुम्हें अपने प्रिंसिपल को खुश करना चाहिए। किंतु उषा की यह बात जगन के गले नहीं उतरती और वह ऐसा करने से मना कर देता है। ऐसी व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करता हुआ जगनउषा से कहता है –

"इस व्यवस्था में आपको अपना भविष्य बनाना है तो एक तोप पैदा कीजिए,ताकत की तोप कोई मोटा व्यापारी, कोई धाकड़ संसद सदस्य,मंत्री जी का कोई बालसखा ऐसी कोई तोप ढूंढिए और हिंदुस्तान के नक्शे पर छा जाइये।"[4]

महाविद्यालयों में शिक्षकों के प्रमोशन के नाम पर भी बड़ा खेल होता है और वहां राजनीतिक षड्यंत्र दिखाई देता है। प्राचार्य तथा प्रबंध समिति के वफादार शिक्षक को प्रमोशन

आसानी से प्राप्त हो जाता है,जबकि उनकी चाटुकारिता न करने वाले शिक्षकों को खामियाजा भुगतना पड़ता है और उन्हें प्रमोशन तथा अन्य सुविधाओं से वंचित कर दिया जाता है। जगन के कॉलेज में भी इसी तरह का खेल चलता है। जगन के कॉलेज में लक्ष्मण देशमुख को सीनियर स्केल तो प्राप्त हो जाता है लेकिन जगन को वही सुविधा प्रदान करने से कॉलेज का प्रिंसिपल मना कर देता है। यद्यपि जगन एक स्थाई शिक्षक के रूप में नियुक्त था फिर भीबिना किसी आरोप पत्र के निष्कासित करने का पत्र प्रबंध समिति द्वारा प्राचार्य की अनुशंसा पर उसे पकड़ा दिया जाता है। प्राचार्य तथा प्रबंध समिति के इस व्यवहार से जगन अत्यंत दुखी हो जाता है और अपने प्राचार्य सामंत से इस विषय में जानकारी मांगता है।प्राचार्य सामंत जगन की बात का जवाब भी देना नहीं चाहता और कहता है –

"मैं आपको जवाब देना जरूरी नहीं समझता। आपको जो कहना है, मैनेजर से जाकर कहिए।और सुनिए, उनसे जरा तमीज से पेश आइएगा। आपकी यह तेजी और जंगलीपन भी इस नतीजे के कारण हैं।"[5]

जगन द्वारा अपने विरुद्ध चार्जशीट मांगे जाने पर प्रिंसिपल उसे कॉलेज के नियमों की फाइल खोलकर दिखाने लगता है, जिसमें लिखा था–

"महाविद्यालय के प्रबंध समिति प्रिंसिपल की रिपोर्ट पर किसी भी प्राध्यापक को तीन महीने का अग्रिम वेतन दे, कार्यमुक्त कर सकती है।"[6]

जगन अपने इस अपमान से बहुत आहत होता है और सामंत की ही मेज पर पड़े एक कागज के टुकड़े को उठाकर उस पर अपना त्यागपत्र प्रस्तुत कर देता है, जिसमें वह लिखता है –

"मैं कार्यकारिणी समिति के इस पत्र की भर्त्सना करते हुए इसका विरोध करता हूं और इसे लेने से इनकार करता हूं। प्रिंसिपल सामंत के अभद्र, पक्षपातपूर्ण और दमन शील व्यवहार के विरोध में मैं अपने प्राध्यापक पद से तत्काल त्यागपत्र दे रहा हूं। इसे अनिवार्य व अंतिम समझा जाए।"[7]

इस प्रकार जगन अपने पद से त्यागपत्र देकर अपने जीवन को अंधकारमय बनते हुए देखता रह जाता है और मन ही मन ऐसीव्यवस्था के प्रति उद्विग्न हो उठता है जहां उसे दिखाई देता है तो सिर्फ षड्यंत्र।

वर्तमान समय में महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयोंमें लेक्चरर बनाने के नाम पर भी खुलकर राजनीति होती है।कम योग्य व्यक्ति को रिश्वत लेकर महत्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। इस कार्य के लिए बीस से पच्चीस लाख रुपए डोनेशन के रूप में ले लिए जाते हैं। उच्च डिग्री धारी तथा कुशल बुद्धिमत्ता रखने वाला एक अच्छा व्यक्ति उपयुक्त पद पाने में असमर्थ हो जाता है, जबकि पैसे देने वाला व्यक्ति महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त करने में सफल हो जाता है, चाहे उसके सामान्य से भी कम अंक प्रतिशत क्यों न हो। शिक्षा के क्षेत्र में नौकरी प्राप्त करने के लिए आज बड़ी ताकत तथा किसी प्रभावशाली व्यक्ति का वरदहस्त प्राप्त होना आवश्यक है। अधिकांश शैक्षिक संस्थाएं शिक्षकों अथवा अन्य कर्मचारियों का चयन रिश्वत अथवा सिफारिश के आधार पर ही करती हैं। ऐसी परिस्थितियां शिक्षा के क्षेत्र को पूरी तरह से ध्वस्त कर रही हैं और समाज के सम्मुख कई तरह के सवाल उपस्थित कर रही हैं। सबसे दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति तब बन जाती है जब व्यक्ति चाह कर भी ऐसी व्यवस्था के विरुद्ध लड़ पाने में सक्षम नहीं होता जगन भी ऐसी व्यवस्था के विरुद्ध लड़ना चाहता है किंतु उसकी पत्नी उषा उस से दिल्ली चलने का आग्रह

करती है। ऐसी घटनाएं महज जोगिंदर साहनी के साथ हुई घटनाएं नहीं समझी जा सकती बल्कि आज के परिवेश में ऐसी सामाजिक तथा शैक्षिक संस्थाओ में काम करने वाले उन हजारों लाखों नव युवकों के दर्द भरे दास्तान के रूप में प्रख्यापित किए जा सकते हैं, जिन्हें बिना किसी कारण के व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति हेतु प्रबंध तंत्र तथा प्राचार्य के राजनीतिक षड्यंत्र का शिकार होते हुए अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिन शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना देश के बेहतर भविष्य के निर्माण के लिए की गई थी उनका स्वयं का भविष्य आज खतरे में पड़ गया है, क्योंकि इनमें कार्य करने वाले शिक्षकों तथा अन्य लोगों का उद्देश्य राष्ट्रहित व छात्रहित न होकर स्वार्थ पूर्ति बन गया है। शिक्षकगण एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए हर कोशिश करते हैं जिसके कारण महाविद्यालयों का शैक्षिक वातावरण पूरी तरह से विषाक्त हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में छात्र भी उद्दंड तथा अनुशासन हीन हो जाते हैं। ममता कालिया ने अपने उपन्यासों में ऐसी परिस्थितियों का चित्रण करते हुए वर्तमान महाविद्यालयों की दुर्दशा तथा उनमें नित्य प्रति किए जाने वाली राजनीति तथा षड्यंत्रों का पर्दाफाश किया है।

वर्तमान परिवेश में देश का ऐसा कोईकोना नहीं है जहां राजनीतिक भ्रष्टाचार व्याप्त न हो।भारतीय अस्पताल भी इससे अछूते नहींरहे। कहने को तो अस्पताल स्वास्थ्य प्रदाता संस्थान है और मनुष्य के जीवन को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं, किंतु उनकी कार्यप्रणाली आज संदेह के घेरे में है। डॉक्टरों का समाज में एक सम्मानजनक स्थान है और उन्हें भगवान का दर्जा दिया जाता है।किंतु कभी–कभी इन भगवानों का वीभत्स तथा लोभी स्वरूप देखकर उनके प्रति सम्मान तथा आदर का भाव क्षीण होने लग जाता है। अस्पतालों में भी राजनीतिक दांव पेंच इस तरह से प्रभावी हो जाते हैं कि उसका दुष्परिणाम पूरे तंत्र पर पड़ने लगता है और उसकी चपेट में आकर रोगी बहुत विषम स्थिति में फंस जाते हैं। अस्पतालों में दवाओं के नाम पर बड़ा खेल होता है। डॉक्टरों के मध्य आपसी खींचतान हमेशा बनी रहती है और वह अस्पतालों का धन अपहरण करने में लगे रहते हैं। कुछ डॉक्टर तो ऐसे होते हैं जो अस्पताल के बाद अपने स्वयं के चिकित्सालय खोलकर लोगों से मोटी रकम वसूलते हैं, जबकि उन्हें ऐसा करने के लिए अधिकृत नहीं किया जाता।डॉक्टरों में बढ़ती हुई अर्थ लोलुपता नागरिकों के जीवन पर एक कहर बनकर टूट रही है। इन अस्पतालों में कोई भी गरीब व्यक्ति अपना इलाज कराने में असमर्थ हो जाता है। चिकित्सक सरकारी अस्पतालों में जाने वाले रोगियों को अपने व्यक्तिगत चिकित्सालय का पता बता कर उन्हें वहां बुलाते हैं और चिकित्सा के नाम पर मोटी रकम ऐठते हैं।

सरकारी अस्पतालों में दवाइयां मुफ्त बांटने के लिए मानक के अनुसार पर्याप्त मात्रा में मंगाई जाती है। किंतु ऐसा देखने में आता है कि डॉक्टरों की मिलीभगत के कारण दवाइयों का स्टॉक खत्म घोषित कर दिया जाता है और रोगियों को बाहर की दवाइयां लिखी जाने लगती हैं। गरीब पेशेंट ऊंचे ऊंचे दामों में बिकने वाली दवाइयों को खरीदने में असमर्थ होते है। दवाइयों के अभाव में उनकी मृत्यु तक हो जाती है लेकिन संवेदनहीन डॉक्टर तथा अस्पताल पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रेम कहानी उपन्यास में ऐसी ही एक परिस्थिति पर प्रकाश डाला गया है जिसमें लेखिका ने दिल्ली जैसे महानगर में फैलने वाली भयंकर महामारी मलेरिया का उल्लेख किया है। दिल्ली महानगर में अचानक मलेरिया जैसी महामारी फैल जाती है और लोग अपना इलाज कराने के लिए बड़ी भारी मात्रा में अस्पतालों की ओर रुख करते हैं। महामारी की भयंकर स्थिति का उल्लेख करते हुए लेखिका लिखती हैं–

"इन दिनों शहर में मलेरिया भयंकर रूप से फैला हुआ था। अस्पताल में उसके इलाज के लिए भारी तादाद में एक अच्छी कंपनी की माकूल गोलियां मंगा ली गई थी। कांपते,थरथराते, बुखार में तपते लोग सुबह से अस्पताल पहुंच जाते। घंटों लाइन में खड़े होकर वे पर्ची बनवाते,फिर एक–एक कर डॉक्टर से जांच करवाते। अंत में उन्हें दवा के लिए लाइन लगानी पड़ती।इस सब में रोगी का खासा कचूमर निकल जाता, लेकिन और कोई चारा भी नहीं था। इतनी परेशानियों के बावजूद अस्पताल में आजकल खिड़की तोड़ भीड़ थी।"[8]

मरीजों के इलाज के लिए मानक के अनुरूप अस्पतालों में सरकारी दवाइयां उपलब्ध होती है और उन्हें लेने के लिए मरीजों की लंबी–लंबी कतारें लग जाती है।किंतु अचानक अस्पताल के चपरासी द्वाराउन्हें यह सूचना दी जाती है की दवाइयां खत्म हो चुकी है। दवाइयों के अभाव में मरीज परेशान हो उठते हैं और डॉक्टर गुप्ता से अपनी शिकायत करने जाते हैं। अस्पताल में कार्य करने वाले दूसरे डॉक्टर गिनेश भी ऐसी बात से हतप्रभ रह जाते हैं। उनका मानना था कि पर्याप्त मात्रा में मंगाई गई दवाइयां इतनी जल्दी खत्म नहीं हो सकती। इस बात को लेकर गिनेश तथा डॉ गुप्ता में बहस हो जाती है। डॉ गुप्ता कहते हैं–

"जितना स्टॉक था,बांट दिया गया। अस्पताल ने क्या सारे शहर का ठेका ले रखा है?यह गलीज लोग क्या कभी ठीक हो सकते हैं! आज इन्हें मलेरिया से बचाओ, कल इन्हें फ्लू हो जाएगा। फ्लू ठीक करो टाइफाइड हो जाएगा। दवाई खिलाने से पहले इन्हें सफाई सिखाने की जरूरत है। गंदगी इनका भोजन है और मच्छर इनका हमसाया।"[9]

डॉ गिनेश को डॉ गुप्ता की बात अच्छी नहीं लगती। डॉ गुप्ता से असहमत होते हुए गिनेश कहता है–

"नहीं सर, गरीबी इनका हमसाया है, भुखमरी इन का भोजन।"[10]

वास्तव में देखा जाए तो राजनीतिक दलों के राजनेताओं तथा डाक्टरों में आपसी मिलीभगत होती है। मिलीभगत के कारण ही भ्रष्ट डॉक्टरों पर कोई कार्यवाही नहीं की जाती और वह अस्पताल का धन लूटते रहते हैं।जब जिम्मेदारी का आभास करने का समय आता है तो वह अपना सारा उत्तरदायित्व राजनेताओं पर डालकर अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। नेता भी चुनाव के समय लंबे लंबे वादे करते हैं और स्वास्थ्य तथा शिक्षा जैसी मूलभूत सुविधाओं को ठीक करने का आश्वासन देते हैं। किंतु जीतने के बाद उनके यह आश्वासन बिल्कुल कोरे आश्वासन साबित होते हैं। डॉक्टर गिनेश की बात को पलटते हुए डॉ गुप्ता कहता है –

"तो इसका इलाज हम कहां से करें। जाएं ये गांधी टोपी वाले नेताओं के पास, उनसे इलाज मांगें। उनसे क्यों नहीं कुछ कहते, जिन्हें ये चुपचाप जाकर वोट पकड़ा आते हैं।"[11]

डॉ गुप्ता की बात वस्तुतः यथार्थ का चित्रण करती हुई प्रतीत होती है। यद्यपि डॉक्टर गुप्ता को एक भ्रष्ट डॉक्टर की श्रेणी में शामिल किया जाता है, किंतु फिर भी उन्होंने अस्पतालों तथा राजनेताओं के बीच मिलीभगत का पर्दाफाश किया है। आजकल सरकारी अस्पतालों में दवाइयों का स्टॉक खत्म हो जाने के कारण बाहर के मेडिकल स्टोर के लिए मोटी रकम कमाने का अवसर उपलब्ध हो जाता है। इस कार्य के लिए ऐसे मेडिकल स्टोर डॉक्टरों को लंबा कमीशन देते हैं और इसीलिए अस्पतालों में दवाइयों की कोई कमी न होते हुए भी वे मरीजों को बाहर से दवाई खरीदने का पर्चा लिख देते हैं। इस परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए लेखिका लिखती है–

"अस्पताल में इसी तरह दवाओं का स्टॉक खत्म हो जाता।कभी टैटबैक उपलब्ध न होता,

कभी पोलियो डोज खलास हो जाती। कभी विटामिन बी के कैप्सूल गायब हो जाते हो कभी एपीसी नदारद। अस्पताल के बाहर केमिस्टों की चांदी बन आती। मरीज निराश होकर वहीं जाते।"[12]

अस्पताल की अव्यवस्था से तंग आकर मरीज डॉक्टरों को उनके निजी आवास पर जाकर व्यक्तिगत रूप से दिखाना चाहते हैं, जिसके लिए उन्हें उन डॉक्टरों को अच्छी खासी फीस देनी पड़ती है। मरीज जीवन को पैसे से अधिक महत्व देते हैं और वह ऐसा करने के लिए मजबूर होते हैं। डॉक्टर भी अपनी प्राइवेट प्रैक्टिस में ज्यादा रुचि दिखाते हैं और मरीजों से मोटी रकम वसूलते हैं। ऐसा नहीं है कि कोई एक या दो डॉक्टर इस तरह की प्राइवेट प्रैक्टिस में लगे होते है, बल्कि अस्पताल के अधिकांश डॉक्टर अतिरिक्त धन कमाने के उद्देश्य से इस तरह के अपने निजी अस्पताल खोल लेते हैं और वहां मनमानी फीस वसूल करते हैं। डॉक्टरों के इसी कृत्य का उद्‌घाटन करते हुए लेखिका लिखती है–

"उन दिनों डॉक्टर गुप्ता, डॉक्टर मेहंदी रत्ता, डॉक्टर प्रधान,डॉक्टर गोकर्ण वगैरह के घरों में भी शाम को अतिरिक्त भीड़ होती। कई मरीज अस्पताल की भीड़ और लंबे इंतजार से घबराकर किसी तरह फीस का प्रबंध कर शाम को डॉक्टर साहब के घर पर दिखते।"[13]

सरकारी अस्पतालों के डॉक्टरों के पास प्राइवेट मेडिकल कंपनियों के भी बहुत बड़े–बड़े ऑफर आते रहते हैं, जिसमें उनकी दवाएं चलाने पर डॉक्टरों को मोटी रकम कमीशन के तौर पर प्राप्त हो जाती है। डॉ गुप्ता भी कुछ इसी प्रकार के डॉक्टर हैं जिनकी बहुत अधिक ख्याति होने के कारण मेडिकल कंपनियों के रिप्रेजेंटेटर उनके पास बड़ी–बड़ी भेंट चढ़ा आते हैं। अपनी पत्नी उषा से डॉक्टरों के इस षड्यंत्र का उल्लेख करते हुए गिनेस कहता है–

"उस दवा कंपनी का प्रतिनिधि इनके पास न जाने क्या–क्या भेंट छोड़ जाता है।तभी इन्हें वह दवा कंपनी इतनी प्यारी है।"[14]

चिकित्सा जगत में व्याप्त ऐसे षड्यंत्र और उसके जाल में उलझ कर पिस रहे रोगियो का उल्लेख करते हुए गिनेश उषा से कहता है–

"तुम नहीं जानती, यह एक जाल है, जो पूरे कॉलेज और अस्पताल में फैला हुआ है। जो लोग इस जाल को फैलाने में उनकी मदद करते हैं, उनकी ये भी मदद करते हैं। जैसे बेजरूरत मरीज का फलाँ डॉक्टर से एक्सरे करवाना। अगर वह कहीं और से करवा लाया है तो उस रिपोर्ट को ऑथेंटिक न मानना। जनरल वार्ड में विस्तर होते हुए भी जबरदस्ती प्राइवेट वार्ड में मरीज दाखिल करना। जब तक मरीज मरणासन्न न हो जाए लापरवाही बरतना। जो मरीज प्राइवेट उपचार कराएं उन पर ज्यादा ध्यान देना, जो अस्पताल में इलाज करवाएं उन पर कम।"[15]

अस्पतालों में नया–नया कार्यभार ग्रहण करने वाले डॉक्टरों के साथ भी साजिश की जाती है। उनका विरोध तक किया जाता है। सीनियर डॉक्टर उनसे मनमाने तरीके से काम करवाने का प्रयास करते हैं और उनके द्वारा अपने अनैतिक कार्य में सहयोग किए जाने की अपेक्षा रखते हैं, जिसके कारण ऐसे नवागत डॉक्टर मानसिक रूप से त्रस्त हो जाते हैं। प्रेम कहानी उपन्यास में डॉ उस्मान ने अभी–अभी कार्यभार ग्रहण किया था किंतु उन्हें मरीज का ऑपरेशन करने के लिए थिएटर तक खाली नहीं किया जाता। डॉक्टरों की आपसी खींचतान के कारण अस्पताल में मरीजों के जीवन को संकट उत्पन्न हो जाता है। इस घटना की जानकारी उषा को देते हुए गिनेश कहता है–

"वह नए डॉक्टर आये है न, डॉक्टर उस्मान, सर्जरी के लेक्चरर! उन्हें लेकर विभाग में जबरदस्त विरोध है। डॉ गुप्ता उनसे बेहद चिढ़ते हैं। उन्होंने पूरे विभाग में यह प्रदूषण फैला दिया है। परसों डॉक्टर उस्मान को बड़ा जरूरी इमरजेंसी ऑपरेशन करना था। थिएटर खाली नहीं मिल रहा था।उनका मरीज दो बजे तक कॉरिडोर में पड़ा रहा और जब ऑपरेशन थिएटर उन्हें मिला तब ऑपरेशन के दौरान बिजली गुल हो गई। आपसी भेदभाव में दूसरों की जान से खिलवाड़ करना जैसे आम बात है।"[16]

अतः कहा जा सकता है कि अस्पतालों में भी राजनीतिक षड्यंत्र की बू विद्यमान है। अस्पताल में डॉक्टर आपसी संघर्ष में इतने उलझे रहते हैं कि उन्हें मरीजों की जिंदगी से कोई लेना–देना नहीं रह जाता। अपना जेब भरने के लिए मरीजों का शोषण करते रहते हैं। उनकी इस खींचतान में रोगी की जान भी जा सकती है। इस तथ्य से अवगत होते हुए भी वह बेफिक्र रहते हैं। अंततोगत्वा अस्पतालों की भ्रष्ट व दूषित राजनीति का शिकार मरीजों को ही होना पड़ता है, जिसकी चपेट में आकर वह अपने जीवन को दांव पर लगाते हुए ऐसे अस्पतालों में अपना इलाज कराने पहुंचते हैं। देश के लिए यह स्थिति अत्यंत ही दुर्भाग्यपूर्ण है। डॉ ममता कालिया के उपन्यासों में ऐसी परिस्थितियों का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया गया है।

किसी भी व्यक्ति के लिए आजीविका का अर्जन सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य है। व्यक्ति अपनी रोजी–रोटी के चक्कर में स्वदेश तो क्या विदेश तक दौड़ लगाता है, और यदि उसे वहां कोई अच्छी सी नौकरी मिल जाती है तो वहीं रहने की सोचता है। इस क्रम में वह अपने देश,परिवार तथा समाज से बहुत अधिक दूर चला जाता है जहां से उसके लौटने की संभावना प्रायः कम ही होती है, और अगर लौटकर आता भी है तो भी उसका मन वही रहता है जहां उसकी रोजी–रोटी है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपनी आजीविका के लिए विदेश तो जाते ही हैं, वहां जाकर वहां की लोकलराजनीतिक गतिविधियों में भी शामिल हो जाता है।ममता कालिया ने विदेशों में की जाने वाली राजनीति का सुंदर चित्रण अपने उपन्यास दौड़ में किया है, जिसमेंपवन का छोटा भाई सघन ताइपे नामक शहर से नौकरी का पत्र आने के बाद वहां चला जाता है। कुछ समय नौकरी करने के बाद वह वहां की लोकल राजनीति में भी रूचि लेने लग जाता है। यह बात उसके माता–पिता रेखा तथा राकेश को बिल्कुल भी नहीं सुहाती और वह किसी अनहोनी की आशंका से आशंकित हो जाते हैं।वह यह नहीं समझ पाते हैं कि आखिर सघन स्थानीय राजनीति में क्यों सक्रिय हो गया है? एक बार उसके बड़े भाई पवन का फोन घर पर आता है तो सघन के बारे में वह अपने पापा को सब कुछ बता देता है। पवन कहता है–

"हां पापा !उसका ताइपे से खत आया था। जॉब उसका ठीक चल रहा है पर उसकी चाल ढाल ठीक नहीं लगी।वह वहां के लोकल पॉलिटिक्स में हिस्सा लेने लगा है। यह चीज घातक हो सकती है।"[17]

पवन भी सघन के इस कार्य से सहमत नहीं था। उसने सघन को बहुत समझाने की कोशिश की किंतु सघन अपने रुख पर अडिग रहा। पवन को सघन का यह अड़ियल रुख बिल्कुल भी ठीक नहीं लगा। इस बात को अपने पिता राकेश से बताते हुए पवन कहता है–

"मैंने फोन किया था। वह तो नेता की तरह बोल रहा था। मैंने कहा नौकरी को नौकरी तरह करो, उसमें उसूल सिद्धांत ठोकने की क्या जरूरत है।"[18]

इस बात पर सघन के माता पिता बहुत अधिक व्याकुल हो जाते हैं और उनका दिल दहशत से भर जाता है। सघन की माँ रेखा उसे तुरंत फोन लगवाती है। मां से बात होने पर सघन अपने पिता कोसमझाते हुए कहता है–

"ऐसा है पापा अगर मैं लोकल लोगों के समर्थन में नहीं बोलूंगा तो यह लोग मुझे नष्ट कर देंगे।"[19]

सघन की बात सुनकर रेखा और राकेश और भी घबरा जाते हैं और उसे स्वदेश वापस आने के लिए कहते हैं। किंतु सघन उनसे यह पूछता है किहिंदुस्तान आकर वह क्या करेगा ? उसने जो कुछ भी अभी तक कमाकर अपने पास बचाया है उससे तो कोई नया बिजनेस भी नहीं खड़ा किया जा सकता। इसलिए उसको ताइपे में रखकर ही नौकरी करना पड़ेगा। और अब वह वहां जम भी चुका है। इस बात को सुनकर राकेश कहते हैं–

"परदेस में आदमी कभी नहीं जम सकता।तंबू का कोई न कोई खूंटा उखड़ा ही रहता है।"[20]

अतः स्पष्ट है ममता जी के उपन्यासों में विदेशों में की जाने वाली राजनीति का भी उल्लेख है।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि ममता कालिया के उपन्यासों में सामाजिक चेतना विद्यमान है, जिसके अंतर्गत सामाजिक, परिवारिक,आर्थिक, शैक्षिक तथा राजनीतिक समस्त प्रकार की गतिविधियां समाहित है। अपने उपन्यासों में डॉ ममता कालिया ने इन समस्त परिस्थितियों पर प्रकाश प्रक्षेपित किया है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. *डॉ ममता कालिया : नरक दर नरक; पृष्ठ–49; प्रथम पेपरबैक संस्करण –2022, (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
2. *डॉ ममता कालिया : नरक दर नरक; पृष्ठ–53; प्रथम पेपरबैक संस्करण –2022, (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
3. *डॉ ममता कालिया : नरक दर नरक; पृष्ठ–64; प्रथम पेपरबैक संस्करण –2022, (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
4. *डॉ ममता कालिया : नरक दर नरक; पृष्ठ–72; प्रथम पेपरबैक संस्करण –2022, (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
5. *डॉ ममता कालिया : नरक दर नरक; पृष्ठ–76; प्रथम पेपरबैक संस्करण –2022, (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
6. *डॉ ममता कालिया : नरक दर नरक; पृष्ठ–76; प्रथम पेपरबैक संस्करण –2022, (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
7. *डॉ ममता कालिया : नरक दर नरक; पृष्ठ–77; प्रथम पेपरबैक संस्करण –2022, (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
8. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– प्रेम कहानी; पृष्ठ –161, पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
9. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– प्रेम कहानी; पृष्ठ –162, पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
10. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– प्रेम कहानी; पृष्ठ –162, पेपरबैक संस्करण– 2022*

(किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)

11. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– प्रेम कहानी; पृष्ठ –162, पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
12. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– प्रेम कहानी; पृष्ठ –163, पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
13. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– प्रेम कहानी; पृष्ठ –163, पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
14. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– प्रेम कहानी; पृष्ठ –159, पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
15. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– प्रेम कहानी; पृष्ठ –159, पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
16. *डॉ ममता कालियाः तीन लघु उपन्यास– प्रेम कहानी; पृष्ठ –160, पेपरबैक संस्करण– 2022 (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)*
17. *डॉ ममता कालियाः दौड़ ; पृष्ठ– 93, संस्करण– 2014 (वाणी प्रकाशन नई दिल्ली)*
18. *डॉ ममता कालियाः दौड़ ; पृष्ठ– 93, संस्करण– 2014 (वाणी प्रकाशन नई दिल्ली)*
19. *डॉ ममता कालियाः दौड़ ; पृष्ठ– 94, संस्करण– 2014 (वाणी प्रकाशन नई दिल्ली)*
20. *डॉ ममता कालियाः दौड़ ; पृष्ठ– 94, संस्करण– 2014 (वाणी प्रकाशन नई दिल्ली)*

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

महाराजा रणजीत सिंह और आधुनिक पंजाब का प्रारंभिक एकीकरण

डॉ. शलभ चिकारा
एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
स्वामी श्रद्धानन्द कॉलेज, अलीपुर
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

18वीं शताब्दी के मध्य से पंजाब में मुगल साम्राज्य के पतन और सिक्खों के अफगानों के विरुद्ध लगातार संघर्ष के कारण पंजाब के अलग–अलग भागों में छोटे–छोटे स्वतंत्र राज्य स्थापित हो गये थे। इन्हें मिसल कहा जाता था। कुल बारह मिसलें थीं, जिनमें से 11 सिक्ख मिसलें तो सतलुज के पश्चिम में थीं, जबकि एक मिसल सतलुज के पूर्व में थीं।[1]

इन मिसलों ने पंजाब के अधिकांश भागों पर अपना नियंत्रण स्थापित करने में सफलता प्राप्त की थी। पंजाब के पश्चिम और दक्षिण में मुसलमानों के छोटे–बड़े राज्यों की दो पंक्तियाँ थी– एक भीतरी तथा दूसरी बाहरी। भीतरी पंक्ति लाहौर के आसपास के क्षेत्र में थी, जिसमें झंग, पाकपटन, शाहपुर, जेहलम, साहीवाल एवं कसूर के छोटे–छोटे मुसलमान राज्य थे, जो कि पंजाब में रहने वाले पठानों ने स्थापित किये थे। मुसलमान राज्यों को दूसरी और बाहरी पंक्ति में कश्मीर, हजारा, पेशावर, डेरा इस्माइल खाँ, डेरा माजी खाँ और मुल्तान शामिल थे।[2]

पंजाब का इन छोटे–छोटे राज्यों में विभाजन सन् 1739 ई. में नादिरशाह के आक्रमण के पश्चात् और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों के कारण हुआ था। आरम्भ में ये राज्य अहमदशाह अब्दाली और उसके उत्तराधिकारियों के अधीन थे, परंतु पंजाब पर अफगानों के अधिकार का अन्त होने पर ये राज्य स्वतंत्र हो गये थे।

सिक्ख मिसलों ने मुगलों एवं अफगानों के विरूद्ध घोर संघर्ष के उपरोक्त राजनीति सत्ता प्राप्त की थी और पंजाब के भिन्न–भिन्न भागों में अपना राज्य स्थापित कर लिये थे। इस तरह पंजाब में अनेक निरंकुश राज्य स्थापित हो गये थे, जो न तो किसी केन्द्रीय शक्ति के अधीन थे और न ही किसी किस्म की संघीय व्यवस्था कायम कर सके थे।

महाराजा रणजीत सिंह के पंजाब का प्रमुख शासक बनने से पहले उनको इस प्रदेश के छोटे–छोटे राज्यों में बँटे होने का बहुत बड़ा लाभ प्राप्त हुआ। ये सब राज्य आपस में किसी किस्म का सहयोग नहीं रखते थे और इनका कोई अच्छा संगठन भी नहीं था। इनमें आपस में ईर्ष्या और द्वेष इतना ज्यादा था कि उनके लिये किसी भी कार्रवाई के लिये एकजुट होना बहुत कठिन था। महाराजा रणजीत सिंह के लिये यह बहुत अच्छा मौका था। उन्होंने अपनी कूटनीति से एक–एक करके उन सभी राज्यों को अपने अधीन करने की योजना बनाई। पहले धीरे–धीरे सभी मिसलों को हड़प करने के बाद उन्होंने बड़ी चतुराई से मुसलमान राज्यों के विरूद्ध अभियान चलाकर उनका अन्त कर दिया। उस समय पंजाब में आने वाले एक यात्री फैरैस्टर ने ठीक ही कहा था कि ''उस समय के पंजाब की राजनीतिक अवस्था किसी शक्तिशाली नेता के उभरने के लिये बहुत ही उपयुक्त थी, जो कि पंजाब में एक दूसरे के विरूद्ध काम कर रहे राज्यों को अपने अधीन करके वहाँ पर अपनी ध्वजा फहरा सके।''[3]

रणजीत सिंह अपने 27 वर्षीय पिता महासिंह की मृत्यु के पश्चात् 12 वर्ष की आयु में अपनी शुकरचकिया मिसल के प्रमुख बने। इसी के साथ उन्होंने उस समय के पंजाब की राजनीतिक स्थिति से लाभ उठाकर सारे पंजाब को अपने अधीन करने का महान कार्य शुरू कर दिया था। सन् 1798 ई. में जमान शाह ने पंजाब पर आक्रमण किया, परंतु अपने राज्य काबुल में आंतरिक गड़बड़ के कारण उसे तुरंत वापस लौटना पड़ा। वापसी के दौरान जमान शाह की कुछ तोपें झेलम नदी में गिर गयीं। रणजीत सिंह ने उन्हें निकलवाकर जमानशाह को भेज दिया। इससे वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने रणजीत सिंह को लाहौर पर अधिकार करने की आज्ञा दे दी। इस समय लाहौर के नागरिक लाहौर के भंगी शासक से असंतुष्ट थे। उन्होंने गुप्त रूप से रणजीत सिंह को लाहौर पर अधिकार करने के लिये निमंत्रण भेजा। रणजीत सिंह को यह निमंत्रण लाहौर के प्रसिद्ध मुसलमान चौधरियों की ओर से भेजा गया था। रणजीत सिंह रामनगर से सिपाही लेकर मजीठा की ओर चला तथा अपने मंतव्य और चस्लों को छिपाते हुऐ तथा रास्ते बदलते हुऐ पूर्व दिशा की ओर से लाहौर शहर में प्रवेश कर गया। शहर के चौधरियों के साथ रणजीत सिंह का पहले ही निश्चय हो चुका था कि रात को नगर के दरवाजे खोल दिये जायेंगे। किले में स्थित भंगी सरदार चेत सिंह ने रणजीत सिंह का असफल विरोध किया और रणजीत सिंह का लाहौर पर नैतिक और वास्तविक अधिकार हो गया। लाहौर पर अधिकार का स्पष्ट अर्थ था कि रणजीत सिंह न केवल पंजाब के प्रमुख शहर बल्कि पंजाब के परम्परागत राजनीतिक केन्द्र पर अधिकार करने में सफल हो गये थे। इस तरह उनके उत्थान का प्रारम्भ हुआ और यह स्पष्ट हो गया कि पंजाब में अपना राज्य स्थापित करने में उसको सबसे अधिक अधिकार प्राप्त हो गया।

लाहौर पर रणजीत सिंह का अधिकार पंजाब के दूसरे सिक्ख सरदारों और मुसलमान शासकों के लिये चेतावनी की तरह था। सभी ने इसे अपने लिये खतरा महसूस किया। उस समय के पंजाब के चार प्रसिद्ध शासकों, यथा– गुजरात का साहब सिंह भंगी, जस्सा सिंह रामगढ़िया, वजीराबाद के जोध सिंह और कसूर के शासक निजामुद्दीन ने मिलकर रणजीत सिंह के विरूद्ध एक संघ बना लिया। अमृतसर के गुलाब सिंह भंगी इनके नेता थे। सन् 1800 ई. में दोनों ओर की सेनाएं भसीन में टकरा गई परंतु छोटी मोटी भिड़ंतों के अलावा कोई निर्णायक युद्ध नहीं हो सका। इसी बीच संघ के सरदारों में आपसी ईर्ष्या के कारण फूट पड़ गई और गुलाब सिंह भंगी की मृत्यु हो गई, जिससे यह संघ और विरोध छिन्न–भिन्न हो गया। रणजीत सिंह की स्थिति बहुत चिंतनीय थी, क्योंकि अभी तक उनकी शक्ति बहुत सीमित थी तथा कोई सदस्यता देने वाला भी नहीं था; परंतु उनका भरोसा अपनी चतुराई पर था, जिससे वह उस संघ को तोड़ने में सफल रहे।[4]

भसीन विजय के बाद सन् 1801 ई. में रणजीत सिंह ने लाहौर में अपना राज्याभिषेक कराया तथा सरकार की साधारण सी उपाधि धारण की। उन्होंने अपनी मुद्राओं पर अपने नाम के स्थान पर गुरुनानक और गुरु गोविन्द सिंह का आशीर्वाद अंकित करवाया। राज्याभिषेक के उपरान्त उन्होंने अपने आसपास के छोटे–छोटे राज्यों के विरूद्ध अभियान आरम्भ किये। सबसे पहले उन्होंने जम्मू पर अपना अधिकार स्थापित किया। वहाँ से लौटते समय नारोवाल और मीरोवाल पर अधिकार किया और अकालगढ़ के सरदार दलसिंह को पराजित किया। इसके बाद उन्होंने अपने प्रतिद्वंद्वियों और प्रसिद्ध विद्रोहियों के विरूद्ध अभियान किये। सरदार फतेह सिंह कालेयांवाला को काफी सेना के साथ निजामुद्दीन के विरूद्ध भेजा। उसने समर्पण करके सुलह कर ली। गुजरात के साहिब के विरूद्ध भी अभियान सफल रहा, क्योंकि साहिब सिंह राज्य छोड़कर भाग गया। कपूरथला के फतेह सिंह आहलूवालिया को रणजीत सिंह ने बड़ी चतुराई से

अपना मित्र बना लिया। इस मित्रता से रणजीत सिंह न केवल एक तरफ से निश्चिन्त हो गया, बल्कि उसे एक ऐसे व्यक्ति की सेवाऐं भी प्राप्त हो गईं, जो कि सिक्खों में अपनी ईमानदारी के लिये विख्यात था। इसके परिणामस्वरूप ही रणजीत सिंह सारे पंजाब को अपने अधीन करने की रणनीति को अधिक तेजी से चला सके। दोनों मित्रों ने साधन इकट्ठे किये। इस तरह पंजाब में शुकरचकिया, कन्हैया और आहलूवालिया मिसलों की एकता स्थापित हो गई। इसके बाद रणजीत सिंह ने फतेह सिंह के साथ मिलकर उत्तर–पश्चिम की ओर अभियान किया तथा उसका, चिन्यौट आदि को जीतकर अपने राज्यों में मिला लिया।

रणजीत सिंह कसूर को अपने लिये खतरा समझते थे। यह लाहौर से केवल 20 मील दूर था। यहाँ का शासक उनके विरूद्ध पहले थी संघर्ष कर चुका था। अब रणजीत सिंह ने कसूर के पठान शासक पर इल्जाम लगाया कि उसने सुकरचकिया ऊँटों पर कब्जा कर लिया था। कसूर के शासक ने बड़ी रकम नजराने के रूप में देकर अपनी जान छुड़ाई।

लाहौर के आस–पास के इलाके को अपने अधीन करने के बाद रणजीत सिंह ने जालन्धर दोआब की ओर बढ़ना शुरू किया। इस क्षेत्र पर उसके अभियान का उद्देश्य धन और कब्जा दोनों था। क्योंकि यह क्षेत्र पंजाब का सबसे उपजाऊ क्षेत्र माना जाता था। जालन्धर दोआब पर अधिकार करके उसने उसमें से फगवाड़ा का क्षेत्र फतेह सिंह आहलूवालिया को दे दिया तथा साहीवाल एवं झंग पर आक्रमण करके और उसे जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। इन क्षेत्रों पर आधिपत्य स्थापित करने के बाद रणजीत सिंह रावलपिण्डी की ओर पोटवार प्रदेश की तरफ बढ़े। उन्होंने झेलम, चिनाब और रावी नदियों के बीच के दोआब–क्षेत्रों को अपने अधीन कर लिया। संसार चन्द्र और नूरपुर के राजा ने रणजीत सिंह की सास सदाकौर के विरूद्ध अभियान करके उसको पराजित कर दिया था। रणजीत सिंह अपनी सास की सहायता के लिये कांगड़ा के पहाड़ी क्षेत्रों की ओर गये और संसारचन्द्र को पराजित करके उससे बजवाड़ा प्राप्त कर लिया।

पूरब एवं पश्चिम में सुरक्षा प्रबंध करने के पश्चात् रणजीत सिह ने सन् 1803 ई. में पंजाब में मुसलमानों के सबसे बड़े राज्य मुल्तान की ओर ध्यान दिया। रणजीत सिंह को यह एहसास था कि वह एक आक्रमण में मुल्तान जैसे बड़े राज्य को अपने अधीन नहीं कर सकेगा, इसलिये उसने यह नीति अपनाई कि उसको धीरे–धीरे कमजोर कर दिया जाय और वहाँ से धन प्राप्त करके अपनी शक्ति बढ़ा ली जाये। आरम्भ में उसने यह उचित समझा कि नवाब को अपनी सम्प्रभुता मानने पर विवश किया जाय। रणजीत सिंह ने अपने प्रथम मुल्तान अभियान में धन प्राप्त करने के अलावा न तो ज्यादा देर ठहरना उचित समझा, और न ही अपनी शक्ति को इस कार्य में लगाया। वह यह भी नहीं चाहता था कि सब मुसलमान राज्य उसके विरूद्ध हो जायें और कोई संघ या गुट का निर्माण कर लें।[5]

अमृतसर सिक्खों के लिये बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। यह न केवल धार्मिक केन्द्र है, बल्कि सिक्ख गुरुओं ने इसे व्यापारिक केन्द्र भी बनाया था; परंतु अमृतसर की विशेष स्थिति यह भी थी कि इस धर्म स्थल पर बहुत सी सिक्ख मिसलों का साझा अधिकार समझा जाता था।[6] रणजीत सिंह ने अमृतसर को अपने अधीन करने के लिये बड़ी चतुराई से अभियान किया। वह नहीं चाहता था कि सभी सरदारों को अपने अधीन कर लिया जाए। इसलिये उसने अमृतसर को अपने अधीन करने में जल्दबाजी नहीं की। उस समय अमृतसर पर मुख्यतः भंगी मिसल का अधिकार था तथा गुलाब सिंह भंगी की मृत्यु के बाद उसके अल्पवयस्क पुत्र गुरदित्त सिंह के अधीन समझा जाता था, परंतु वास्तविक शासन प्रबंध गुलाब सिंह की विधवा माई सोखां के हाथ में था। रणजीत सिंह ने उसके कुछ कर्मचारियों में फूट डलवाकर अपने लिये निमंत्रण प्राप्त किया। इसके

बाद मुख्य अधिकारियों और कर्मचारियों से मिलकर योजना बनाई गयी तथा रणजीत सिंह ने अमृतसर में लोहागढ़ की तरफ से प्रवेश किया। अमृतसर का यह क्षेत्र फतेह सिंह आहलूवालिया के नियंत्रण में था। भंगियों के किले को घेर लिया गया। तथा उन्होंने किले को छोड़ दिया। रणजीत सिंह ने जोध सिंह रामगढ़िया के माध्यम से माई सीखां को प्रेरति कराया गया कि वह जागीर प्राप्त करके अमृतसर छोड़ दे। अमृतसर को अपने अधीन करने से शहर और किले पर रणजीत सिंह का अधिकार हो गया। रणजीत सिंह ने प्रसिद्ध 'भंगियों की तापे' भी प्राप्त की। अमृतसर की विजय के बाद रणजीत सिंह को प्रसिद्ध निहंग अकाली फूला सिंह का भी समर्थन प्राप्त हुआ। अपनी विजय के बाद रणजीत सिंह ने हाथी पर चढ़कर शहर में प्रवेश किया और सोने एवं चांदी की वर्षा की। नागरिकों ने उसका हर्षोल्लास के साथ स्वागत किया। रणजीत सिंह ने दरबार साहिब के सरोवर में स्नान किया।

अमृतसर को अपने अधीन करने के पश्चात् रणजीत सिंह ने मुल्तान की ओर अभियान की शुरूआत की, परंतु रास्ते में ही उसको सूचना मिली कि मराठा सरदार जसवन्त राव होल्कर अमृतसर आया है और अंग्रेज सेनापति लार्ड लेक उसका पीछा कर रहा है। इस संकट की स्थिति का सामना करने के लिये रणजीत सिंह तुरंत वापस लौटा। होल्कर ने इससे अनुरोध किया कि वह उसके साथ मिलकर अंग्रेजों के विरूद्ध युद्ध करे, परंतु रणजीत सिंह ने उसे उचित नहीं समझा। रणजीत सिंह ने 1805 ई. में इस विषय पर गुरमत्ता समागम भी बुलाया।[7] रणजीत सिंह ने होल्कर को बताया कि सिक्खों में प्रथा है कि किसी महान निर्णय को करने से पहले ग्रंथ साहिब के सामने हाँ और ना कि दो पर्चियाँ डालकर आदेश प्राप्त किया जाता है और इस विषय में ग्रंथ साहिब से अनुमति प्राप्त नहीं हुई है। वास्तव में रणजीत सिंह अंग्रेजों की शक्ति से प्रभावित होकर उनके विरूद्ध कोई झगड़ा नहीं करना चाहते थे। उनका राज्य अभी पूरी तरह से स्थापित नहीं हुआ था और किसी प्रकार के संघर्ष में पड़ने से सभी सरदार उसके विरूद्ध उठ खड़े होंगे। होलकर ने उनको बहुत ताने भी दिये, लेकिन फिर भी रणजीत सिंह ने उसको पंजाब से चले जाने को मजबूर किया। जनरल लेक के पंजाब से लौटते समय अंग्रेजों और रणजीत सिंह एवं फतेह सिंह अरहलूवालिया के बीच संधि हुई, जिसमें एक दूसरे को आश्वासन दिया गया कि वह एक–दूसरे के इलाके और मामले में हस्तक्षेप नहीं करेंगे तथा एक–दूसरे के मित्र बने रहेंगे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Chhabra, Dr. G.S., Advanced History of the Punjab; Vol. I, II
2. Singh, K. A History of the Sikhs, 2 Vols. Princeton, 1963-66.
3. Grewal, J.S. The Sikhs of the Punjab, the new Cambridge History of India, Vol. 2, 3. Cambridge, 1990
4. Alam. M.., The crisis of empire in Mughal North India : Awadh and Punjab, 1986, Delhi.
5. Major, A.J. Return to empire : Punjab under the Sikhs and British in the Mid-Nineteenth Century, New Delhi 1996.
6. Oberoi, H. The construction of Religious Boundaries : Culture identity, and diversity in the Sikh tradition, Chicago, 1994.
7. McLeod, W.H., The evolution of the Sikh Community, Oxford, 1976.

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

स्त्री जीवन एवं उनकी वैवाहिक परिस्थिति

डॉ0 भावना सिंह शाक्य
असिस्टेंट प्रोफेसर
राष्ट्रीय रक्षा अकादमी, खड़कवासला, पुणे

विवाहोपरान्त पति अथवा पत्नी में कौन अपने जन्म के परिवार को छोड़े, यह प्रश्न विभिन्न समाजों की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं को घोषित करने वाले नियम होते हैं। इस संदर्भ में बहुत कुछ सम्पत्ति के उत्तराधिकार का नियम और सम्पत्ति का स्थान महत्वपूर्ण निर्धारक कारक होते है। मातृवंशीय समाजों में सम्पत्ति का उत्तराधिकार स्त्रियों का होता है। इसी प्रकार से पितृवंशीय समाजों में पुरुष सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होते हैं और उनके द्वारा अधिकृत अचल सम्पत्ति उनके जन्म स्थान में ही अवस्थित होती है। अतः सम्पत्ति की व्यवस्था के लिए उनका परिवार छोड़कर जाना अनुपयुक्त होता है किन्तु सम्पत्ति की व्यवस्था एवं बच्चों की समुचित देखभाल के लिए किसी सीमा के बाद किसी न किसी पुरुष का सहयोग भी आवश्यक होता है। इसलिए मातृवंशीय परिवारों में स्त्री के भाइयों पर यह दायित्व आ जाता है। क्योंकि मातृवंशीय परिवारों में पति पूर्णकालिकरूप से पत्नी गृह में पत्नी के साथ बहुत कम रह पाता है।

भारतीय समाज में पति को परमेश्वर, मालिक या स्वामी कहा जाता है। उसे पत्नी का रक्षक या पालनकर्त्ता भी कहा जाता है। पत्नी का उल्लेख बहुधा सम्पत्ति या सामान के रूप में आता है। कहीं भी संसाधनों पर स्त्री का पूरा हक नहीं होता। जहाँ पिता के खानदान में अपने वंश की वृद्धि और निरन्तरता बनाये रखने के लिए स्त्री की स्थानांतरता और गैर-क्रियात्मक प्रकृति पर जोर दिया जाता है, वहीं पति के यहाँ उसकी मात्र, वाहक या वंशवृद्धि के माध्यम की भूमिका का जिक्र किया जाता है। इस सामाजिक व्यवस्था में भाई और बहन, पति और पत्नी के रूप में स्त्री और पुरुष की स्पष्ट रूप से असमान अधिकार स्थिति और भूमिकाएँ तय की गयी।

इस तरह पति के घर में रह रही पत्नी के यौनत्व और प्रजनन की क्षमता पर ही पुरुष का हक नहीं बनता बल्कि उसकी उत्पादक क्षमता और श्रमशक्ति पर भी बनता है। पति को उसके श्रम और उत्पादन पर भी नियंत्रण रखने का अधिकार है। उत्पादन की प्रक्रिया में स्त्री जितना वास्तविक योगदान देती है, उससे उसकी हिस्सेदारी का मूल्य नहीं तय होता, क्योंकि जहाँ तक उत्पादन के संसाधनों का संबंध है, वह इस मामले में निर्भर रहती है और एक तरह से पारिवारिक मजदूर की तरह काम करती है। विधि और प्रथा दोनों ही दृष्टियों से एक वैवाहिक घर बसाना पति का अधिकार है आश्रय के मामले में भी उसे निर्भर माना जाता है। यह अवधारणा जन मानस में गहरे पैठी हुई है कि खेती और दूसरी उत्पादक गतिविधियों में स्त्री की भूमिका सिर्फ सहायक की समझी जाती है। सैद्धान्तिक रूप से एक स्त्री का अपनी कमाई पर कोई हक नहीं है क्योंकि वह अपने पुरुष के घर में रहती है और उसका कमाया खाती है, हालाँकि इस दौरान वह खुद भी कमाती है। यह तर्क वहाँ भी काम करता है, जहाँ स्त्री दिहाड़ी पर काम करती है। यह ऐसी व्यवस्था है जिसमें स्त्री उत्पादक संसाधनों से कट जाती है, उसका अपनी श्रमशक्ति पर कोई नियंत्रण नहीं रहता और अपने बच्चों पर अधिकार से भी वह वंचित रहती है।

विवाह की स्थानीयता से जेंडर-संबंध किस तरह से प्रभावित होते हैं, ये जानना भी महत्वपूर्ण होगा। यूँ तो विवाह लगभग सभी के लिए अनिवार्य आवश्यकता जैसा है, परन्तु पुरुषों की तुलना में औरतों के लिए यह कहीं अधिक अनिवार्य है जिन समाजों में संयुक्त परिवार व्यवस्था अधिक प्रचलित है, वहां स्त्रियों के लिए विवाह अधिक अनिवार्य है। वैवाहिक संबंध वृहत्तर सगोत्रीय संबंधों में बंधे होते हैं, विशेषकर विवाह से बनने वाले प्रत्यक्ष–संबंधों में। इसके साथ-ही, पति-पत्नी की व्यक्तिगत विशिष्टताएँ, मसलन तुलनात्मक उम्र, शैक्षणिक आय स्तर, परिवार में वरिष्ठता अंतःपारिवारिक संबंधों को आकार देती है और अपनी ससुराल में स्त्री की हस्तक्षेप क्षमता के लिए महत्वपूर्ण होती है।

यह तर्क दिया जाता है कि जो स्त्री अपने रिश्तेदारों में ही विवाह करती है उसकी स्थिति उस स्त्री की तुलना में काफी बेहतर होती है जिसे विवाह के बाद अपने परिवार से सारे संबंध तोड़कर अजनबी परिवार में रहने

के लिए जाना पड़ता है। भारत में ही उत्तर-दक्षिण विभेद का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि अधिकांश दक्षिणी जातियों में विवाह के लिए वास्तविक या नजदीकी संबंध के लड़के या लड़कियों को प्राथमिकता दी जाती है। जब वास्तविकता मेंऐसा नहीं हो पाता है तो महिलाओं को ऐसे परिवारों में विवाह करने की प्रवृत्ति ज्यादा दिखाई देती है। जिनसे लड़की के परिवार की रिश्तेदारी हो या यहाँ के सदस्यों को लड़की जानती हो और जो परिवार समान हैसियत वाला है। इसके उलट, उत्तर के हिन्दुओं में सगोत्रीय विवाह पर एक परंपरागत प्रतिबंध रहा है। जाति के भीतर ही वैवाहिक संबंधों के फैलाव पर, और ऊँची हैसियत वाले परिवार में लड़की ब्याहने पर जोर रहता है। इस अंतिम बिन्दु से दुल्हन-देने और दुल्हन लेने वालों के बीच की श्रेणी बद्धता भी झलकती है जिससे पति और पत्नी के बीच श्रेणीबद्धता को बल मिलता है। विवाह की स्थानीयता का पहलू परिवार के भीतर स्त्री की हस्तक्षेप क्षमता और दमनकारी संयुक्त परिवार व्यवस्था से निकल सकने की क्षमता को निर्धारित करते है और इस प्रकार इन आयामों से संयुक्त परिवार ज्यादा आम है। यहाँ गोत्र से बाहर शादी (हिन्दुओं में) और पति के घर आकर रहने की प्रथा भी ज्यादा प्रचलित है। इससे स्त्री अपने मूल परिवार से भौगोलिक रूप से दूर हो जाती है और पति के घर में समाहित हो जाती है और यह प्रक्रिया वर्ग, जाति और संयुक्त परिवार व्यवस्था के बढ़ने के साथ सघनतर होती जाती है वह अपरिचितों के बीच अपने जीवन को नये सिरे से शुरु करती है और उसके आसपास बिरले ही कोई अपने रिश्तेदार होते है जिनसे वह आवश्यकता पड़ने पर कोई भौतिक था नैतिक सहायता माँग सके। पुरुष के पितृवंशीय नातेदार ही होते हैं जो नवदपंति के दैनिक जीवन को आकार देते हैं और घर के तमाम मामलों में दखल रखते हैं। तमिलनाडु के गैर ब्राह्मण परिवारों में यह हैसियत पत्नी के नातेदारों के पास होती है। हालाँकि तमिलनाडु में भी "यदि कोई दाम्पत्य समस्या खड़ी होती है तो पुरुष के हित को ही ज्यादा तरजीह दी जाती है।"[1]

पितृवंशात्मकता समूह सदस्यता पहचान और सम्पत्ति उत्तराधिकार को परिभाषित करती है। परिवार एक पितृवंशात्मक वंश समूह होता हैं जिसका केन्द्रक पितृवंशात्मक ढंग से जुड़े पुरुष होते हैं– महिलाएँ अनिवार्य तो होती है मगर उनकी उपस्थिति अस्थायी और गौण होती है। बेटियाँ अपने वैवाहिक परिवार में चली जाती है और बहुएँ आ जाती है। अधिकार और हित सदस्यता पर निर्भर होते हैं, जिनको अस्थायी और गौण रूप से उपस्थित, स्त्री के पास संपत्ति पर पहुँच नहीं होती है और उनकी निष्ठाएँ दोनों परिवारों के प्रति रहती है मायके के प्रति भी और ससुराल के प्रति भी विवाह के बाद पति के घर जरूर रहने और स्त्री के आवासीय व्यवहार से भी अस्थायित्व, अस्पष्ट सदस्यता और तत्संबंधी अधिकार पुर्नस्थापित भी हो सकते हैं।[2] (पालड़ीवाला 1990 : 1991)

यह जानना जरूरी है कि महिला के लिए शादी के बाद पति के पिता के घर में रहने जाने का अर्थ यही निकलता है कि उसके लिए परिवार की संकल्पना लगातार अस्पष्ट रहती है और उसके अधिकार कभी साफ तौर पर परिभाषित नहीं होते। काफी समय तक नई बहुएँ और युवा शादीशुदा महिलाएँ अपने मायके और ससुराल के बीच आती-जाती रहती है। यह शायद उनके जीवन का सबसे कठिन दौर होता है। जब युवती होने के नाते उन्हें बिल्कुल अजनबियों के बीच अपना घर बनाना पड़ता है। हालाँकि, इसमें आ रहे बदलावों का आकलन करना मुश्किल है, लेकिन यह दिखता है कि आने-जाने का सिलसिला गांवों में काफी प्रचलित है। इसका इस बात से ताल्लुक दिखता है कि आज भी शादी की उम्र काफी कम होती है। गांवों के बीच दूरियाँ कम हुयी है, सड़कों और यातायात की बेहतर सुविधाएँ उपलब्ध हुयी है, प्रवासी पति अनुपस्थित होते हैं, खासकर खेती में बिन पैसे के पारिवारिक श्रमिकों की बढ़ती माँग होती है। कुनबे से जुड़े विभिन्न हिस्से युवा महिलाओं पर अपना अधिकार जताते हैं, जो इस गाँव से उस गाँव जाती है, जहाँ और जैसे हो काम करती है और इस तरह किसी खास परिवार के लिए उनका योगदान कम होता है। महिलाएँ खुद भी भौतिक और भावनात्मक सहारे के लिए अपने जन्म के घर के बंधनों/रिश्तों को बनाये रखना चाहती है। महिला के लिए आर्थिक और सामाजिक विकल्पों की गैरमौजूदगी का मतलब होता है पारिवारिक रिश्तों पर उनकी निरन्तर निर्भरता। वे इस बात को अच्छी तरह पहचानती हैं कि ये रिश्ते ही उनका एकमात्र संसाधन और सुरक्षा है।

(1) पितृस्थानीय विवाह और उसका स्त्री जीवन पर प्रभाव

आदिम समाज में औरत दान की वस्तु थी, पारंपरिक विनिमय का एक माध्यम। सभ्यता के विकास के साथ विवाह संस्था ने अनुबंध का आकार ग्रहण किया। हम देखते हैं कि स्त्री विरासत में अपना हक पाती है और व्यक्ति के हिसाब से एक सामाजिक स्थान भी, किन्तु दहेज और विरासत उसे परिवार में गुलाम की स्थिति में ही रखते हैं। अनुबंध ससुर और दामाद के बीच होता है, पति और पत्नी के बीच नहीं। युवा लड़की के लिए वरण की स्वतंत्रता हमेशा ही सीमित रखी जाती रही है। विवाह एक स्त्री के लिए एक ऐसा अनिवार्य सेवा-कार्य है

जिसके बदले पुरुष स्त्री को उपहार और निवास तथा भरण-पोषण की सुविधा देता है। कर्तव्यपालन के लिए स्त्री को मिले अधिकार वास्तव में प्रभाव के लिए एक नैतिक बंधन और इकरार साबित होते थे।

समाज में लड़की के लिए विवाह का अर्थ हुआ समाज से एकात्म होना। परित्यक्ता लड़की समाज में एक निकृष्ट पदार्थ के रूप में ही देखी जाती है। अभिभावकों द्वारा लड़की को विवाह में किसी दूसरे को दान दिया जाता है जबकि लड़का पत्नी को ग्रहण करता है। विवाह के बाद पुरुष का धर्म और वर्ग, सब कुछ औरत को स्वीकार करना पड़ता है। वह पुरुष के परिवार में शामिल हो जाती है। वह पुरुष की अर्धांगिनी बन जाती है। जहाँ भी पुरुष को काम करना है, वहीं उसको भी जाना पड़ता है। विवाह के बाद औरत प्रायः निर्णायक रूप से अपने अतीत के संबंधों को तोड़ लेती है। अब वह पति की दुनिया से संबंधित होती है और अपना व्यक्तित्व, अपना कौमार्य तथा जिंदगी भी पति की सेवा में अर्पित कर देती है। परंपरा और समाज उससे इन बंधनों के निर्वाह की आशा करते हैं, आज्ञा देते हैं। यह पिता के घर में आश्रिता है और फिर उसके किसी अजनबी घर में जाना पड़ता है। इस स्थानान्तरण में वह शारीरिक-पारिश्रमिक सुविधाओं के बदले भरण-पोषण की गारंटी पाती है। पति को दिया गया हुआ प्रेम एक प्रकार की सेवा है, जिसको ग्रहण करने के बदले में वह पति से आर्थिक संरक्षण पाती है। उसका शरीर पति खरीदता है। औरत के लिए स्वयं अपना शरीर एक पूँजी है जिसका वह उपयोग करती है।

आइये, अब उन उपन्यासों की चर्चा की जाय जिनमें स्त्रियाँ अपने ससुराल में रहती है। उनका स्वयं का अस्तित्व और ससुराल के बीच के तनाव और सामंजस्य को वे कैसे साधती है यह जानना दिलचस्प होगा। कैसे ये स्त्री पात्र दाम्पत्य की सीमा के कारण अपने कैदखाने को स्वर्ग बनाने की जिम्मेदारी ले लेती है। वह गुलाम होकर स्वामित्व पाना चाहती है। मानव–समाज का प्रतिनिधि उसका पति और बच्चा उसके पास होता है जो उसको सम्पूर्ण भविष्य प्रदान करता है। यही चारदीवारी उसका घर हो जाती है। ससुराल के शासनतंत्र में एक स्त्री कैसे शासित होती है, मैं यहाँ इसे ही समझने का प्रयास करूँगी।

मित्रों और निर्मला

मित्रो मरजानी की नायिका मित्रो अपनी माँ का घर छोड़कर पति सरदारी के साथ उसके परिवार में आकर रहती है। इसके घर में सास-ससुर, जेठ-जेठानी, देवर-देवरानी और ननद सभी हैं। कुल मिलाकर यही एक चयनित जिसमें भारतीय परिवार की पूरी छवि उभरकर आती है। दरअसल मित्रों इतनी तेज-तर्रार स्त्री है कि उसके सास-ससुर तक उसको दबा नहीं पाते हैं। बहुओं पर शासन करने वाली सास धनवंती इस 'तत्ती मित्रो' से डरती है। अपनी ही रौ में बहती और उड़ती रहती है मित्रों। उसकी जेठानी उसे ससुराल के नियमों से वाकिफ कराती और चेतावनी देती रहती है, "देवरानी, बहू-बेटियों के लिए तो घर-गृहस्थी की रीति ही लच्छमन की लीक। जाने-अनजाने फलांगी नहीं कि .....।"[3] यह असुरक्षा बोध ही एक स्त्री को बधिया बनाता रहता है। उसकी वास्तविकता उसके घर के अन्दर केन्द्रित हो जाती है और बाहरी दुनिया एक प्रकार से उसके लिए समाप्त हो जाती है या कर दी जाती है।

मित्रो अपनी हर हरकत से ससुराल के नियमों को ठेगां दिखाती रहती है। उसके चरित्र पर जब शक किया जाता है तो परिवार के पुरुष सदस्यों के बीच उसे बुलाकर पूछताछ की जाती है लेकिन वह अपने स्वभाव से बाज नहीं आती है और देखिए – "सुहाग सास से ढुक बैठी तो ओठों ही ओठों में मुस्कुरा मित्रो ठसक से घरवाले के पास जा बैठी। धनवंती ने बारी-बारी सबकी ओर ताका और बात हिलाने को कहा – सुमित्रारानी, माथे का कपड़ा तनिक नींवा कर ले बेटी! तेरे ससुर जो बैठे हैं।"[4] भारतीय समाज में बहू को सिर ढ़ककर रहने का नियम लगभग हर समाज में सर्वमान्य रूप से प्रचलित है। पुरुष सदस्यों के सामने ये अनिवार्य है चाहे एक बार महिला सदस्यों के सामने न हो। आज भी यह उम्मीद की जाती है कि बहू को बहू अर्थात सिर पर पल्ला रखके ही रहना चाहिए। घर के बाहर वह कदम नहीं रख सकती है। किसी और पुरुष से भी बात करने पर मनाही होती है। जैसे उसका पति सरदारी कहता है, "जीते जी कौन भड़ुवा कहेगा कि बहूटी उसकी नाक -तले भाड़ों में मुँह मारती है?"[5] इस संदर्भ में रमावाई के विचार भी समझे जा सकते हैं, "स्त्रियों बाला घर का भाग घर के पिछवाड़े में होता है, जहाँ हमेशा अंधेरा बना रहता है, वहाँ बालिका बहू को हमेशा के लिए सीमित रखा जाता है, वह अपने पति के घर नहीं बल्कि ससुर के घर में प्रवेश करती है। इस तरह सदस्यों के बीच सबसे निचले स्थान पर चली जाती है। नई बहू की उम्र को तोड़ना इस नये आवास के अनुशासन का अनिवार्य भाग है। वह कभी जोर से हंस बोल नहीं सकतीं। वह पिता के सामने या उनसे, जेठ से, अपने पति के दूर के पुरुष रिश्तेदार से बात नहीं कर सकतीं, जब तक कि बात करने की इजाजत न दी जाए। उत्तरी भारत में सभी औरतें घूँघट रखती

हैं, युवा बहूएँ या औरतें घूँघट से अपना मुँह ढँके रहती है। जब कभी किसी कमरे में वह होती है और इस कमरे में परिवार के बुर्जुग स्त्री-पुरुष या अन्य कोई भी आ जाता है तो वह सम्मान प्रदर्शित करने के लिए दूसरे कमरे की ओर दौड़ जाती है।"[6] ये सब बहू होने की शर्ते-नियम है।

ससुराल की शासन व्यवस्था में सास का बहुत अहम रोल होता है। बहू और सास के बीच के संबंधों का ताना-बाना भी बहुत जटिल होता है। सास की भूमिका सेनापति की तरह होती है जो अपने मातहत सैनिकों को वश में रखती है। सास-बहू के बीच के संबंधों का ग्राफ बहुत शीघ्रता से ऊपर-नीचे भी होता रहता है। मित्रो को डाँटने वाली सास सोचती है, "धनवती का जी भर आया। सदा जिसे कोसती-फटकारती हूँ, उसने सास का साथ तो दिया। सिर हिला बोली – बहूटियों, मेरे कहे – सुने की मुझे माफी दो। मैं न जानती थी कि मैं उस घर की माँ नहीं टहलन हूँ.... टहलन।"[7] दूसरी तरफ ससुर की भूमिका निर्णायक की होती है। परिवार को चलानेवाले के सामने बहूओं की मजाल नहीं होती कि कुछ बोल भी सकें। मित्रो अपने ससुर की अदालत में जब पेश होती है और अपने बात-व्यवहार से ससुर को अपने पक्ष में कर लेती है और कहती है, "जानकर कि बाजी उसके हाथ रही, मंझली ने झुक ससुर के पाँव छू लिए और लाड़ से कहा – पाँव पड़ती हूँ, बापू जी! आज जो ओट आपसे पायी हूँ वह मित्रो के लिए सुरगों से बढ़कर है।"[8]

पितृस्थानीय विवाह के अनुसार लड़की ससुराल के सदस्यों का अपना बना लेती है। उनको सेवा ही उसका प्रमुख कर्त्तव्य होता है देखें, "इस माया में लाख दुःख– सोग पर किए इसी की खट्टी कमाई बुढ़ापे में काम आती है। बहू को ही देखे, कहीं की बेटी, कहाँ जन्मी-पली और ब्याहकर किन बूढ़ों की सेवा में जुटी है सहसा बेटी जानकी की सूरत आँखों में घूम गयी। कल इस माँगन डोलती फिरती थी, आज किसी दूजे घर का चिराग बनी बैठी है।"[9] यही वजह होती है कि बहूओं को दूसरे घर में आने के बाद वहाँ सामंजस्य बैठाने में एक अच्छा खासा समय लगता है। इस संक्रमण की स्थिति को कहीं समझा जाता है और कहीं नहीं। समस्या तभी पैदा होती है जब ससुराल में बहू को दूसरे ग्रह के प्राणी के रूप में व्यवहार किया जाता है। इस संदर्भ में सुधा अरोड़ा अपने एक लेख में लिखती है, "आप अपनी पड़ोसन के घर जाते हैं, एक ही उम्र की दो लड़कियाँ हैं– एक अनब्याही बेटी है और एक ब्याहकर लाई बहू। दोनों के लिए अलग-अलग संबोधन है, अलग-अलग मापदंड है। बेटी 'संज्ञा' है जिसका एक नाम है। घर में एक बहू भी है जो नाम होते हुए भी 'यह-वह', इस-उस' के सर्वनामों से जानी जाती है। औसत मध्यवर्गीय भारतीय सास की त्रासदी ही यह है कि वह स्वयं जिंदगी भर औरत बनी रहती है, पर सास बनते ही अपना औरत होना भूल जाती है। जिन्हें अपना औरत होना याद रहता है, वे कभी अपनी बहू के प्रति अतार्किक नहीं होतीं, क्योंकि अन्ततः एक औरत ही दूसरी औरत की तकलीफ को सही परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने की दृष्टि रखती है।"[10]

जिन परिवारों में बहूएँ आ जाती है, उनमें केवल बहू के लिए ही नहीं बल्कि सास-ससुर और बेटे के बीच भी संबंधों में एक बड़ा परिवर्तन घटित होता है। बेटे तो लगभग दुविधा की स्थिति में फँस जाते हैं कि माँ-बाप की सुनें या पत्नी की। ऐसी स्थिति में माँ-बाप भी अपने को वेबस महसूस करते है, एक उदाहरण देखिए– "लड़के की वेबसी देख धनवन्ती को एकाएक ऐसा जान पड़ा कि वह माँ न हो कोई जल्लाद हो, जो हाथ में युद्ध की तेग लिए रह-रह बेटे को ललकारती तो अपने सबसे लाडले बेटे के लिए दुःख-दर्द से जी भर आया। भरा कण्ठ पुचकार कर कहा– गुल बेटा, इस बूढ़ी की सोच न कर! जिससे तेरी घरवाली को ठण्ड पड़े तू वही कर। धनवंती को न कुछ कहने को सूझा, न पूछने को। चोट खाई आँखों से इमदाद के लिए धनी की ओर देखा तो क्रोध और अपनापन से गुरुदास कई छन सर हिलाते रह गये। फिर काँपती आवाज में बोले– धनवन्ती कचहरी में कोई और नहीं, हम दोनों ही मुजरिम है।"[11] शायद यह एक ऐसा तनाव होता है जो संबंधों में आये परिवर्तन को स्वीकार न करने की वजह से है। समय और संदर्भ के अनुसार हर संबंध का गणित बदलता है। जो लोग यह नहीं समझ पाते हैं। उन्हें इसी तरह के दुःख होते हैं।

दूसरे उपन्यास निर्मला की पात्र निर्मला तो अपने से कई गुना ज्यादा उम्र के पति के साथ ब्याही जाती है। माँ के पास दहेज नहीं था देने के लिए इसलिए वह मानकर चलती है, "पैंतीस साल का आदमी बुड़ढ़ा नहीं कहलाता। अगर लड़की के भाग्य में सुख भोगना है, तो जहाँ जायेगी सुखी रहेगी, दुःख भोगना है, तो जहाँ जायेगी दुःख झेलेगी। हमारी निर्मला को बच्चों से प्रेम है। उनके बच्चों को अपना समझेगी।"[12] निर्मला का विवाह इस सुयोग्य वर के साथ कर दिया जाता है और जब वह ससुराल पहुँचती है तो उसकी ससुराल की स्थिति का वर्णन कुछ इस प्रकार है, "ससुराल आ गयी। वकील साहब का नाम था मुंशी तोताराम। साँवले रंग के मोटे-ताजे आदमी थे। उम्र तो अभी चालीस से अधिक न थी, पर वकालत के कठिन परिश्रम ने सिर के बाल पका दिए थे। व्यायाम करने का उन्हें अवकाश न मिलता था। यहाँ तक कि कभी कहीं घूमने भी न जाते, इसीलिए तोंद निकल

आयी थी। देह के स्थूल होते हुए भी आये दिन कोई न कोई शिकायत रहती थी। मंदाग्नि और बबासीर से तो उनका चिरस्थायी संबंध था। अतएव बहुत फूँक-फूँककर कदम रखते थे। उनके तीन लड़के थे। बड़ा मंसाराम सोलह वर्ष का था, मंझला जियाराम बारह और सियाराम सात वर्ष का। तीनों अंग्रेजी पढ़ते थे। घर में वकील साहब की विधवा बहन के सिवा और कोई औरत न थी। वही घर की मालकिन थी। उसका नाम था रुक्मिणी और अवस्था पचास से ऊपर थी। ससुराल में कोई न था। स्थायी रीति से यही रहती थीं।"[13]

निर्मला की पहले कहीं और शादी तय होती है लेकिन दहेज न देने की वजह से ये रिश्ता टूट जाता है। उन लोगों की कजूंस प्रवृत्ति को देखकर निर्मला की माँ सोचती है, "सचमुच यह तो प्रसन्न होने की बात है कि ऐसे कुपात्रों से संबंध नहीं हुआ, रंज की कोई बात नहीं। ऐसे कुमानुसों के बीच में बेचारी निर्मला की न जाने क्या गति होती। अपने नसीबों को रोती। जरा-सा घी दाल में अधिक पड़ जाता, तो सारे घर में शोर मच जाता, जरा खाना ज्यादा पक जाता, तो सास दुनिया सिर पर उठा लेती। लड़का भी ऐसा लोभी है। बड़ी अच्छी बात हुयी, नहीं बेचारी को उम्र भर रोना पड़ता।"[14] हर माँ -बाप शादी से पूर्व यह बात सुनिश्चित कर लेना चाहता है कि उसकी बेटी जिस घर में जाये वहाँ सुख-चैन से रह सके। उसे पराये घर तो भेजना दुनिया की रीति है ही। लेकिन कम से कम ऐसी जगह जाए जहाँ उसे सुख मिलें। दूसरी तरफ लड़की अपने घर परिवार को छोड़कर नये परिवार में जाने से डरती है। निर्मला सोचती है, "भाई-बहन, माता-पिता, सभी इसी भाँति मुझे भूल जाएगें, सबकी आँखे फिर जाएँगी, फिर शायद उन्हें देखने को भी तरस जाऊँ।"[15] निर्मला और उसकी छोटी बहन कृष्णा औरत के बेघर होने की त्रासदी पर आपस में बात करती हैं–

कृष्णा – तो क्या यह तुम्हारा घर नहीं है?

निर्मला – नहीं, मेरा घर होता तो कोई क्यों जबर्दस्ती निकाल देता?

कृष्णा – इसी तरह किसी दिन मैं भी निकाल दी जाऊँगी?

निर्मला – और नहीं क्या तू बैठी रहेगी! हम लड़कियाँ हमारा घर कहीं नहीं होता।

कृष्णा – चन्दर निकाल दिया जायेगा?

निर्मला – चन्दर तो लड़का है, उसे कौन निकालेगा?"[16]

स्त्री जीवन के इस विस्थापन को सीमोन ने भी इन शब्दों में लिखा है, "पितृ–गृह में पिता की सुरक्षा में वह विद्रोह करके कुछ न कुछ स्वतंत्रता पा लेती थी। अब उसकी शादी हो गयी। इसका भविष्य बन गया। अब और कोई दूसरा भविष्य नहीं आयेगा। अब पृथ्वी पर उसका यही जीवन और भाग्य है।"[17] स्त्री जीवन की नियति निर्धारित होती है। उसमें ज्यादा कुछ जोड़ने-घटाने के लिए नहीं होता है। उसके जीवन के लक्ष्य भी लगभग तयशुदा होते हैं। नये घर में एकाकी वातावरण में वह उस पुरुष के साथ बद्ध है जो उसके लिए अजनबी है। ऐसी ही स्थिति निर्मला अपने साथ भी महसूस करती है। एक तो उसका पति अजनबी इंसान है और दूसरा उम्र में भी पिता के समान है, देखिए, "लेकिन निर्मला को न जाने क्यों तोताराम के पास बैठने और हँसने-बोलने में संकोच होता था। इसका कदाचित यह कारण था कि अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर झुकाकर, देह चुराकर निकलती थी, अब उसकी अवस्था का एक आदमी उसका पति था। वह उसे प्रेम की वस्तु नहीं, सम्मान की वस्तु समझती थी। उनसे भागती फिरती, उनको देखते ही उसकी प्रफुल्लता पलायन कर जाती थी।"[18]

अधिकतर परिवारों में नयी बहू के आने के बाद घर का माहौल थोड़ा परिवर्तित हो जाता है। खासतौर से स्त्री सत्ता के बीच एक खींचतान शुरु हो जाती है। अगर परिवार में सास और ननद संचालन की स्थिति में होती है तो बहू के आने से उनको एक चुनौती मिलती है जिसे आसानी से सुलझाया नहीं जा सकता है। निर्मला के घर पहुँचते ही उसकी विधवा ननद की सत्ता डाँवाडौल हो जाती है और वह कहती है, "तो क्या लौंड़ी बनाकर रखोगे? लौड़ी बनकर रहना है, तो इस घर की लौंड़ी न बनूँगी। अगर तुम्हारी यह इच्छा हो कि घर में कोई आग लगा दे और मैं खड़ी देखा करूँ, किसी को बेराह चलते देखूँ, तो चुप साध लूँ, जो जिसके मन में आये करे, मैं मिट्टी की देवी बनी रहूँ, तो यह मुझसे न होगा। यह हुआ क्या, जो तुम इतना आपे से बाहर हो रहे हो? निकल गयी सारी बुद्धिमानी, कल की लौंडिया चोटी पकड़कर नचाने लगी?"[19]

इस सत्ता संघर्ष का कारण यह है कि परिवार की महिलाओं को तिहरी सत्ता के अन्दर काम करना पड़ता है जिसमें घर की सबसे वुजुर्ग महिला यानी घर के पुरुष मुखिया की पत्नी या माँ उनके पति और मुखिया

ये तीनों लोग शामिल रहते हैं। स्त्री-पुरुषों के बीच बचाव/परिहार (Avoidance) और पृथक्करण (Segregation) के नियमों के चलते प्राधिकार (Authority) की अलग मगर अंर्तगुथित सीमाएँ नजर आती हैं। व्यवहार में होता यही है कि पुरुष मुखिया का प्राधिकार उसकी उम्र और घर के रिश्ते-नाते के संबंधों या कुनबे की संरचना के जरिये तय हो। परिवार में सबसे बुजुर्ग महिला, जब तक वह सक्षम है, घरबार रोजमर्रा का खाना–पीना और पशुओं की देखरेख का जिम्मा सँभालती है। खेती के काम को लेकर पुरुषों के बीच, महिलाओं के बीच और या पुरुषों और महिलाओं के बीच मतभेद हो सकते हैं। काम के बारे में मनमुटाव आमतौर पर किये गये काम और उपभोग तक पहुँचने में महसूस की जा रही भिन्नता के संदर्भों में अभिव्यक्त होता है। 'घर के अन्दर काम' को लेकर विवाद महिलाओं के बीच के झगड़ों के रूप में प्रगट होता है भले ही पुरुषों के बीच व्याप्त मतभेद भी उसमें अन्तर्निहित रहते हों। घरों के अन्दर बँटवारे के पीछे महिलाओं के बीच के आपसी झगड़े मुख्यतः जिम्मेदार होते हैं। हालाँकि काम के बँटबारे या उपभोग को लेकर महिलाओं के बीच होने वाले कई सारे झगड़ों में परिवार के पुरुष सदस्यों में घर के बजट, सम्पत्ति पर नियंत्रण और घर की रणनीति आदि को लेकर होने वाले विवादों का प्रतिबिम्वन दिखता है।

एक तथ्य और भी महत्वपूर्ण है कि बेटियों और बहनों को, जिन जातियों में भी श्रम की कीमत समझी जाती है, दूरगामी संसाधन के बजाय अब व्यक्तिगत बोझ के तौर पर समझा जाने लगा है। यह मामला दहेज के बढ़ते बोलवाले और ज्यादातर जातियों में अन्य रस्मी उपहारों के बढ़ते प्रचलन से जुड़ा है। सभी परंपराओं के चलते अपने जन्म के घर में महिलाओं के अधिकारों पर असर पड़ा है। बेटी के लिए दहेज तथा अन्य उपहार उसके जन्म के घर की आर्थिक स्थिति को कमजोर करते हैं। बेटी को उपहार देने वालों की आर्थिक प्रगति के बीच अंतर्विरोध बढ़ता जा रहा है। अपने सामाजिक ताने-बाने और अपने रिश्ते-नातों के प्रति अपने कर्तव्यों की पूर्ति के जरिये सामाजिक प्रतिष्ठा हासिल करने के बरअक्स इसे बिल्कुल अपने नज़दीकी घरों तक यहाँ तक कि स्वयं अपने तक सीमित रखने के बीच का अंतर्विरोध बढ़ता ही जा रहा है।

हम देखते हैं कि भारतीय समाज में पितृस्थानीय विवाह का ही प्रचलन है। लड़कियों को इसी तरह से पाला-पोसा जाता है कि उन्हें दूसरे घर जाकर ही रहना है। दो घरों के बीच में स्त्री की आर्थिक, सामाजिक, और राजनीतिक स्थिति निर्धारित होती है। जैसा मायका होगा लगभग वैसा ही ससुराल उसे मिलता है। इन दो परिवारों के वह बीच बहुत हद विनियम वस्तु के रूप में ही व्यवहृत होती है। इस सत्ता समीकरणों में एक स्त्री मोहरा से ज्याद की हैसियत नहीं रखती है।

(2) मातृस्थानीय विवाह और वैवाहिक जीवन

सामान्यतया मातृवंशीय समाजों में पत्नी अपने ही घर में रहती है तथा उसका पति पूर्णकालिक रूप से अथवा समय -समय पर आगन्तुक के रूप में आकर अपनी पत्नी के साथ निवास करता है। इस नियम को मातृस्थानीयता (Matrilocatism) तथा इस प्रकार के विवाह को मातृस्थनिक विवाह (Metrilocate Marriages) कहते हैं।

प्राचीन समाज में मातृ-अधिकार के अनुसार, यानी जब तक कि वंश केवल स्त्री–परंपरा के अनुसार चलता रहा और गोत्र की मूल उत्तराधिकार –प्रथा के अनुसार गोत्र के किसी सदस्य के मर जाने पर उसकी सम्पत्ति उसके गोत्र के संबंधितों को मिलती थी। यह आवश्यक था कि संपत्ति गोत्र के भीतर ही रहे। शुरु में चूँकि संपत्ति साधारण होती थी, इसलिए सम्भव है कि व्यवहार में वह सबसे नजदीकी गोत्र-संबंधियों को, यानी माँ की तरफ के रक्त-संबंधियों को मिलती रही हो। परन्तु मृत पुरुष के बच्चे उसके गोत्र के नहीं, बल्कि अपनी माँ के गोत्र के होते थे। शुरु में अपनी माँ के दूसरे रक्त संबंधियों के साथ-साथ बच्चों को भी माँ की संपत्ति का एक भाग मिलता था और शायद बाद में उस पर उनका प्रथम अधिकार मान लिया गया हो। परन्तु उन्हें अपने पिता की संपत्ति नहीं मिल सकती थी, क्योंकि वे उसके गोत्र के सदस्य नहीं होते थे और उसकी संपत्ति का उसके गोत्र के अंदर रहना आवश्यक था। अतएव, पशुओं के रेवड़ के मालिक के मर जाने पर उसके खेत पहले उसके भाइयों और बहनों को और बहनों के बच्चों को, या उसकी मौसियों के वंशजों को मिलते थे। परन्तु उसके अपने बच्चे उत्तराधिकार से वंचित थे।

इस प्रकार, जैसे-जैसे संपत्ति बढ़ती गयी, वैसे-वैसे इसके कारण एक ओर तो परिवार के अन्दर नारी की तुलना में पुरुष का दर्जा ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया और दूसरी ओर, पुरुष के मन में यह इच्छा जोर पकड़ती गयी कि अपनी मजबूत हो गयी स्थिति का फायदा उठाकर उत्तराधिकार की पुरानी प्रथा को उलट दिया जाए; ताकि उसके अपने बच्चे हकदार हो सकें। परन्तु जब तक मातृअधिकार के अनुसार वंश चल रहा था, तब तक ऐसा

असम्भव था। इसलिए आवश्यक था कि मातृ-अधिकार को उलट दिया जावे और ऐसा किया भी गया। यह करने में उतनी कठिनाई नहीं हुयी, जितनी आज मालूम पड़ती है। कारण कि यह क्रान्ति, जो मानव जाति द्वारा अब तक अनुभूत सबसे निर्णायक क्रांतियों में थी, गोत्र के एक भी जीवित सदस्य के जीवन में किसी तरह का खलल डाले बिना संपन्न हो सकती थी। सभी सदस्य जैसे पहले थे; वैसे ही अब भी रह सकते थे। बस यह एक सीधा-सादा फैसला काफी था कि आगे चलकर गोत्र के पुरुष सदस्यों के वंशज गोत्र में ही रहेंगे और स्त्रियों के वंशज गोत्र से अलग किये जायेगें और अपने पिताओं के गोत्रों में शामिल कर दिये जायेगे। इस प्रकार मातृक वंशानुक्रम तथा मातृक उत्तराधिकार की प्रथा उलट दी गयी और उसके स्थान पर पैतृक वंशानुक्रम तथा पैतृक उत्तराधिकार स्थापित हुआ।

इसी बात का समर्थन एंगेल्स अपनी पुस्तक 'परिवार निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति' में मातृसत्तात्मक परिवार की समाप्ति पर टिप्पणी करते हैं, "मातृ-अधिकार का विनाश नारी जाति की विश्व ऐतिहासिक महत्व की पराजय था। अब घर के अन्दर भी पुरुष ने अपना आधिपत्य जमा लिया। नारी पदच्युत कर दी गयी। वह जकड़ दी गयी। वह पुरुष की वासना की दासी, संतान उत्पन्न करने का एक यंत्र मात्र बनकर रह गयी। वीर काल के और क्लासिकीय काल के यूनानियों में नारी की यह गिरी हुयी हैसियत खास तौर पर देखी गयी। बाद में धीरे-धीरे तरह-तरह के आवरणों से ढँककर और सजाकर और आंशिक रूप में थोड़ी नरम शक्ल देकर उसे पेश किया जाने लगा, पर वह दूर नहीं हुई।"[20]

एक प्रकार यह माना जाता रहा है कि मातृवंशक्रम उन आर्थिक व्यवस्थाओं से जुड़ा है जो महिलाओं की स्वतंत्रता को और उनके अपने रहन-सहन की व्यवस्था करने से उनके अधिकार को मान्यता देती है। इन व्यवस्थाओं में पुरुष शिकार खेलने, सामरिक गतिविधियों में भाग लेने, व्यापार करने जैसी आर्थिक तथा राजनीतिक क्रियाकलापों में हिस्सा लेते हैं जबकि महिलाएँ सामान्य जीवन-यापन, पारिवारिक भरण पोषण के साधन जुटाती है। ऐसे कुछ समूहों में आर्थिक व्यवस्था में बड़े पैमाने पर तकनीकी परिवर्तनों के बावजूद भी पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था में तदनुरूपी बदलाव नहीं आया है।

भारत में खासी जनजाति वंशानुक्रम मातृवंशीय है परिवार की स्त्रियों की संतान परिवार की सदस्य हो सकती है। संपत्ति स्त्रियों से ही स्थानान्तरित होती है और केवल स्त्रियों के द्वारा ही रखी जाती है। परिवार का पुरुष सदस्य जो कुछ भी अर्जन करता है वह उसके 'इग' अर्थात् परिवार का होता है और या तो वह उसकी माता को मिलता है अथवा उसकी बहन तथा उसके स्त्री वंशजों को उत्तराधिकार में प्राप्त होता है। पुरुष संतान की संतान परिवार की सदस्य नहीं होती। खासी परिवार में सबसे छोटी पुत्री का 'खाद्दु', पारिवारिक धर्म की रक्षा करती है।

गारो जनजाति में भी वंशानुक्रम मातृवंशीय और निवास मातृस्थानिक है। संपत्ति का उत्तराधिकार स्त्री से प्राप्त होता है तथा संपत्ति स्त्री के पास ही रहती है। किन्तु सभी स्त्रियों को पारिवारिक संपत्ति में भाग नहीं होता। माता-पिता अपनी पुत्रियों में से किसी एक को 'नोकना' अर्थात उत्तराधिकारी नियुक्त करते हैं और इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह सबसे बड़ी अथवा सबसे छोटी हो। सामान्यतः सबसे बड़ी पुत्री को टाल दिया जाता है। परिवार की भूमि, घर, घर के सामान, खेती के औजार, गाय, बैल आदि में अन्य पुत्रियों का कोई अधिकार नहीं रहता। जब तक उनका विवाह न हो तब तक उन्हें पारिवारिक घर में रहने दिया जाता है और विवाह के बाद वे अपना घर इस भूमि पर, जो उनको गाँव में दी जाती है, बसाती है।

यद्यपि स्त्री संपत्ति की स्वामिनी होती है, फिर भी इसका नियंत्रण उसके पति द्वारा होगा। वह उसकी संपत्ति का पूरा पूरा उपयोग करता है। वह उसे किसी को दे नहीं सकता, फिर भी अन्य सभी प्रकार से इस पर उसका पूरा अधिकार होता है। यदि उसकी पत्नी उससे पहिले मर जावे तो उसकी पत्नी के संबंधी उसे दूसरी पत्नी देते हैं जो मृत 'नोकना' के समस्त अधिकारों को प्राप्त कर लेती है ताकि वह संपत्ति पर नियंत्रण चालू रखने में समर्थ हो सके। इसी प्रकार यदि स्त्री स्वामी के प्रति विश्वासघातिनी हो जावे और वह (पुरुष) उससे विवाह -विच्छेद कर लेवे तो उसे (स्त्री को) पारिवारिक संपत्ति पर अधिकार नहीं रखने दिया जावेगा और उसके पति को भी कोई अधिकार नहीं रहेगा।

इस प्रकार मातृस्थानीय विवाह कुछ जनजातियों को छोड़कर अन्य किसी समाज में नहीं मिलते है। कारण यही है कि हर समाज में पितृवंशात्मकता ही प्रमुख है। मातृवंशात्मकता को समाप्त कर दिया गया। जबकि किसी भी समुदाय में महिलाओं द्वारा बनाये सामाजिक संबंधों के ताने-बाने उस समुदाय के लिए उतने ही जीवनदायी शक्ति से भरे है जितने पुरुषों द्वारा बनाये सामाजिक तंत्र। पुरुष जितना अधिक महिलाओं को 'घरेलू'

बनाने की कोशिश करते हैं तब समझना चाहिए कि महिलाओं की प्रजनन शक्ति की राजनीतिक महत्ता उतनी ही अधिक बढ़ी-चढ़ी है। औद्योगिक समाजों में पुरुष अभी भी यही कहते हैं कि महिला की जगह घर में है और उन्हें महिलावादी राजनीति समझ में नहीं आती है। ऐसे पुरुष अभी तक यह नहीं समझ पाये है कि किस सीमा तक उत्पादन एवं प्रजनन का संगठन घर से बाहर आकर सार्वजनिक हो गया है और इस प्रक्रिया में महिलाओं के हित अब घर की सीमा में बंधे नहीं रह गये हैं। पितृवंश परंपरा मानने वाले समाजों की तुलना में मातृवंश परंपरा मानने वाले समाजों में परिवर्तन की लहर अधिक तीव्र है और संभव है कि महिला से जुड़ी प्रजनन शक्ति की महत्ता को ऐसी ही व्यवस्था में नये अंदाज से समझा जायेगा।

हिन्दी साहित्य की सबसे बड़ी कमी है कि ऐसे किसी मातृस्थानीय विवाह की चर्चा किसी चयनित उपन्यास में नहीं हुई है। जिसकी वजह से हमें इस परंपरा के साहित्यिक मूल्याँकन से वंचित होना पड़ रहा है। पितृवंशात्मक समाज में पितृस्थानीय विवाह की ही चर्चा हुई है। कोई उपन्यास मातृवंश परंपरा का कहीं भी कोई चित्रण नहीं हुआ है। यह हमारी सामाजिक और साहित्यिक सीमा है।

(3) परिवार और नवविवाहिता

पितृसत्तात्मक परिवार में बेटियाँ दूसरों के घर में बहू बनकर जाती है। विस्थापन की इस स्थिति में औरत मानसिक और शारीरिक दोनों ही स्तरों पर परिवर्तन के दौर से गुजरती है। एक तरफ उसके ससुराल के लोग होते हैं जिनकी उससे भाँति-भाँति की अपेक्षा, उम्मीदों और उत्तरदायित्व के निर्वहन की आशा होती है, दूसरी ओर पति जैसा अजनबी इंसान जिससे मानसिक-भावनात्मक शारीरिक-व्यावहारिक लगभग सभी स्तरों पर सामंजस्य बनाना होता है। इस सब के बीच उससे यदि कोई चूक होती है तो उसकी क्षमताओं पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया जाता है। ऐसी संक्रमण काल की स्थिति के बारे में पं. रमाबाई ने लिखा है, "सास अपनी बहुओं को घरेलू दायित्वों का ज्ञान देने के लिए घर के सभी कार्यों में लगाती है। 9-10 साल की बच्चियाँ पूरे दिन के इस काम को कष्टप्रद पाती है, साथ ही इस काम को करने के बाद भी उन्हें सास से प्रशंसा का एक भी शब्द सुनने की आशा नहीं रहती है। छोटी-लड़की की हर गलती पर उसे डाँटा जाता है। अगर वह अच्छा काम करती है तो इसे चुपचाप स्वीकार कर लिया जाता है। बड़ों के द्वारा प्रोत्साहन एवं प्रशंसा के शब्द कहना बच्चों को बिगाड़ने एवं अनैतिक बनाने जैसा समझा जाता है। छोटी बच्ची की गलतियों को जान-बूझकर किया गया दोष समझा जाता है। उसके बाद अपशब्दो की बौछार उस पर शुरु हो जाती है। इस प्रकार अपमान व कष्ट को स्वीकार करके वह चुपचाप इस कड़वे घूँट को पीकर, खुद को सात्वना देती है। इस दुख समय में, वास्तव में, वह अपनी माँ और उसकी प्यारी सहानुभूति की कमी को महसूस करती है।"[21] ऐसा सिर्फ एक बाल–बधू के साथ ही नहीं होता है बल्कि किसी भी उम्र की नववधू के साथ ये स्थिति आती है।

परिवार एक सामाजिक संस्था है। विवाह भी एक सामाजिक संस्था है। विवाह से परिवार बनता है। लेकिन विवाह का रूप क्या होना चाहिए? वह दो व्यक्तियों के परस्पर प्रेम और साथ रहने की इच्छा के आधार पर होना चाहिए। लेकिन इसके बीच में आ जाता है धर्म, जात-पात, रोब-रुतबा, दहेज का लेन-देन वगैरह, क्योंकि अब ज्यादतर विवाह यह देखकर किये जाते हैं कि लड़के का परिवार कैसा है, कितना पैसे वाला है, लड़का कितना कमाता है वगैरह–वगैरह। इस तरह, लड़की की शादी उसके माँ–बाप करते हैं कि लड़की 'सुखी' यानी आर्थिक रूप से पति या ससुराल पर निर्भर तथा 'सुरक्षित' यानि नियंत्रण में रहे। पूँजीवादी समाज में स्त्री स्वयं एक संपत्ति होती है। उससे कैसा भी काम लिया जा सकता है, उसे पशु की तरह मारा पीटा जा सकता है। यही नहीं, उसका जीवन एक वेश्या की तरह होता है। उसे कुछ सुविधाओं के बदले अपनी इच्छा के विरुद्ध भी पति को अपना शरीर देना पड़ता है। ऐसी स्थिति में प्रेम की तो कोई संभावना बचती ही नहीं। इस प्रकार जब प्रेम के आधार पर विवाह नहीं होगा, तो परिवार किस तरह का बनेगा? वहाँ स्त्री का हर तरह का शोषण, दमन और उत्पीड़न होगा। इसलिए जब परिवार को जनतांत्रिक बनाने की मांग उठेगी, तो सामाजिक संस्थाओं को भी जनतांत्रिक बनाने की मांग उठेगी और उन्हें बदलने के लिए समाज को भी बदलना होगा। अच्छी बात यह है कि अब विवाह और परिवार की संस्थाओं से लोगों का मोहभंग होने लगा है और यह जरूरी भी है।

समाज में लड़कियों को इतना तुच्छ बनाकर रखा गया है कि अपने ही परिवार में उन्हें अभिनय करना पड़ता है। एक सुरक्षित आश्रय के लिए परिवार नामक मंच पर उनके अभिनय का इम्तहान चलता रहता है। परिणाम थोड़ा भी इधर-उधर होने पर लड़की का सब कुछ खत्म हो जाता है। यद्यपि 'विवाह' नामक घटना पुरुष और स्त्री दोनों के जीवन में ही घटित होती है। दोनों ही नये जीवन में प्रवेश करते हैं, लेकिन उस घटना में दोनों के लिए प्रयोग होने वाले क्रियापद भिन्न है। लड़की की शादी की जाती है और लड़के 'शादी करते हैं'।

अर्थात जिसकी शादी की जाती है वह निक्रिय है और जो करता है, वह 'कर्ता' है। इसलिए 'गृहकर्ता' शब्द पुरुष के लिए है और गृहस्थी सँभालना शब्द से खाना पकाना घर-बार सँभालना, धूल-साफ करना, बच्चे पालना वगैरह का बोध होता है। किसी भी तरह का कोई तर्क किये बिना ये काम स्त्रियों के जिम्मे सौंप दिये जाते हैं। स्त्री आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी हो या ज्ञान, बुद्धि विद्या, व्यक्तित्व में पुरुष से ज्यादा ही क्यों न हो, स्थिति वही रहती है ? इस धरती पर पुरुष ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए कुछ 'कथन' तैयार किये हैं। उनमें से कुछ को 'धर्म' और कुछ को 'नियम' का रूप दे दिया गया है।

अधिकतर परिवारों में सास-बहू के झगड़े बहुत आम हैं। सास बहुओं पर अत्याचार करके सुख पाती है। हम लोग सोच सकते हैं, कोई स्त्री जब बहू की सास बनती है तब वह ऊँची आवाज में बोलती है या जब जमाई की सास होती है तब? बेटी के मामले में वह अवश्य ही विनम्र होगी, आपसी सुलह करने में विश्वास रखेगी, लेकिन बेटे के मामले में वह ठीक इसके विपरीत होती है। ऐसा इसलिए कि मात्र लड़की ही पुरुष केन्द्रित समाज की शिकार है। शादी के द्वारा लड़के के हाथ में लड़की की जिम्मेदारी सौंपने एवं लड़के के घर और घराने की रक्षा करने का दायित्व ग्रहण करने के माध्यम से एक लड़की पुरुषतंत्री समाज के जाल में फँस जाती है। लड़के की बहू की सास (जब बहू थी) ने भी कभी इसी तरह अत्याचार झेला था।

दूसरी तरफ जब वह अपनी लड़की की शादी कराती है तो वह इसी पुरुषतंत्र के समक्ष बेटी को समर्पित करती है, तब वह पुरुषतंत्र की समर्थक नहीं होती, तब वह नारी पक्ष की होती है। उत्पीड़ित नारी का प्रतिनिधि इसीलिए वह विनीत, अर्पित, शीलवती, संयमी और मर्यादित होती है। उधर लड़की की सास उसी तरह ही तेज-तर्रार, नाराज और नाखुश बनी रहती है – और अपनी पुत्रवधू के समक्ष इसी तेवर के साथ अपनी भूमिका निभाती रहती है।

विवाह एक स्त्री के जीवनयापन में ऐसा परिवर्तन ला देता है कि उसका घर-द्वार, रहन-सहन तौर तरीके सब कुछ बदल जाती है। उसकी आभूषणरहित कलाई, नाक, खाली मांग भी बदल जाती है जबकि पुरुष के जीवनयापन में विवाह से कोई परिवर्तन नहीं आता। स्त्री को विनम्रतापूर्वक अपने विश्व का परित्याग करना पड़ता है, और इस त्याग के बदले उसे प्राप्त होता है पुरुष का संरक्षण। एक बार वह पुनः मुख्य बनकर अपने गृह की रानी के रूप में अपने पारिवारिक क्षेत्र में शान्तिपूर्वक रहती है। पत्नी, माता और स्वामिनी हर रूप में स्त्री विवाह के द्वारा जीवन की शक्ति पाती है और अपने जीवन का अर्थ समझती है।

युवा पत्नी पति की भावनाओं को हार्दिकता से स्वीकार नहीं करती। पति को प्यार करना और खुश करना वह अपना कर्तव्य समझती है। यह कर्तव्य स्वयं वह अपने पति और समाज के प्रति मानती है। उसका परिवार उससे यही आशा करता है। यदि उसके माता-पिता उसकी शादी का विरोध करते हैं, तो यह उनके व्यवहार में प्रकट हो जाता है। यदि स्त्री की काम-इच्छा तृप्त नहीं होती तो वह भाव बहुत उग्र, ईर्ष्या से पूर्ण और आधिपत्य स्थापित करने वाला बन जाता है। निराश होने पर, जो कि वह स्वयं स्वीकार नहीं करती, वह अपने पति के लिए और भी व्यग्र हो जाती है। शायद अतृप्त इच्छा द्वारा वह निराशा को दूर करना चाहती है। बुद्धि, भावुकता और सच्चाई के बावजूद स्त्री अपने विचारों को ठीक रूप से व्यक्त नहीं कर पाती और न निष्कर्ष निकाल पाती है। स्त्री के पास चुप रहने, आँसू बहाने और कभी कभी बल-प्रदर्शन के सिवा और कोई उपाय नहीं रहता।

स्त्री को विवाह-संस्कार स्वयं यह ज्ञान कराता है कि पत्नी में सद्‌गुणों की होना अनिवार्य है। परिवार के सदस्य ये भूल जाते हैं कि बहू किसी परंपरा में चली आती एक पवित्र रचनामात्र नहीं बल्कि एक जीता-जागता इंसान भी है। उसकी वफादारी और ईमानदारी को सब नियमस्वरूप मान लेते है। सभी ये भूल जाते है कि उसकी भी अपनी इच्छाएँ और लालसाएँ हो सकती है। यहाँ तक कि पति भी यह नहीं समझता कि पत्नी के भी अपने स्वप्न, कल्पनाएँ, इच्छाएँ और अतीत के लगाव हैं। उसने भी किन्हीं भावनाओं में डूबकर अपना अतीत बिताया था।

विवाह के प्रारंभिक वर्षों में पत्नी भ्रम में रहती है। वह मुक्त हृदय से अपने पति की प्रशंसा करती है। वह उससे प्रेम करती है। और ऐसा सोचती है कि पति और संतान के लिए यह अनिवार्य है। कुछ दिनों पश्चात उसको असलियत मालूम पड़ती है। वह यह महसूस करती है कि उसके बिना भी उसके पति का जीवन अच्छी तरह चल सकता है। उसकी संतान उससे पृथक हो जायेगी और उसके प्रति कभी भी आभारी नहीं होगी। घर उसके सूनेपन को भर नहीं पायेगा। वह अपने को एकाकी पाती है, बिल्कुल अकेली, एक व्यक्ति।

एक बार फिर मुझे निराश होना पड़ रहा है कि मेरे द्वारा चयनित उपन्यासों में ऐसा कोई उपन्यास नहीं है। जिसमें नवविवाहिता और उसके ससुराल के लोगों का चित्रण किया गया है। नयी–नवेली दूल्हन जब घर आती है तो उससे रानियों जैसा व्यवहार किया जाता है। लेकिन जैसे ही सप्ताह भर बीतता है वैसे ही उसे उसकी हकीकत समझानी जाने लगती है। बहुत कम परिवारों में ऐसा होता है कि बहू को हमेशा यशोचित सम्मान और उसकी सही गलत उसे दी जाती है।

(4) आत्मनिर्भर पति पत्नी और नवस्थानीय जीवन की चुनौतियाँ

आत्मनिर्भरता से तात्पर्य यहाँ आर्थिक आत्मनिर्भरता है। विवाह पश्चात यदि पति-पत्नी दोनों ही नौकरी करते हैं तो उनका दाम्पत्य जीवन-पारंपरिक विवाह-संबंध की अपेक्षा अलग और कुछ हद तक स्वतंत्र होगा। यद्यपि इस परिवार में भी स्त्री घर आते ही पत्नी की भूमिका को सँभाल लेगा। क्योंकि सामाजिक रूप से स्त्री-पुरुष में भेदभाव का मतलब है स्त्री पर पुरुष का आधिपत्य। जिसकी वजह से दाम्पत्य जीवन में समानता नहीं हो सकती है। समाज और परिवार इस बात की स्त्री (पत्नी) से अपेक्षा करता है कि विवाह और सन्तानोत्पत्ति के लिए वह अपना कैरियर छोड़कर वापस घर लौटेगी। अगर मियाँ -बीबी एक साथ लगभग समान पदों पर एक ही दफ्तर में कार्यरत हैं तो काम से वापस आने पर बीबी स्वाभाविक रूप से शाम की चाय और रात के भोजन की जिम्मेदारी सँभाल लेती है। अगर घर में नौकर लगे हों तो नौकरों के काम की देखभाल करना भी पत्नी के हिस्से में ही आता है।

शारीरिक संरचना की दृष्टि से स्त्री-पुरुष दोनों भिन्न हैं और अपने आप में अपूर्ण भी। रतिविषयक कामनाएँ इस अपूर्णता को और अधिक बढ़ाती हैं। दूसरे, अकेलापन व्यक्ति को कुंठित करता है। दुःख-सुख बाँटने के लिए उसे किसी का चिरसंग बांछित है। स्त्री-पुरुष के रति संबंध तथा उन संबंधों के कारण उत्पन्न संतान – यह क्रम वास्तव में जीवन है और परिवार भी। विवाह अपने अन्दर के अधूरेपन को भरने का तथा आत्मविकास का साधन है। विवाह के आधार पर बने स्त्री-पुरुष संबंधों तथा उनकी संतान को 'परिवार' की संज्ञा दी गयी है। यही मूल परिवार है।

दाम्पत्य संबंध मुख्यतया पति-पत्नी की प्रवृत्ति, आपसी समझ-बूझ तथा कुछ सीमा तक पारिवारिक परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं। यही कारण है कि कई बार अशिक्षितप्राय तथा घरेलू कही जाने वाली महिलाएँ भी मधुर दाम्पत्य संबंध भोगती हैं। इसके विपरीत सुशिक्षित तथा समानता का दावा करने वाली आधुनिक महिलाएँ भरसक प्रयास करने पर भी दाम्पत्य संबंधों में तनाव अथवा कुसांमजस्य की समस्या से पीड़ित रहती हैं। प्राचीन भारत में दाम्पत्य संबंधों में तनाव की समस्या नहीं उठी। इसका मुख्य कारण था – पति एवं पत्नी के भिन्न तथा सुनिश्चित कार्यक्षेत्र होना। दोनों अपने-अपने कार्यक्षेत्रों में महत्वपूर्ण समझे जाते थे और एक-दूसरे के प्रति आदरभाव रखते थे। अतः मतभेद की कोई गुंजाइश नहीं थी। दूसरे, विवाहविषयक धारणा में व्यक्तिगत तुष्टि की अपेक्षा परिवार व समाज के कल्याण का भाव था। विवाह का मुख्य लक्ष्य वैयक्तिक संतुष्टि, वैयक्तिक हितों व आकांक्षाओं की पूर्ति न होकर परिवार व समाज के प्रति एक सामाजिक कर्तव्य था। विवाह के इन उद्देश्यों के कारण वैवाहिक मनमुटावों को सार्वजनिक रूप से व्यक्त करने की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती थी। किन्तु औद्योगीकरण, शहरीकरण, शिक्षा, धर्मनिरपेक्षता, भौतिकवाद एवं ह्रासोन्मुख संयुक्त परिवार प्रणाली ने व्यक्ति, विशेषकर स्त्री के दृष्टिकोण में पर्याप्त परिवर्तन ला दिया है। परिणामस्वरूप पति-पत्नी से विभिन्न इकाइयाँ बनकर अपने-अपने हित में खोकर, अपनी व्यक्तिगत खुशियों को पूरा करने की कोशिश में एक–दूसरे को कुण्ठित करते हैं। इससे संबंधों में तनाव उत्पन्न होता है। यही बात 1960 में प्रमिला कपूर द्वारा किये गये सर्वेक्षण से भी प्रमाणित होती है कि अब महिलाएँ "विवाह द्वारा अपनी भावनात्मक, शारीरिक, सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं की संतुष्टि चाहती है।"[22]

निसंदेह आर्थिक आत्मनिर्भरता पति–पत्नी संबंध में आमूलचूल परिवर्तन नहीं करती है। किसी न किसी अंश में यह इन संबंधों को प्रभावित अवश्य करता है। आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर तथा समाज में निश्चित 'स्टेटस' रखने वाली कामकाजी महिला के सामने व्यक्तित्व के टकराव की समस्या सदैव बनी रहती है। दूसरे, दोहरी भूमिका निभाने के साथ-साथ उसे जीवन में परस्पर विरोधी लक्ष्य लेकर भी चलना पड़ता है। विवाह जहाँ आत्मत्याग एवं सहयोग की माँग करता है वहीं कामकाज आत्मोन्नति एवं प्रतिस्पर्धा की। सामंजस्य और समर्पण क्या सिर्फ नारी से अपेक्षित है – इस दृष्टि से विचार किये जाने पर उपर्युक्त दोनों समस्याएँ गहरी जान पड़ती हैं। स्त्री को लेकर स्त्री-पुरुष के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण, सामाजिक व्यवस्था, विशेष परिस्थितियों के अधीन स्त्री की मानसिकता आदि की व्याप्ति इनमें देखी जा सकती है।

पत्नी की दोहरी जिम्मेदारियों तथा विवाह के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण के कारण पति और पत्नी की निर्धारित भूमिकाओं में भारी अनिश्चितता आ गयी है क्योंकि कुछेक भूमिकाओं को छोड़कर शेष में न अब कोई अन्तर है और न उन्हें एक-दूसरे से भिन्न किया जा सकता है। वस्तुतः ये भूमिकाएँ परस्पर घुलमिल गयी हैं। ऐसी स्थिति में पति तथा पत्नी दोनों के लिए अपने दायित्वों तथा विशेषाधिकारों के बँटवारे को अलग-अलग दृष्टिकोण से समझना सरल हो जाता है। यह दृष्टिकोण आपसी समझ–बूझ तथा समझौतावादी विचारधारा का विरोध करता है। अतः जहाँ पुरुष विरासत में मिले श्रेष्ठता भाव से तना रहता है, वहीं पत्नी स्वावलम्बी एवं स्वतंत्र होने के कारण उत्पन्न अहम् से दीप्त रहती है। यहीं दोनों के संबंधों में टकराव का मूल कारण है जिसकी अभिव्यक्ति अन्य बिन्दुओं में भी की जा सकती है – यथा – पति द्वारा पत्नी का शोषण, पत्नी को सहयोग न देना, पत्नी द्वारा पति की उपेक्षा, पति का हीन-भाव तथा पत्नी का श्रेष्ठता भाव से ग्रस्त होना आदि।

भारतीय पुरुष आज भी पुरुष तथा पति होने के नाते परंपरा से मिले दर्प भाव को पूरी तरह त्याग नहीं पाया है, किन्तु काफी सीमा तक इससे उबर अवश्य चुका है। यही कारण है कि उसने स्त्री को अपना साथी एवं प्रतिद्वंद्वी स्वीकार कर लिया है, वह नारी को अपने से श्रेष्ठ पद अथवा स्थिति में नहीं देखना चाहता। पत्नी की सामाजिक एवं आर्थिक श्रेष्ठता उसके अहम पर चोट करती है। इस प्रकार पत्नी की अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा एवं आर्थिक सम्पन्नता दाम्पत्य संबंधों के संदर्भ में अवगुण बन गये हैं।

पारंपरिक विवाह स्त्री को पुरुष के साथ सर्वोपरिता की ओर जाने की कोई सुविधा नहीं देता। जहाँ पुरुष (पति) वर्तमान का अतिक्रमण करते हुए भविष्य की परियोजना में संलग्न रहता है वहीं स्त्री (पत्नी) अपने ही दायरे में बंद, अपनी ही आतंरिकता में कैद रहती है। इसी को वह सुख की जिंदगी समझती है। प्रेम के बदले वह एक कोमल और श्रद्धालु भावना महसूस करती है। इसी को दाम्पत्य प्रेम कहा जाता है। हम देखते हैं कि विवाह स्त्री के जीवन की उद्देश्यहीनता को मानव–मूल्य प्रदान करता है। पत्नी के साझे में वह उसकी शक्ति बन जाता है। पत्नी का काम है कि वह अपने आपको पति को समर्पित कर दे और पति ही उसके जीवन को अर्थ प्रदान करता है। यह सारी अवधारणा और परियोजना पूर्वानुमानित रूप से पत्नी को एक बड़ा विनयी और त्यागमय रूप देती है। यह सोचा जाता है कि स्त्री मौलिक त्याग के प्रभाव से बचकर फिर एक बार अनिवार्यता हासिल कर पायेगी। अपने ही घर की रानी, अपनी सीमा में शान्त स्थिर पत्नी, माँ और घर की साम्राज्ञी।

अब हम उपन्यासों के उदाहरणों के माध्यम से समझेगें कि आत्मनिर्भर पति-पत्नी जब नवस्थानीय घर में रहते हैं तो किस प्रकार का जीवन होता है। मेरे द्वारा चयनित उपन्यासों में 'सुनीता' ही एकमात्र उपन्यास है जो नवस्थानीय विवाह का उदाहरण है। एक-दूसरे पर निर्भरता बढ़ जाती है। नवस्थानीय दाम्पत्य में यदि स्त्री (पत्नी) आर्थिक रूप से निर्भर नहीं है तो उसके लिए घर -गृहस्थी के अतिरिक्त करने के लिए कुछ नहीं रहता है। ऐसे में उसका व्यक्तित्व कुंठित होता है और वह घुट-घुट कर जीती है। ऐसे ही नवस्थानीय घर का उदाहरण सुनीता उपन्यास है।

(1) सुनीता

जैनेन्द्र द्वारा लिखित उपन्यास –सुनीता' की नायिका सुनीता 'उच्चशिक्षिता' और अनिन्द्य-यौवना है। अपनी गृहस्थी को सँभालने के लिए, वह यह सोच समझ कर चलती है कि "तनिक भी इस तरह नहीं रहती कि लोग न समझें वह उच्च शिक्षिता नहीं है, कुछ दिनों से नौकर हटाकर घर का काम धन्धा करना शुरु कर दिया है, चौका-बर्तन भी करती है। हारमोनियम और वायलिन पर धूल चढ़ने देती है, और पुस्तकों को भी अलमारियों में चुप लेटे रहने देती है।"[23] अपने को पूरी तरह से समेटकर वह अपनी गृहस्थी चला रही है। वह एक प्रतिभाशाली स्त्री है लेकिन पत्नी होने के बाद वह अपने को पत्नी की सीमाओं में ही कैद कर लेती है। इस घुटन को वह महसूसती है, "सुनीता पहले अपने घर के निरानन्द को हृदयंग्म करती है और जब सोचती है कि वह कैसे हटे, तो स्पष्ट रूप में ही वह पाती भी है कि अपने जीवन और घर के किवाड़-खिड़कियाँ खोल दे, खूब हवा आने-जाने दे, तभी ठीक होगा। हवा में जो अशुद्ध है उसे शुद्ध करके परास्त करना होगा, जो शुद्ध है उसे अंगीकार करना होगा। किन्तु हवा को तो इस घर में आर-पार बहते ही रहने देना होगा। अस्वीकार और अंगीकरण, दोनों की क्षमता अपने प्राणों में जगानी होगी और इस प्रकार अपने को सारे अपने घर को पुष्ट और विशद बनाते चलना होगा।"[24]

ऐसा नहीं है कि इस दाम्पत्य जीवन से सुनीता के मन में ही खालीपन है। श्रीकान्त भी कहीं-न-कहीं एक कटाव और ऊब महसूस करता है, "श्रीकान्त जिस तरह की जिन्दगी में पड़ गया है उसमें अब भी उसके पंख गढ़े नहीं है, वहाँ वह अपने को भूला-भूला सा पाता है – अकेला, अमित्र, ऊपरी। सुनीता उसमें आ मिली है

अवश्य, अवश्य दोनों ने एक घर बना लिया है, लेकिन वह घर ही, उन दोनों के संयुक्त अस्तित्व को अपने में चुका डालता है, घर में काम-धंधे की बात हो, तो उसको लेकर दोनों मिल जाते हैं। वह न हो, तो फिर अपने-अपने में बन्द हो अलग हो रहते हैं।"[25]

अमूमन पत्नियाँ पति के एकाकीपन को समझ लेती है। वह पति पर एक जिम्मेदारी है। वह पति की जिम्मेदारी कम नहीं कर सकती बल्कि बढ़ा देती है। उम्र, शिक्षा और स्थिति की भिन्नता के कारण पति-पत्नी एक दूसरे को ठीक से समझ नहीं सकते। एक-दूसरे के बीच बहुत बड़ी खाई होती है। लड़की का लालन-पालन इस प्रकार होता है कि वह अनेक विषयों में अनभिज्ञ और अबोध रहती है जब कि उसका पति एक सक्रिय जिंदगी जीता है। वह उसे जीवन के सत्य से परिचित कराता है। कुछ पुरुष तो स्त्री की इस अबोध भूमिका से प्रभावित होते है पर कुछेक पुरुष ऐसे होते हैं जिनकी दृष्टि बहुत पैनी होती है और वे खिन्न मन से उस दूरी को देखते हैं जो कि उन्हें उनके भविष्य के साथी से पृथक करती है।

सामान्य जीवन को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि पत्नियाँ प्रायः अपने पतियों को हीन नहीं समझती। हीनता का भाव सामाजिक व्यवस्था की देन है जो वास्तव में उनकी अपनी योग्यताओं एवं मानसिक रूग्णता का परिचायक है। सुनीता अपनी योग्यता और क्षमताओं को परखती है, "सुनीता ने फिर भी सशक्त मन पाया है। सशक्त अर्थात् सृजनशील, कल्पनाशील। उस कल्पक स्वभाव के सहारे वह अपने को बिना खोले भी कुछ ताजा-ताजा रख लेती है। समाज क्या, राष्ट्र क्या, नीति क्या – ऐसी किसी तरह की बातें करने में उसे पीछे रहना पड़े, सो नहीं, पर उन बातों के अभाव में भी रह लेती है। इसलिए अयाचित श्रीकान्त के समक्ष होकर वह कभी अपने को प्रगल्भ नहीं बनाती है। घर के कामधंधों की बातों को ही श्रीकांत तक ले जाती है, और बाकी बातों के लिए फिर अपने में हो रहती है।"[26]

जैनेन्द्र बाह्य कार्य क्षेत्र में पत्नी के साहचर्य की कल्पना नहीं करते। सुनीता अपने पति की बात मानते हुए सोचती है, "यह उनकी बात क्या झूठ है कि स्त्री को अपने घर में ही बहुत कुछ है, बाहर दुनिया में वह क्या पाने जाये? घर में क्या नहीं है?"[27]

जैनेन्द्र के अनुसार पुरुष को एक स्त्री की आवश्यकता घर के लिए है, एक की बाहर के लिए। एक पुरुष की घर की स्त्री, अन्य पुरुष के लिए बाहर की संगिनी हो सकती है, पर अपने पति की नहीं। सुनीता श्रीकान्त के लिए घर की संगिनी ही है, किन्तु हरिप्रसन्न के लिए वह बाहर भी निकल सकती है। इस गृहस्थी की जिम्मेदारी के साथ-साथ सुनीता जीवन की एक-रसता भी महसूस करती है। इस एक–रसता को हरिप्रसन्न तोड़ता है जो एक स्तर पर श्रीकान्त, सुनीता और हरिप्रसन्न-तीनों के लिए सुखद है। क्योंकि श्रीकान्त चाहता है कि घर में कुछ ऋतु बदलें नहीं तो अलसता और जड़ता समा जाती है। और जब ऋतु बदलती है तो पता चलता है कि हरिप्रसन्न ने 'घर' नहीं देखा और सुनीता ने 'बाहर' नहीं देखा। दोनों के बीच आकर्षण इसी अपरिचय का है। लेकिन यदि हरिप्रसन्न क्रांतिकारी है तो उसकी क्रांति की अवधारणा क्या है? एक दूसरी तरह से देखें तो सुनीता में जैनेन्द्र ने पुरानी नारी में एक नई नारी को ढूँढ निकाला है– जैसे मीरा पुरानी नारी में नई नारी है।

अतः यह आकस्मिक नहीं है कि सुनीता को सबसे अधिक उद्विग्न मीरा करती है, "सुनीता मीरा फिल्म देखकर पति के प्रति पीड़ाग्रस्त हो गयी। जैसे पति के निकट आ गयी है, पर वह नहीं जानती कि उसके हाथों में अपने को कैसे दे। पर वह मीरा को समझना चाहती है, मीरा के पति की ओर से मीरा को भर्त्सना भी देना चाहती है, फिर भी भीतर को समझना चाहती है। मीरा पतिव्रता बिना हुये भी अरे! क्यों उसकी श्रद्धाभाजन बनी हुयी है.... वह अपने से झगड़कर चाहती है कि मीरा को खंडिता और लांछिता ठहरा दे, किन्तु मीरा के प्रति उसके भीतर का स्नेह और वेदना उमड़ी ही आती है, बही ही आती है।"[28] वह मीरा और राणा दोनों को चाहती है, "मैं तो राणा के साथ रो ही सकती हूँ पर मीरा के साथ भी मुझे इजाजत दे दो कि मैं रोना चाह लूँ।"[29] ये रोना चाहना भी पति की मर्जी से होगा। यही पत्नी और स्त्री होने के बीच का द्वंद्व है।

सुनीता के मन का द्वंद्व मीरा और राणा के प्रसंग के माध्यम से भी समझा जा सकता है। राणा और मीरा का संबंध सुखी दंपत्ति का नहीं था। मीरा राणा को कभी अपना पति स्वीकार नहीं कर पाई। अतः विवाहेतर प्रेम अथवा यौन संबंधों का समर्थन करने के लिए मीरा के राणा तथा कृष्ण के साथ संबंधों का उल्लेख असंगत प्रतीत होता है। स्त्री-पुरुष संबंधों का औचित्य देश-काल-स्थिति सापेक्ष होता है। किसी एक उदाहरण से उसकी पुष्टि नहीं की जा सकती। 'सुनीता' में यह संबंध सायास स्थापित किया गया है, जिसका लक्ष्य एक प्रयोग अथवा परीक्षण है। सुनीता को हरिप्रसन्न के प्रति आकर्षित होने के लिए पति की अनुमति ही नहीं, आज्ञा भी प्राप्त है,

अतः सुनीता के जीवन में आयी यह समस्या सामाजिक समस्या के रूप में गम्भीरता प्राप्त नहीं कर सकी है। यद्यपि स्त्री-पुरुष संबंधों की पहचान की नूतन दृष्टि का आलोक भले ही मनोविज्ञान से मिला हो किन्तु 'सुनीता' के अटपटे घटनाक्रम और चरित्रों को समझने की अन्तर्दृष्टि पतिपरापणता और स्वाधीनता की विचारधारात्मक परिकल्पना में ही मिलेगी। सुनीता ऐसे ही विरोधी-अविरोधी तत्वों का पुंज है जहाँ नारी की स्वाधीनता पति की गुलामी बन जाती है या पति आदेश नारी स्वाधीनता के 'अवैध-तेज' को वैध बनाने की तरकीब है। दाम्पत्य के प्रति अपरिमित निष्ठा वाले इस उपन्यास में भी कई छिद्र है।

धर्म-अधर्म, ईश्वर, पति-परिवार समाज इन मध्यकालीन संस्कारों और परम्परा को तोड़ता हुआ नवीन मनोभाव सुनीता में विकसित हो रहा है। उसके भीतर की नयी नारी और परम्परागत नारी में संघर्ष होता है। संस्कार उसे घर लाँघने नहीं देना चाहते, "इसी घर की दीवारों के भीतर मेरा स्थान है। घर बंधन हो तो हो? मुझे तो मोक्ष यहाँ से पाना है। राष्ट्र को मैं क्या जानूँ? पर पति को मैं जानती हूँ।... मेरे लिए तो सारा राष्ट्र, सारा समाज, सारा श्रेय जिस व्यक्ति में समा जाना चाहिए, वह तो मुझे प्राप्त मेरे स्वामी हैं। उनके चरण जहाँ -जहाँ धूलि पर पड़ते हैं। इस धूलि के कणों में मैं अपने को खो दूँगी।"[30] लेकिन उसके भीतर पकड़ती आधुनिक नारी केवल घर पर रहकर बितानी नहीं चाहती, "वह पत्नी है फिर भी नारी है। .... और उसकी उम्र अभी है भी कितनी?" वह क्या हाड़-माँस की नहीं है? वह पत्नी है, पर नारी है ... वह पति में ही नहीं, स्वयं भी है।"[31] निश्चित ही नारी की परम्परागत छवि को तोड़ती हुयी यह नई नारी है जो ऐतिहासिक प्रकृति को धारण किये हुए है।

सुनीता में परंपरागत नारी को तोड़ आधुनिक नारी के विकास की संभावनाएँ अधिक थीं। सुनीता के अन्तर्द्वंद्व भी बड़े संगत (Genuine) थे लेकिन वे पत्नी को घर से बाहर ले जाते थे जो जैनेन्द्र की मान्यताओं और समाज की मान्यताओं के खिलाफ पड़ता था इसलिए वे सुनीता को परम्परागत मर्यादाओं की सुरक्षित चहारदिवारी में वापसी लौटा ले आते हैं और कहते हैं, "मैंने घर परिवार को पुनः प्रतिष्ठ बनाना चाहा है कि जिसकी अधिष्ठाती स्त्री होगी। चाहा है कि वो बाजार से मुँह मोड़ ले और घर परिवार के राज की बागडोर को मजबूत हाथों में सँभाले। और मैं मानता हूँ कि सतीत्व से स्त्री के पास वो मजबूती, वो क्षमता आ जाती है कि पुरुष उससे पार पा नहीं सकता।"[32] इस प्रकार से फिर से पत्नीत्व की ही विजय होती है। स्त्री का स्त्रीत्व उसके पत्नीत्व के आगे हार जाता है। इस विवाह संस्था में स्त्री व्यक्तित्व के लिए कोई जगह नहीं बन पायी है।

संदर्भ :

1. Kapadia.k. - Siva and Sisters : Gender, Caste and class in Rural India, 1993, 114.
2. Palriwala R. 1990, Production, Reproduction and the Position of Women, A case study of a Rajasthan village Unpub, Ph. D. Dissi Uni. of Delhi.
3. मित्रो मरजानी, कृष्णासोबती, पृ.19
4. मित्रो मरजानी, कृष्णासोबती, पृ.32
5. मित्रो मरजानी, कृष्णासोबती, पृ.33
6. हिन्दू स्त्री का जीवन, प. रमाबाई, (अनु. शंकु जोशी) पृ.58
7. मित्रो मरजानी, कृष्णासोबती, पृ.27
8. मित्रो मरजानी, कृष्णासोबती, पृ.35
9. मित्रो मरजानी, कृष्णासोबती, पृ.36
10. आम औरत : जिंदा सवाल, सुधा अरोड़ा, पृ.54
11. मित्रो मरजानी, कृष्णासोबती, पृ.56
12. निर्मला, प्रेमचंद, पृ.28
13. निर्मला, प्रेमचंद, पृ.29

14. निर्मला, प्रेमचंद, पृ.26
15. निर्मला, प्रेमचंद, पृ.07
16. निर्मला, प्रेमचंद, पृ.06
17. स्त्री उपेक्षिता, सीमोन, पृ.218
18. निर्मला, प्रेमचंद, पृ.28
19. निर्मला, प्रेमचंद, पृ.31
20. एगेल्स, परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति, पृ. 69
21. हिन्दी स्त्री का जीवन, पं. रमाबाई, प. 89
22. प्रमिला कपूर, भारत में विवाह और कामकाजी महिलाएँ, पृ. 09
23. सुनीता, जैनेन्द्र, पृ.11
24. सुनीता, जैनेन्द्र, पृ.15
25. सुनीता, जैनेन्द्र, पृ.19
26. सुनीता, जैनेन्द्र, पृ.19
27. सुनीता, जैनेन्द्र, पृ.26
28. सुनीता, जैनेन्द्र, पृ.54
29. सुनीता, जैनेन्द्र, पृ.54
30. सुनीता, जैनेन्द्र, पृ.131
31. सुनीता, जैनेन्द्र, पृ.142
32. पूर्वग्रह–72, पृ.18

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

बच्चन सिंह तथा नामवर सिंह की आलोचना के तुलनात्मक बिन्दु

निशा सिंह
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान,
सुल्तानपुर

अपनी चर्चा के आरंभिक दौर में ही हम इस बात को स्पष्ट कर चुके हैं कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति तथा दूसरे व्यक्ति में भिन्नता पाई जाती है, तथापि कोई न कोई ऐसा क्षेत्र अवश्य विद्यमान होता है, जिसको लेकर दोनों में समानता कहीं न कहीं दृष्टिगत हो ही जाती है, जिसको आधार बनाकर हम संबंधित व्यक्तियों के मध्य तुलनात्मक अध्ययन कर सकते हैं। साहित्य के क्षेत्र में भी यह विचार अथवा तथ्य उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि अन्य परिप्रेक्ष्य में। साहित्य के क्षेत्र में तुलनात्मक अध्ययन से हमारा आशय सिर्फ संबंधित कवि अथवा रचनाकार की रचनाओं को आधार मानते हुए जीवन दृष्टि, सामाजिक सरोकार तथा भावबोध आदि से संबंधित चिंतन व विश्लेषण से ही है।

प्रत्येक साहित्यकार अथवा रचनाकार का उसका अपना एक विशिष्ट क्षेत्र होता है जिसमें वह अपना अभूतपूर्व योगदान दे सकता है। ऐसा कोई भी क्षेत्र जिसमें संबंधित साहित्यकार की रुचि नहीं होगी, प्रयास के बावजूद भी उस क्षेत्र में उसकी सफलता सर्वथा संदिग्ध ही होगी। इसलिए प्रत्येक रचनाकार अपने प्रिय क्षेत्र का चयन करता है और उसी के आधार पर अपना रचना कर्म प्रारंभ करता है। क्योंकि प्रारंभ की लगभग सभी रचनाएं काव्यात्मक स्वरूप में ही प्राप्त होती हैं, इसलिए समय, काल परिस्थिति के अनुसार रचनाकार अपने प्रिय का क्षेत्र चयन करता है और उसी दिशा में आगे बढ़ जाता है। बच्चन सिंह तथा नामवर सिंह के मध्य तुलनात्मक अध्ययन के क्रम में हम यह देख सकते हैं कि दोनों ही समीक्षक अपने समीक्षा कर्म की शुरुआत काव्यालोचन से ही करते हैं। इस तरह से काव्य आलोचना के क्षेत्र से अपनी आलोचना को अन्य विधाओं में भी प्रसारित करते रहते हैं।

बच्चन सिंह ने अपने समीक्षा कर्म की शुरुआत 'क्रांतिकारी कवि निराला' की समीक्षा से ही प्रारंभ किया था। इस पुस्तक का प्रकाशन 40 के दशक के अंत में संभव हो सका है और उसके बाद इसके अनेकों संस्करण संशोधित तथा परिवर्तित स्वरूप में पाठकों के सामने उपस्थित हुए। इस पुस्तक में बच्चन सिंह 'महाकवि निराला' के कवि कर्म के विषय में अपनी समीक्षा प्रस्तुत करते हैं। 'क्रांतिकारी कवि निराला' नामक रचना में उन्होंने अपने व्यापक तथा यथार्थोन्मुख जीवन दृष्टि और समन्वय क्षमता का परिचय दिया है। उनकी काव्या लोचन के क्षेत्र में अन्य महत्वपूर्ण रचनाएं 'बिहारी का नया मूल्यांकन', 'निराला का मुक्तिबोध', 'रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना', 'भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का तुलनात्मक' अध्ययन प्रमुख रूप से उल्लेखित की जा सकती है। 'क्रांतिकारी कवि निराला' की भाषा और रचना प्रकृति अत्यंत ही उत्कृष्ट है जो उनकी समीक्षा के प्रौढ़तम रूप की साक्षी है। डॉ0 बच्चन सिंह, महाकवि तुलसीदास, 'सरोज स्मृति' और 'राम की शक्ति पूजा' का भी मूल्यांकन किया है जो अत्यधिक मूल्यवान है। डॉ0 सिंह के अनुसार काव्य की भाषा में तनाव का विशेष महत्व होता है क्योंकि तनाव अंततोगत्वा सर्जना के रूप में रूपांतरित होता है। निराला की रचनाओं में आवेग और भाषिक संरचना में तनाव विद्यमान है।

'राम की शक्ति पूजा' में तो यह और भी प्रखर हो जाता है। 'बिहारी का नया मूल्यांकन' में वे कवि विशेष का समग्र मूल्यांकन करते हुए दिखाई देते हैं। इस रचना में बिहारी के काव्य के अद्‌भुत सौंदर्य का विवेचन किया गया है तथा 'रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना' में भी लगभग उसी तरह का वर्णन किया गया है।

डॉ0 नामवर सिंह को भी मुख्यतः और मूलतः कविता के आलोचक के रूप में स्वीकार किया जाता है और उन्होंने भी अपनी आलोचनात्मक यात्रा में कहीं न कहीं कविता को ही उसके केंद्र में रखा है। अपनी पुस्तक 'हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान' से प्रारंभ करते हुए वह अपभ्रंश साहित्य पर प्रकाश डालते हैं जो मुख्य रूप से पद्यात्मक स्वरूप में ही प्राप्त होता है। 'पृथ्वीराज रासो' जैसी कृतियाँ इसका उदाहरण है। 'सिद्धो' का साहित्य भी पद्यात्मक अवस्था में ही है और उसके लिए अद्‌भुत अभिव्यंजना डॉ0 नामवर सिंह करते दिखाई देते हैं। अपने जीवन के कुछ वर्षों में नामवर सिंह कहानी तथा कथा समीक्षा के विकास में सार्थक योगदान दिया। उनकी रचनाओं में पूर्णतया नवीनता तथा ताजगी विद्यमान है। किंतु इस क्षेत्र में प्रायः नामवर सिंह की रचनाओं पर कड़ा विवाद उत्पन्न हो जाता था और उस विवाद के सूत्रधार स्वयं नामवर सिंह ही हुआ करते थे। शायद उनका विश्वास 'वादे वादे जायते तत्त्व बोध' की संकल्पना पर आधारित था। 'कहानी : नई कहानी' के साथ ही नामवर 'इत्यलम' कहकर कहानी की समीक्षा का परित्याग कर देते हैं और पुनः काव्यालोचन की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। उनकी काव्यलोचना को 'कविता के नए प्रतिमान' में देखा जा सकता है। इसमें कविता के क्षेत्र में नए–नए प्रतिमानों का सृजन करते हैं।

बच्चन सिंह व्यापक आलोचना दृष्टि से युक्त साहित्यकार है। उन्होंने अपने साहित्य के फलक को काफी विस्तीर्ण करते हुए उसमें रचनाओं का समग्र मूल्यांकन किया है। वह किसी भी रचना की समग्रता के साथ अध्ययन में रुचि लेते हैं और यह मानते हैं कि रचना को समग्रता के साथ मूल्यांकित किए बिना उसके एकांगी होने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। अपनी आलोचना को कविता से प्रारंभ करने वाले बच्चन सिंह इसको विस्तृत फलक प्रदान करते हैं। अपनी इस साहित्यिक यात्रा में काव्यालोचना से प्रारंभ कर कथालोचना, नाट्यालोचना तथा निबंधालोचना तक पहुंचते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बच्चन सिंह ने साहित्य की लगभग समस्त विधाओं को अपनी लेखनी का लक्ष्य बनाया और उनसे संबंधित कृतियों की समग्रता के साथ मूल्यांकन प्रस्तुत किया 'क्रांतिकारी कवि निराला' हो अथवा उनकी उल्लेखनीय पुस्तक 'हिंदी नाटक', दोनों में ही उनके व्यक्तिगत जीवन –दृष्टि का प्रमाण प्राप्त किया जा सकता है। बच्चन सिंह छायावादी प्रवृत्ति को महत्त्व देने वाले साहित्यकार हैं और इसी के माध्यम से उनकी विशिष्ट ऐतिहासिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। उनकी आलोचना दृष्टि इतनी व्यापक है कि एक और जहाँ निराला के काव्य विकास में उन्हें जीवन–अनुभव, जीवन–दृष्टि तथा रचना के प्रत्येक स्तर पर घटित परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है, तो वही दूसरी ओर रीति काव्य सहित समस्त पूर्ववर्ती काव्य के वैशिष्टय की भी मीमांसा करते हैं। 'बिहारी का नया मूल्यांकन' रचना में बिहारी की दरबारी और रीतिकालीन सीमाओं के बीच उनका सहृदय मूल्यांकन करते हैं और यह स्वीकार करते हैं कि रीति काव्य में कर्मोंमुख प्रेम का सर्वथा अभाव है। कथा साहित्य पर लिखे गए उनके निबंध अत्यंत उच्च कोटि के हैं जिसमें 'गोदान','बाणभट्ट की आत्मकथा', 'शहर में घूमता आईना' प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। उन्होंने इन उपन्यासों के अर्थ को उद्‌घाटित करते हुए उनका विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उनकी आलोचना इतनी व्यापक थी की उसके क्षेत्र में न केवल भारतीय साहित्य की मीमांसा का समावेश है, बल्कि उन्होंने विदेशी साहित्य संबंधी आंदोलनों और प्रवृत्तियों पर भी अपनी टिप्पणियाँ की है। इस प्रकार की उनकी आलोचना पुस्तकों में प्रमुख रूप

से 'अस्तित्ववाद : एक अधूरा जीवन दर्शन', 'ऊल जलूल नाटक की शुरुआत' तथा 'साहित्य का समाजशास्त्र और रूपवाद' जैसी उनकी पुस्तकें उनके वैश्विक महत्व को दर्शाती है। इन पुस्तकों में वे मार्क्सवाद और साहित्यिक आलोचना से लेकर एक और जहाँ ग्रामशी की भूमिका को स्वीकार करते हैं वही साथ ही 'रूसी रूपवाद' तक पर अपने विचार प्रकट करते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि है कि बच्चन सिंह की आलोचना दृष्टि अत्यंत व्यापक फलक में विद्यमान है, जिसकी परिधि में न केवल भारतीय साहित्य आता है अपितु देशी और विदेशी साहित्य भी उसके अनुसंधान का लक्ष्य बनता है।

नामवर सिंह की आलोचना का क्षेत्र भी अत्यंत विस्तृत फलक में उपस्थित होता है। और उस फलक में आदिकालीन साहित्य से लेकर नए से नए हिंदी कवियों व लेखकों तक का साहित्य समाहित हो जाता है। एक तरफ जहाँ वे वे पृथ्वीराज रासो जैसे आदिकालीन ग्रंथों की समीक्षा करते दृष्टिगत होते हैं तो वही मुक्तिबोध और धूमिल तक की रचनाओं की विशाल काव्य परंपरा का अनुशीलन करते हुए उसकी सम्यक् समीक्षा करते हैं। यद्यपि इनके लेखन का आरंभ 'अपभ्रंश साहित्य' से माना जाता है, तथापि इन्हें नयी कविता तथा समकालीन साहित्य का समग्र मूल्यांकन करते हुए उसके विषय में सर्वाधिक सशक्त टिप्पणी करने वाला साहित्यकार माना जाता है। उनकी इन टिप्पणियों में यथार्थ बोध तथा सौंदर्य बोध दोनों का अद्‌भुत सम्मिश्रण दिखाई देता है। नामवर सिंह की प्रमुख आलोचककीय रचना में 'हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान' नामक रचना मील का पत्थर साबित होती है और उसी रचना के द्वारा उनके आलोचकीय जीवन का प्रारंभ होता है। इस रचना में अपभ्रंश साहित्य के विषय में महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ की गयी हैं और यह टिप्पणियाँ पूर्णरूपेण सुचिंतित तथा सुगठित हैं। काव्यालोचन के अलावा इन्होंने लगभग साहित्य की प्रत्येक विधा में अपनी लेखनी का प्रयोग किया है। इस अर्थ में वे अपनी समस्त रचनाओं को एक विस्तृत फलक प्रदान करते हुए दिखाई देते हैं।

बच्चन सिंह की भाषा में रचनात्मकता के पुट सहज ही उपस्थित देखे जा सकते हैं। उनकी भाषा शैली इतनी सटीक तथा भाव प्रधान है कि कविता अथवा साहित्य के अंतर्जगत से भावबोध की धारा अपने आप प्रकट होने लग जाती है। 'क्रांतिकारी कवि निराला' पुस्तक में निराला की समीक्षा में बच्चन सिंह, निराला जी की भाषा और रचना की प्रकृति का जो विवेचन प्रस्तुत करते है वह उनकी निराला की भाषा शैली न होकर स्वयं बच्चन सिंह की भाषा शैली मानी जा सकती है, जो स्वयं में उत्कृष्ट भाषा शैली का प्रमाण है। 'राम की शक्ति पूजा' हो अथवा 'तुलसीदास' तथा 'सरोज स्मृति', सभी रचनाओं में अद्‌भुत भाषा शैली का प्रयोग हुआ है, जिससे इन रचनाओं की सार्थकता स्वयं ही प्रकट हो जाती है। उनके अनेक ग्रंथों की भाषा शैली का अवलोकन करने पर हम इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं रह सकते कि उन्होंने एक उत्कृष्ट भाषा शैली का प्रयोग किया है, जिसमें देशज के साथ–साथ अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों का भी समावेश है। अपनी इसी उत्कृष्ट भाषा शैली के आधार पर ही वे अपने समीक्षा कार्य को पूर्ण कर पाने में समर्थ होते हैं। अपनी पुस्तक 'क्रांतिकारी कवि निराला' के पांचवें संस्करण–2003 के अंत में जोड़े गए परिशिष्ट–1 में 'राम की शक्ति पूजा' नाम से उनका नवीनतम निबंध प्रकाशित हुआ है, जिसमें निराला के जीवन के अनुभव के वर्णन के प्रसंग में उनकी पंक्तियाँ अवलोकित की जा सकती है, जिसमें वे लिखते हैं– ''निराला का जीवन एक लंबा असमाप्त जटिल संघर्ष है। किंतु 'धारा' की पहाड़ी नदी के तरह वह शिला खंडों से टकराता, ढहाता, राह बनाता, फिर उसी को तोड़ता–मोड़ता चलता रहा है। उसके जीवन का अनुभव वैविध्य, गहनानुभूति उसकी कविता के प्राणतत्व हैं। अतः उनकी अधिकांश कविताएं आत्मकथात्मक (ऑटोबायोग्राफिकल) हैं। इसीलिए उनमें घनीभूत भावों की गहराई और जीवन जगत की रचनात्मक सच्चाई है।''[1]

नामवर सिंह को हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में जो ख्याति प्राप्त हुई है उसका श्रेय उनकी आलोचना की रचनात्मक भाषा को ही जाता है। प्रायः देखा जाता है की आलोचना की भाषा पांडित्य से भरी होने के कारण बोझिल व नीरस हो जाती है या फिर इसे आलोचक का एक तरफा वक्तव्य बनने में देर नहीं लगती। नामवर सिंह की भाषा की सर्व प्रमुख विशेषता उसकी सृजनात्मकता के साथ–साथ पाठकों के साथ सीधा संवाद स्थापित करने की कला है। नामवर की भाषा कभी भी कर्कश स्वरूप में नहीं आती और इसी गुण के कारण वह सीधे धीरे से पाठक की चेतना में उतरकर उसे भाव बोध करा पाने में समर्थ हो जाती है। भाषा के क्षेत्र में यदि मुंशी प्रेमचंद और नामवर सिंह की तुलना की जाए तो यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार मुंशी प्रेमचंद की भाषा पाठकों से सीधा संवाद स्थापित करते हुए उनके ह्रदय तक उतर जाती थी ,उसी तरह नामवर सिंह की भाषा भी पाठक के साथ अपना जीवंत संबंध बनाए रखती है। इस क्रम में वह पाठक को अपने से कभी भी दूर नहीं होने देती और सदा उसके साथ चलने की क्षमता रखती। नामवर सिंह के भाषा की रोचकता उसमें अद्‌भुत व्यंग्यावधान के कारण और भी बढ़ जाती है जो है यदा कथा प्रसंग वश वे अपनी शैली में समाहित कर लेते हैं।

नामवर सिंह की भाषा शैली में हिंदी के अतिरिक्त और भी भारतीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है, जिसमें संस्कृत, उर्दू फारसी व अंग्रेजी के शब्द सहज भाव से आ जाते हैं। अपनी भाषा शैली को उत्कृष्ट बनाने के लिए उन्होंने लोक जीवन में प्रचलित मुहावरों तथा लोकोक्तियों का भी प्रयोग व्यापक स्तर पर किया है, जिसके कारण उनके भाषा की बोधगम्यता और भी बढ़ जाती है। लोकोक्तियाँ तथा मुहावरों का वह इस तरह से प्रयोग करते हैं कि ऐसा लगता है कि यह कोई साहित्य रचना नहीं बल्कि सामान्य बातचीत का क्रम चल रहा है। ऐसा कार्य कोई सामान्य लेखक के बस की बात नहीं है, इसे तो कोई समर्थ लेखक ही कर सकता है जिसका लोकजीवन से गहरा नाता हो। उनकी रचना शैली में अनेकों कवियों जैसे मीर, ग़ालिब, टैगोर तथा अंग्रेजी साहित्यकारों की कविताओं की पंक्तियाँ भी देखी जा सकती है, जो उनकी विशिष्ट अध्ययनशीलता तथा चिंतना शक्ति का प्रमाण है। इस तरह उनकी रचना शैली किसी पांडित्य पूर्ण प्रदर्शन के न होते हुए भी अत्यंत सृजनशील तथा सरस रूप में प्रस्तुत होती है। अरविंद त्रिपाठी ने नामवर की भाषा पर विचार करते हुए लिखा कि– ''आज जब हम उनकी आलोचना पर विचार करने बैठते हैं तो हमें उनकी आलोचना–शक्ति का बीज–तत्त्व उनकी भाषा में दिखाई देता पड़ता है। उनकी आलोचना–दृष्टि में अगर तीक्ष्णता, बेलागपन और हाजिर–जबाबी के साथ हमेशा एक ताप दिखाई देता है, तो उसके पीछे उनकी आलोचना की भाषा का बहुत बड़ा हाथ छिपा हुआ दिखाई देता है। उनकी भाषा को पढते हुए कभी आचार्य शुक्ल की स्पष्टवादिता, तत्त्व चिंतन और हाजिर–जबाबी झलकती है तो कभी महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसा शब्दानुशासन, तो कभी–कभी आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसा मस्तमौलापन–फक्कड़पन और कबीर जैसी बेहिसाब ठाठ–फकीरी झलकती है। महाकवि निराला ने गद्य की भाषा को जीवन–संग्राम की भाषा जिन अर्थों में कहा था वह नामवर सिंह की आलोचनात्मक भाषा में देखा जा सकता है। लड़ाई के मोर्चे पर लड़ते हुए सैनिकों का तुमुल–उद्‌घोष, हाहाकार की ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। नामवर सिंह की आलोचना की भाषा के तरकश में ऐसे असंख्य तीर भरे पड़े हैं। चाहे वह मुक्तिबोध को लेकर नई कविता के रणक्षेत्र में उतरने का दौर हो, या फिर नई कहानी के मूल्याकंन क्रम में निर्मल वर्मा की वकालत का सवाल हो, या फिर इधर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को लेकर 'दूसरी परम्परा की खोज' की बात हो।''[2]

राजनीति तथा साहित्य में अन्योन्याश्रित का संबंध होता है और इसी संबंध के आधार पर कोई रचना तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था के आलोक में ही फलती–फूलती है। जैसा कि हम पूर्व

में ही स्पष्ट कर चुके हैं कि बच्चन सिंह तथा नामवर सिंह दोनों लेखक मार्क्सवादी चिंतन धारा से जुड़े हुए लेखक है। इसलिए साहित्य में राजनीति के प्रभाव को काफी करीब से देखा है। राजनीति और साहित्य के संबंध पर मार्क्सवादी चिंतन धारा में भी पर्याप्त विचार मंथन हुआ है क्योंकि किसी भी रचना का दायित्व सामाजिक सत्य की तरह राजनीतिक दृष्टिकोण की भी अभिव्यक्ति करना होता है। मार्क्सवादी आलोचना के क्षेत्र में यह एक विचारणीय समस्या के रूप में सामने आता है। साहित्य को जनवादी होना चाहिए और जनवादी साहित्य का कुछ न कुछ राजनीतिक चरित्र अवश्य होता है। उसी चरित्र पर आधारित होते हुए जनकवि अपने संपूर्ण रचना कर्म करता है। जो लोग साहित्य से राजनीति के निष्कासन की बात करते हैं, वास्तविक रूप से वह भी किसी न किसी राजनीतिक दृष्टिकोण का ही शिकार होते हैं। इस तरह साहित्य जगत में एक और जहाँ कुछ लोग साहित्य के राजनीतिक आधार का समर्थन करते हैं तो वहीं कुछ लोग राजनीति को साहित्य से अलग करने की बात करते हैं। मुक्तिबोध ने कला तथा साहित्य के राजनीतिक संबंधों की व्याख्या करते हुए लिखा है– ''एक कला सिद्धांत के पीछे एक विशेष जीवन दृष्टि होती है। उस जीवन दृष्टि के पीछे एक जीवन दर्शन होता है और उस जीवन दर्शन के पीछे आज के जमाने में एक राजनीतिक दृष्टि भी लगी रहती है।''[3]

कविता में राजनीतिक विरोध अथवा समर्थन के संबंध में उल्लेख करते हुए नामवर सिंह 'आलोचना' पत्रिका के 1968 जुलाई–सितंबर अंक के संपादकीय में लिखते हैं– ''विरोध मात्र महत्वपूर्ण नहीं बल्कि महत्वपूर्ण है विरोध की यह आत्म विडंबना विडंबना का यह स्वचेतन बोध ही कवि को एक जिम्मेदारी से बांधता है, जिसके कारण कविता हर तरह के सरलीकरण से बच पाती है। गैर समाजवादी समाज में रहने वाले मार्क्सवादी जीवन दृष्टि के समर्थक कवि इसी द्वंद्वात्मक बोध के द्वारा अपने सहकर्मियों से कहीं अधिक तनावपूर्ण नाटकीयता की सृष्टि कर ले जाते हैं।''[4]

साहित्य तथा राजनीति के संबंध में नामवर सिंह का दृष्टिकोण कालांतर में परिवर्तित हो जाता है और उनके इस परिवर्तित दृष्टिकोण को 'आलोचना' के 29 संपादकीय में देखा जा सकता है जिसमें वे लिखते हैं– ''राजनीतिक परिवर्तन को लक्ष्य में रखते हुए भी एक लेखक के नाते वह अपनी रचनाओं के द्वारा सांस्कृतिक परिवर्तन की दिशा में सक्रिय होता है क्योंकि सांस्कृतिक परिवर्तन के बिना राजनीतिक परिवर्तन कठिन है।''[5]

किसी रचना का सामाजिक महत्व होता है। इस अर्थ में वह समाज की समस्याओं तथा उसमें उपस्थित संवेदनाओं तथा मूल्यों को अपने भीतर समाहित करते हुए आगे बढ़ती है। सामाजिक सरोकारों के अभाव में कोई भी रचना दीर्घ कालिक नहीं हो सकती।

बच्चन सिंह की रचनाओं में समकालीन सामाजिक समस्याएं किसी न किसी रूप में अपने आप प्रस्फुटित हो जाती हैं। उनकी रचनाओं की सर्व प्रमुख विशेषता यह है उनके द्वारा अनुभूत किया हुआ समाज तथा उससे संबंधित सामाजिक समस्याएं उनकी स्वयं की कविता के भीतर से ही प्रकट होती हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि बिहारी का देखा हुआ समाज उनकी कविताओं से ही मूर्त होता है। 'बिहारी के पुनर्मूल्यांकन' जैसी रचना में उनके गाँव संबंधी समस्याओं तथा उसकी पृष्ठभूमि की अद्‌भुत मीमांसा की गई है। एक तरफ जहाँ वे नारी को सम्मान देने के प्रति सचेत है, वही समस्त सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने की दिशा में ऐसा कार्य करते हैं जो कि अन्यतम कोई आलोचक नहीं कर सकता। उनके विचार से प्रत्येक साहित्य का एक समाजशास्त्र होता है और उसी के आधार पर साहित्य अपनी दिशा तथा दशा निर्धारित करती है। इस क्षेत्र में उनकी एक महत्वपूर्ण पुस्तक 'साहित्य का समाजशास्त्र' मील का पत्थर

साबित होती है। वे साहित्य को भी समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से ही परिभाषित करते हैं। इस प्रकार उनके साहित्य में समस्त सामाजिक सरोकार अपने आप समाहित हो जाते हैं। किसी भी रचना को केवल शिल्प सौंदर्य के आधार पर उत्कृष्ट रचना की कोटि में नहीं रखा जा सकता बल्कि उनमें जीवन मूल्यों की कसौटी पर खरा उतरने का गुण भी विद्यमान होना चाहिए। प्रकार इसी साहित्य की अन्य विधाओं जैसे कहानी आदि को मात्र शिल्प की दृष्टि से 'अच्छी' या 'सफल' कहने की बजाए जीवन–मूल्यों की कसौटी पर कसने तथा मनोरंजन की बजाए उसकी सामाजिक सार्थकता पर जोर दिया जाना चाहिए। जिससे कहानी साहित्य की केन्द्रीय विधा के रूप में स्थापित हो सके। अपनी पुस्तक 'साहित्य का समाजशास्त्र' में समाजशास्त्र के सिद्धांतों पर ही आधारित करते हुए उसे साहित्य तक में समाहित करने का प्रयास करते हैं और उसकी तुलना राजनीतिक जगत की प्रवृत्तियों से भी करते हैं– ''राजनीतिक जगत की तरह आलोचना भी दो शिविरों में बंट गई है– समाजशास्त्र का शिविर और भाषा शास्त्र का शिविर। दोनों शिविर समय–समय पर एक दूसरे पर हमला करते हैं। आलोचना का संकट यह है कि क्या उसे हर हालत में शिविरबद्ध होकर ही रहना पड़ेगा ? सही बात तो यह है कि हम न जीवन में विज्ञान और टेक्नोलॉजी से मुक्त हो सकते हैं और न साहित्य में। यदि साहित्य को अपनी रक्षा करनी है तो उसे विज्ञान और टेक्नोलॉजी से सहायता लेनी पड़ेगी। अतः साहित्य के रूपवादी दृष्टिकोण की एक तरफा भर्त्सना नहीं की जा सकती। उसमें ऐसे तत्व मौजूद हैं, जिनसे समाजशास्त्रीय आलोचना संपुष्ट और मुकम्मल होगी। इस भूमिका में मेरा लक्ष्य होगा उन तत्वों को संकेतित करना।''[6]

नामवर सिंह भी बच्चन सिंह की इस विचारधारा से सहमत दिखाई देते हैं और इसीलिए उन्होंने साहित्य के हर स्वरूप की विशेषता को रेखांकित करते हुए उसके महत्वपूर्ण तत्वों की तरफ आलोचकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। नामवर सिंह मानते हैं कि हर युग–सत्य अपने कलात्मक स्वरूपों को अपने साथ ही लेकर आता है और उसमें अभिव्यक्त सत्य की प्रकृति ही विशिष्ट होती है। उनकी दृष्टि में यह महत्वपूर्ण नहीं है कि साहित्य का कोई रूप जीवन के किसी खंड विशेष पर निर्भर है अथवा संपूर्ण जीवन को ही अपने में समेटने की शक्ति रखता है है और उसी आधार पर आगे बढता है, बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि जिस हद तक कोई रचना या कोई साहित्य स्वरूप समाज के अंदर विद्यमान अंतर्विरोधों को उद्घाटित करने का प्रयास करता है और उसके समाधान की दिशा में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत करता है।

संदर्भ :

1. डॉ0 बच्चन सिंह, क्रांतिकारी कवि निराला, परिशिष्ट 1, राम की शक्ति पूजा, पृष्ठ–185, पांचवां संस्करण–2003 (विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी)
2. अरविन्द त्रिपाठी, आलोचना की साखी, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली; प्र.सं. 2000, पृ.–43
3. मैनेजर पांडेय, आलोचना की सामाजिकता, संस्करण 2012, पृष्ठ 61, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. वही, पृष्ठ 61
5. वही, पृष्ठ 62
6. डॉ0 बच्चन सिंह, क्रांतिकारी कवि निराला, भूमिका, पांचवां संस्करण–2003 (विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी)

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

कृत्रिम प्रकाश प्रदूषण : पर्यावरण एवं पारिस्थितकी तंत्र के लिए बड़ी चुनौती

डॉ0 कौशल किशोर मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर – भूगोल विभाग
लाल विजयानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय
टिकरी, अमेठी

सारांश :–

प्रस्तुत पत्र में कृत्रिम प्रकाश प्रदूषण जैसी दिखने वाले नगण्य समस्या का कितना घातक तथा व्यापक प्रभाव हमारी पारिस्थिकी पर पड़ रहा है इसका अवलोकन किया गया है। मानव की महत्वाकांक्षाओं ने निरीह जीव जन्तुओं के लिए काल का कार्य किया है। आधुनिक सभ्यता दिखाने वाले इस प्रकार ने हमारे वैदिक सोच "सर्वे भवन्तु सुविनः" पर ही अन्धकार डाल दिया है। कृत्रिम प्रकाश प्रदूषण के कारण प्रभाव तथा समस्या के समाधान के विभिन्न आयामों पर विस्तृत चर्चा की गयी है। इस प्रदूषण का मानव के ऊपर पड़ने वाले विभिन्न नकारात्मक प्रभावों की भी व्याख्या की गयी है। भौतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण पर पड़ने वाले दूरगामी परिणामों का विश्लेषण कर इस नयी समस्या के समाधान के कुछ कारगर उपायों के द्वारा आगामी सुधारों को सुझाया गया है। प्रौद्योगिकी प्रगति, शहरों की संरचनात्मक इकाइयों तथा नये आविष्कार का पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के साथ समायोजन कर संतुलित विकास पर बल दिया गया है।

मुख्य शब्द :– कृत्रिम प्रकाश प्रदूषण, पर्यावरण, पारिस्थितकी, महत्वाकांक्षा, दुष्परिणाम, आविष्कार, जीव जन्तु, चकाचौंध, मोशन सेंसर, जैव–विविधता, औद्योगिक विकास, स्ट्रीट लाइट, मेलाटोनिन, जगमगाहट, शहर।

प्रस्तावना :–

21वीं शदी मानव की सभ्यता की चरमोत्कर्ष की सदी है किन्तु परोक्ष रूप से हमने जाने अनजाने में प्रकृति के मूल रूप को बदलने का कुत्सित प्रयास भी किया है। आधुनिकता और विकाश के नाम पर विनाश की एक प्रबल नींव रख दिया है। जिस प्रकृति एवं जीव जन्तुओं ने हमें असमर्थता के समय में सामर्थवान बनाया आज हम उनके ही समूल नाश करने का संकल्प ले लिये है। प्रकृति के मूल रूप को अपने सामर्थ एवं विवेक से परिवर्तित करने का पूर्ण प्रयास चल रहा है जिसके कारण हमारा पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी भी बहुत तेजी से बदल रहा है जिसकी अनुभूति एवं ऑकलन करने के बाद भी नीहित स्वार्थों के चलते हमने अपनी आँखे मूँद ली है। और भविष्य की पीढ़ियों के लिए रेत के टीले पर बने आवास जैसा विकास स्थापित कर दिया है। इस प्रक्रिया में हमारे सामने नित नयी–नयी समस्यायें विकराल रूप धारण कर चुकी है। जिस ज्ञान के उजाले के माध्यम से विकास के नये महत्वाकांक्षी बल्ब जला रहे है उसी उजाले में बहुत सारे जीवों के जीवन में अंधकार भी ला रहे है। वैश्विक प्रतिष्पर्धा एवं स्वार्थपरता ने प्रकृति को वेंटिलेटर पर ला खड़ा किया है जिसके परिणाम निश्चित रूप से मानव संस्कृति के लिए अंधेरा लाने को तैयार है। इंसान ने अपने मन को ही नही प्रदूषित किया है अपितु जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण एवं प्रकाश प्रदूषण को भी जन्म दिया है। कृतिम प्रकाश जिसको सभ्यता

और आधुनिकता का प्रतीक मानकर खुश होते है वही हमारे पारिस्थितकी एवं पर्यावरण के लिए अभिशाप भी है। प्रकाश प्रदूषण पर्यावरण की एक नवनिर्मित समस्या है जिससे खुद मानव, पशु और पेड़–पौधे तक प्रभावित हो रहे है। इसका मुख्य कारण रात्रि की अधिकाधिक रोशनी और आधुनिक जीवन शैली है।

जब भी इस दुनिया में कोई आविष्कार होता है, उससे सबसे अधिक नुकसान हमारे पर्यावरण को होता है। 1878 में जब बल्ब का आविष्कार हुआ, तब अंधेरे से लिप्त और उससे डरने वाली दुनिया ने उसका तहे दिल से स्वागत किया। औद्योगिक क्रांति और बल्ब के आविष्कार से ये अंधेरी दुनिया उजाले में तब्दील हो गई। देखते ही देखते रात भी दिन में बदल गए। हमारा रात का डर खत्म हुआ और हम कभी भी कहीं भी आने–जाने लगे, पहले से अधिक काम करने लगे। लेकिन इस कृत्रिम रोशनी ने एक नया प्रदूषण विकसित कर दिया है, जिसका नाम है लाइट (प्रकाश) प्रदूषण। यह पर्यावरण, जैव–विविधता के साथ–साथ मनुष्यों के लिए भी बेहद खतरनाक है। हम ध्वनि, हवा,पानी जैसे कई तरह के प्रदूषण को जानते हैं, लेकिन अभी भी ज्यादातर लोग लाइट प्रदूषण से अवगत नहीं हैं। अतः कृत्रिम प्रकाश प्रदूषण को जानना नितांत आवश्यक है।

कृत्रिम प्रकाश प्रदूषण :–

अन्य प्रदूषण की तरह यह भी नयी सभ्यता और औद्योगिक विकास की देन है. इसके मुख्यतः दो कारण है वायु प्रदूषण के साथ कृत्रिम रोशनी का गलत और बेवजह इस्तेमाल. जब प्रकाश के विभिन्न स्रोतों को गलत तरीके से लगाया जाए तो यह वायुमंडल में विद्यमान कणों से विसर्जित और बिखर कर पूरे वातावरण में फैल जाता है. इससे रात्रि का आकाश लालिमा लिए नजर आता है. जहाँ जगमगाहट ज्यादा है, वहाँ प्रकाश प्रदूषण और भी ज्यादा विद्यमान होता है। Los Angeles शहर के 1994 में आये भूकंप से शहर की पूरी बिजली स्थिति चरमरा गयी. अपनी पीढ़ी के लोगों ने पहली बार घना आकाश और उसमें सितारों को देखा. उन्होंने डरकर आपातकाल नंबर पर फोन कर आसमान में किसी रुपहले चीज के होने की आशंका जताई. दरअसल उन्होंने पहली बार यह दृश्य देखा था. वह कुछ और नहीं अपितु हमारी आकाश गंगा (Milky Way) थी और वह नभ में टिमटिमाते सितारे देख रहे थें। आज तो मेट्रो शहरों के अधिकांश बच्चे उगते सूर्य को देख ही नही पाते वे इसी कृत्रिम प्रकाश को ही प्रकाश समझते है।

वातावरण में कृत्रिम स्रोतों से प्रकाश की मात्रा इतनी अधिक हो जाती हैं कि प्रकृति पर नकारात्मक प्रभाव शुरू हो जाते हैं, तो इसी को प्रकाश प्रदूषण कहते हैं. प्रकाश प्रदूषण न केवल मानव प्रजाति पर दुष्प्रभावित होता हैं, बल्कि पौधों की वृद्धि और जानवरों के जनन पर भी गलत असर डालता हैं. प्रकाश प्रदूषण को लुमिनस पौल्यूशन (Luminous Pollution) या Photo Pollution नाम से भी जाना जाता हैं। अन्य प्रदूषण की तरह यह भी नयी सभ्यता उत्तरी अमेरिका, यूरोप, मध्य पूर्व और एशिया के विशाल क्षेत्र प्रकाश से चमक रहे है, जबकि पृथ्वी पर केवल सबसे दूरस्थ क्षेत्र (साइबेरिया, सहारा और अमेजॅन) पूर्ण अंधकार में था. दुनिया के सबसे अधिक प्रकाश–प्रदूषित देश सिंगापुर, कतर और कुवैत हैं.पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाला अधिकांश प्रकाश मानव द्वारा किये गए अविष्कारों से आता हैं। उदाहरण के लिए ऑटोमोबाइल, सडको पर लगाई गई रौशनी या इलेक्ट्रिक लाइटबल्ब कभी पृथ्वी पर सवेरे के पहले और सांझ के बाद कभी अँधेरा नहीं होने देती हैं. ऐसे में अगर चाइना अगर खुद का चाँद बनाएगा, तो वहां के पेड़ पौधे, वहां पर रहने वाले जीव–जंतु, यहाँ तक इन्सान भी चैन की नींद नहीं सो पाएंगे।

कृत्रिम प्रकाश प्रदूषण का पर्यावरण एवं परिस्थितकी पर पड़ने वाले प्रभाव का ऑकलन :–

लम्बे समय के लिए प्रकाश प्रदूषण एक गंभीर समस्या हो सकती हैं. उल्लू केवल अँधेरा में ही देख सकता हैं, ठीक ऐसे ही अनेक प्रजातियाँ जिनके क्रियाकलाप केवल रात को होते हैं, लेकिन प्रकाश प्रदूषण की स्थिति ने रात को हमेशा के लिए खत्म कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप जानवरों और पक्षियों की जनन क्रिया इत्यादि में बाधा उत्पन्न होती हैं जिससे परिस्थितकी तंत्र पर बहुत बड़ा खतरा उत्पन्न हो गया है। यहाँ कृत्रिम प्रकाश प्रदूषण के अन्य प्रभावों का विश्लेषण हम करेंगे।

1.लोगों और जानवरों पर प्रभाव :–

पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों के डीएनए में एक विशेष सर्केडियन लय(रिधम) होती है, जो यह तय करता हैं दिन के वक्त हमको प्रकाश की आवश्यकता होती हैं, और रात के समय अँधेरा की आवश्यकता होती हैं. जब ये प्राकृतिक सर्केडियन लय बाधित हो जाते हैं, तो यह स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है और कैंसर, ह्रदय रोग, अवसाद और अनिद्रा का कारण बन सकता है। कृत्रिम रोशनी हमारे प्राकृतिक दिन–रात के पैटर्न को बाधित करती है और हमारे पर्यावरण के नाजुक संतुलन को बदल देती है। यह हमारे सोने के साइकल को बदलता है जिससे हमें कम नींद आना, नींद नही आना, गहरी नींद न आना, सिरदर्द, आँखों में दिक्कत आदि समस्याएँ उत्पन्न करती है। सदी के मोड पर यह पता चला कि मानव आँखों में एक गैर–इमेजिंग फोटोसेंसर होता है जो मानव सर्केडियन लय का प्राथमिक नियामक है। यह प्रकाश संवेदक नीले प्रकाश से विशेष रूप से प्रभावित होता है, और जब यह प्रकाश को देखता है तो पीनियल ग्रंथि मेलाटोनिन के स्राव को रोक देती है। मानव आवासों में (या शिफ्ट श्रमिकों के लिए) रात में प्रकाश की उपस्थिति सोने को और अधिक कठिन बना देती है और रक्तप्रवाह में मेलाटेनिन के समग्र स्तर को कम कर देती है, और 39 मिनट के लिए निम्न–स्तर के गरमागरम बल्ब के संपर्क में आना मेलाटोनिन के स्तर को दबाने के लिए पर्याप्त है 50% तक। क्योंकि मेलाटोनिन एक शक्तिशाली है एंटी ऑक्सीडेंट यह अनुमान लगया गया है कि इस कमी के परिणामस्वरूप स्तन और प्रोस्टेट कैंसर का खतरा बढ़ सकता है। अन्य मानव स्वास्थ्य प्रभावों में सिरदर्द की घटनाओं में वृद्धि, कार्यकर्ता थकान, चिकित्सकीय रूप से परिभाषित तनाव, यौन क्रिया में कमी और चिंता में वृद्धि शामिल हो सकती है। इसी तरह, पशु मॉडल का अध्ययन किया गया है जो मूड और चिंता पर प्रतिकूल प्रभाव पैदा करने के लिए अपरिहार्य प्रकाश का प्रदर्शन करते हैं।

2. पर्यावरण और पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव :–

केवल अकेला स्काई ग्लो पर्यावरण संरक्षण में नुकसान का कारण बन सकता है क्योंकि वातावरण से निकलने वाली uv-किरणों को पृथ्वी तक पहुंचने में सहायता करता हैं। यह विकास और प्रकृति के चक्र को बाधित करता है जिस पर हमारा भोजन, वायु और जल कि आपूर्ति निर्भर करती है। पौधे भी रात को विश्राम करते हैं, क्योंकि पृथ्वी का पारिस्थितिकी तंत्र प्राकृतिक प्रकाश (सूर्य) के चक्रों पर निर्भर है। चूंकि ये पारिस्थितिक तंत्र आमतौर पर अपने पर्यावरण में परिवर्तन के प्रति काफी संवेदनशील होते हैं इस कारण मानव निर्मित प्रकाश प्रदूषण पारिस्थितिकी तंत्र पर कुप्रभाव डालता है।

जीवों पर कृत्रिम प्रकाश का प्रभाव अत्यधिक परिवर्तनशील होता है और लाभकारी (उदाहरण के लिए शिकारी प्रजातियों के शिकार को देखने की क्षमता में वृद्धि) से लेकर तुरंत घातक (जैसे पतंगे जो गरमागरम लालटने की ओर आकर्षित होते हैं और गर्मी में मारे जाते हैं) तक होते हैं। यह भी संभव है कि रात में प्रकाश एक प्रजाति के लिए फायदेमंद और हानिकारक

दोनों हो। एक उदाहरण के रूप में, मनुष्यों को काम और खेलने के लिए उपलब्ध समय का विस्तार करने के लिए इन्डोर कृत्रिम प्रकाश का उपयोग करने से लाभ होता है, लेकिन प्रकाश मानव सर्कैडियन लय को बाधिक करता है और परिणामी तनाव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। अलग–अलग प्रजातियों पर प्रकाश प्रदूषण के विभिन्न प्रभावों के माध्यम से, क्षेत्रों की पारिस्थितिकी प्रभावित होती है। ऐसे मामले में जहां दो प्रजातियां एक समान स्थान पर कब्जा कर लेती हैं, प्रत्येक प्रजाति की जनसंख्या आवृत्ति को कृत्रिम प्रकाश की शुरूआत से बदला जा सकता है यदि वे रात मे प्रकाश से समान रूप से प्रभावित नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए मकडियों की कुछ प्रजातियां रोशनी वाले क्षेत्रों से बचती हैं जबकि अन्य प्रजातियां स्वेच्छा से सीधे लैंप पोस्ट पर जाले बनाती हैं। चूंकि लैंप पोस्ट कई उड़ने वाले कीडों को आकर्षित करते हैं, प्रकाश को सहन करने वाली मकड़ियों को इससे बचने वाली मकड़ियों पर लाभ मिलता है और परिणामस्वरूप पर्यावरण में अधिक प्रभावी हो सकती हैं। इन प्रजातियों की आवृत्तियों में परिवर्तन के बाद प्रभाव पड़ सकता है, क्योंकि इन प्रजातियों और पारिस्थितिकी तंत्र में अन्य लोगों के बीच बातचीत प्रभावित होती है और खाद्य जाले बदल जाते हैं। ये तरंग प्रभाव अंततः दैनिक पौधों और जानवरों को प्रभावित कर सकते हैं। एक उदाहरण के रूप में रात में सक्रिय कीटों की गतिविधि में परितर्वन रात में खिलने वाले पौधों की जीवित रहने की दर को बदल सकता है, जो दैनिक जानवरों के लिए भोजन या आश्रय प्रदान कर सकता है।

रात में कृत्रिम प्रकाश की शुरूआत पृथ्वी पर सबसे कठोर मानवजनित परिवर्तनों में से एक है, जिसकी तुलना जहरीले प्रदूषण, भूमि उपयोग परिवर्तन और ग्रीन हाउस गैंसों की सांद्रता में वृद्धि के कारण जलवायु परिवर्तन से की जा सकती है। प्रकाश प्रदूषण दिन के दौरान सक्रिय जानवरों और पौधों को भी प्रभावित कर सकता है, जैसा कि स्ट्रीट लैंप के पास मकड़ी के जाले में पकड़े गए निशाचार कीटों को चुराने वाले ये दैनिक ततैया प्रदर्शित करते हैं।

खगोल विज्ञान तथा तारों के अध्ययन पर विशेष प्रभाव :–

कृत्रिम प्रकाश की शुरूआत कई प्राकृतिक प्रकाश चक्रों को बाधित करती है जो पृथ्वी, चंद्रमा और सूर्य के आंदोलनों के साथ–साथ मौसम संबंधी कारकों से उत्पन्न होते हैं। रात में प्रकाश की शुरूआत में सबसे स्पष्ट परिवर्तन सामान्य रूप से अंधेरे का अंत है। दिन/रात का चक्र शायद सबसे शक्तिशाली पर्यावरणीय व्यवहार संकेत है, क्योंकि लगभग सभी जानवरों को निशाचर या दैनिक के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। यदि एक निशाचर जानवर केवल अत्यधिक अंधेरे में सक्रिया है, तो वह रोशनी वाले क्षेत्रों में जीवित रहने में असमर्थ होगा। सबसे तीव्र प्रभाव सीधे स्ट्रीटलाइट्स और रोशनी वाली इमारतों के बगल में होते हैं, लेकिन स्काईग्लों का फैला हुआ प्रकाश शहर के केंद्रों से सैकड़ों किलोमीटर दूर तक फैल सकता है।

पृथ्वी के अक्षीय झुकाव का परिणाम कटिबंधों के बाहर के मौसमों में होता है। दिन की लंबाई में परिवर्तन, या प्रकाशकाल, गैर–उष्णकटिबंधीय जानवरों और पौधों में मौसमी व्यवहार (जैसे संभोग के मौसम) के लिए महत्वपूर्ण संकेत है। रात में प्रकाश की उपस्थिति के परिणामस्वरूप "समय से बाहर मौसम" हो सकता है, प्रभावित जीवों के व्यवहार, थर्मोरेग्यूलेशन और हार्मोनल कामकाज में बदलाव हो सकता है। इसके परिणामस्वरूप शरीर के कामकाज और मौसम के बीच का डिस्कनेक्ट हो सकता है, जिससे प्रजनन, निष्क्रियता और प्रवासन में बाधा उत्पन्न हो सकती है।

कुछ जानवरों (जैसे कोयोट्स, चमगादड़, टोड, कीड़े) का व्यवहार चंद्र चक्र के लिए महत्वपूर्ण है। शहरों के केंद्रों के पास स्काईग्लो का स्तर अक्सर पूर्णिमा के स्तर से अधिक हेाता

है, इसलिए रात में प्रकाश की उपस्थिति इन व्यवहारों को बदल सकती है, संभावित रूप से फिटनेस को कम कर सकती है।

प्राचीन क्षेत्रों में, बादल सितारों को मिटा देते हैं और रात के आकाश को काला कर देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप सबसे अंधेरी रातें होती हैं। शहरी और उपनगरीय क्षेत्रों में, इसके विपरीत, बादल आकाश की चमक के प्रभाव को बढ़ाते हैं, विशेष रूप से लंबी तरंग दैर्ध्य के लिए इसका मतलब है कि प्रकाश का विशिष्ट स्तर शहरों के पास बहुत अधिक है, लेकिन इसका मतलब यह भी है कि वास्तव में इन क्षेत्रों में अंधेरी रातें कभी नहीं होती हैं। शहरी और उपनगरीय पारिस्थितिक तंत्र में प्रकाश के स्तर पर बादलों का प्रभाव प्राचीन क्षेत्रों में होने वाली घटनाओं से पूरी तरह उलट है।

हब्बल टेलिस्कोप अन्तरिक्ष में सिर्फ इसलिए नहीं छोड़ा गया क्यूंकि वह सितारों के नजदीक जा सके (एक गलत धारणा). इसका मुख्य कारण था टेलिस्कोप का कम से कम व्यापक रोशनी से संपर्क. कई खगोलीय प्रयोगशाला भी सुदूर क्षेत्र में इसलिए ही बनाये जाते हैं कि प्रकाश का कोई हस्तक्षेप न हो। शहरों के ऊपर आसमान में अब तारों का ज्यादा न दिखना नुकसान प्रतीत न हो, पर हम तारा प्रेमियों को यह जरूर दुखी करता है. हम तो अपने बच्चों को ले जाकर यह भी नहीं दिखा सकते की यह अमुक तारा समूह है। (जैसा की मैंने कभी अपने बचपन में देखा था) ऐसा ही चलता रहा तो शहरी क्षेत्र से कुछ दिनों में तारों का दिखना दुर्लभ दृश्य होगा इसे कुछ ऐसे भी समझ सकते हैं. अगर आप किसी सिनेमा हॉल में जाते हैं तो फिल्म दिखाने के दौरान सभी बत्तियाँ और दरवाजे बंद कर दिए जाते हैं ताकि पूरा थिएटर अंधकारमय हो जाए और स्क्रीन सूस्पष्ट दिखे. हम आज आसमान में सही से तारे इसलिए नहीं देख पाते क्योंकि हमने आवश्कता से अधिक 'बत्ती' जला रखी है जिससे हमारी खगोलीय स्क्रीन धुंधली हो चुकी है।

पक्षियों तथा पशुओं पर दुष्प्रभाव :–

रात्रि में भी प्रकाश के कारण कई पक्षी यह फैसला नहीं ले पाते कि सुबह है या रात. यही नहीं, यह उन प्रवासी पक्षियों को भी दिग्भ्रमित करता है जो साल में मौसम के अनुसार स्थान बदलते हैं। दरअसल वह चाँद और तारों को देख दिशा का पता लगाते हैं और किसी प्रकाशीय प्रान्त से गुजरते वक्त उनके स्थिति का सही आभास नहीं हो पाता। कई बार वह या तो इसी भ्रम में देर से या बहुत पहले निकल जाते हैं तथा बाद में गंतव्य स्थान पर अनुकूल मौसम न पाकर कई बार मर भी जाते हैं. और अगर बच भी गए तो नीड़ निर्माण तथा प्रजनन प्रक्रिया के बाधित होने से उनपर फिर से असर पड़ता ही है। वहीं पशु जहाँ धूप में अपनी छाया को देख स्थान का पता लगाते हैं, वहीँ रात्रि के अनावश्यक प्रकाश उनके इस प्राकृतिक गुण को क्षीण करते हैं। प्रकाश प्रदूषण के कारण प्रतिवर्ष लाखों प्रवासी पक्षी मारे जाते हैं।

कृत्रिम प्रकाश के लिए कीड़ों का आकर्षण जीवों पर रात में प्रकाश के प्रभाव के सबसे प्रसिद्ध उदाहरणों में से एक है। जब कीट दीये की ओर आकर्षित होते हैं तो उन्हें थकावट या स्वयं दीपक के संपर्क में आने से मारा जा सकता है, और वे चमगादड़ जैसे शिकारियों के लिए भी असुरक्षित होते हैं। प्रकाश की अलग–अलग तरंगदैर्ध्य से कीड़े अलग तरह से प्रभावित होते हैं, और कई प्रजातियां पराबैंगनी और अवरक्त प्रकाश देख सकती हैं जो मनुष्यों के लिए अदृश्य हैं। धारणा में भिन्नता के कारण, कम दबाव वाले सोडियम–वाष्प लैंप द्वारा उत्सर्जित पीली रोशनी की तुलना में पतंगे व्यापक स्पेक्ट्रम सफेद और नीले प्रकाश स्रोतों की ओर अधिक आकर्षित होते हैं।

दबे हुए प्रकाश बॉक्स के आकर्षण से मारे गए कीड़े :–

पतंगों की मिश्रित आँख के कारण प्रकाश के प्रति घातक आकर्षण होता है। ड्रैगनफलीज क्षैतिज रूप से ध्रुवीकृत प्रकाश को पानी के संकेत के रूप में देखते हैं। इस कारण से, ध्रुवीकृत प्रकाश प्रदूषण के साथ डामर सड़कों से पानी के स्रोत अप्रभेद्य हैं। या तो पीने के लिए या जिसमें अंडे देने के लिए पानी की तलाश में ड्रैगनफलीज अक्सर सड़कों पर या कारों जैसी अन्य अंधेरे समतल परावर्तक सतहों पर उतरती हैं और निर्जलीकरण और अतिताप से मरने तक वहीं रहती हैं। एक बार जब वे प्रेमालाप के लिए अपने स्वयं के प्रकाश पर निर्भर होते हैं, तो प्रकाश प्रदूषण जुगनू के संभोग अनुष्ठानों में बाधा उत्पन्न कर सकता है, जिसके परिणामस्वरूप आबादी में कमी आती है। जुगनू करिश्माई होते हैं (जो कीड़ों के बीच एक दुर्भभ गुण है) और गैर–विशेषज्ञों द्वारा आसानी से देखा जाता है, इस प्रकार जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिए अच्छी प्रमुख प्रजातियां प्रदान करते हैं। निशाचर वन्य जीवन पर प्रकाश के प्रभाव के लिए अच्छे जांच मॉडल, और अंत में, उनकी संवेदनशीलता और पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया के कारण, कृत्रिम रात की रोशनी के लिए अच्छे बायोइंडिकेटर है।

ऊँची संरचनाओं पर रोशनी प्रवासी–पक्षियों को भटका सकती है जिससे उनकी मृत्यु हो सकती है। अनुमानित 365–988 मिलियन घातक पक्षी इमारतों के साथ टकराव उत्तरी अमेरिका में प्रतिवर्ष होते हैं, जिससे मानव निर्मित संरचनाएँ पक्षी प्रजातियों में गिरावट के लिए एक बड़ा योगदानकर्ता हैं। रात में कृत्रिम प्रकाश उत्सर्जित करने वाले कांच का सतह क्षेत्र इमारतों के साथ घातक पक्षियों के टकराव का एक प्रमुख कारक है, और रात में रोशनी बंद करने से इन मौतों को कम किया जा सकता हैं। फेटल लाइट अवेयरनेस प्रोग्राम (FLAP) टोरंटो, कनाडा और अन्य शहरों में भवन मालिकों के साथ काम करता है ताकि प्रवासन अवधि के दौरान रोशनी बंद करके पक्षियों की मृत्यु दर को कम किया जा सके।

वर्ल्ड ट्रेड मेमोरियल सर्चलाइट्स से भ्रमित प्रवासी पक्षी :–

अपतटीय उत्पादन और ड्रिलिंग सुविधाओं के करीब पलायन करने वाली पक्षी प्रजातियों के लिए भी इसी तरह का भटकाव देखा गया है। Nederlandse Aardoli Maatschappij bv (NAM) और Shell द्वारा किए गए अध्ययनों से उत्तरी सागर में नई प्रकाश तकनीकों का विकास और परीक्षण हुआ है। 2007 की शुरूआत में, शेल प्रोडक्शन प्लेटफॉर्म L15 पर रोशनी लगाई गई थी। यह प्रयोग एक बड़ी सफलता साबित हुआ क्योंकि चबूतरे का चक्कर लगाने वाले पक्षियों की संख्या 50-90% की गिरावट आई है। किशोर समुद्री पक्षी भी रोशनी से विचलित हो सकते हैं क्योंकि वे अपने घोंसले छोड़कर समुद्र में उड़ जाते हैं। रात में पक्षी कई कारणों से पलायन करते हैं। गर्मी के दिनों में पानी को डिहाइड्रेशन से बचाएं और पक्षी के नेविगेशन सिस्टम का हिस्सा किसी न किसी तरह से तारों के साथ काम करता है। रात के आकाश में शहर की रोशनी के साथ, पक्षी (और स्तनधारियों के बारे में भी) अब सितारों द्वारा नेविगेट नहीं करते हैं। सीलोमीटर (सर्चलाइट) पक्षियों के लिए विशेष रूप से घातक जाल हो सकते हैं, क्योंकि वे बीम में फंस जाते हैं और अन्य पक्षियों के साथ थकावट ओर टकराव का जोखिम उठाते हैं। सबसे खराब रिकॉर्ड किए गए सीलोमीटर किल–ऑफ में, 7–8 अक्टूबर, 1954 को, वार्नर रॉबिन्स एयर फोर्स बेस में 53 विभिन्न प्रजातियों के 50,000 पक्षी मारे गए थे। समुंदर के किनारे के विकास से रोशनी समुद्री कछुए की माताओं को पीछे हटा देती है, और उनके बच्चे समुद्र के बजाय सड़क और होटल की रोशनी के लिए मोटे तौर पर आकर्षित होते हैं।

पौधों पर हानिकारक असर :–

हम सभी को मालूम है कि पेड़–पौधे 'फोटोसिंथेसिस' की क्रिया द्वारा अपना भोजन बनाते हैं और रात्रि का अंधेरा उन्हें एक महत्वपूर्ण यौगिक तैयार करने में मदद करता है जिसे हम 'फाइटोक्रोम' के नाम से जानते हैं. हर वक्त मिल रही रोशनी से उनके यह गुण और प्रक्रिया बाधित होती है यही नहीं, ऋतू में आये बदलाव को पौधे दिन और रात की अवधी से ज्ञात करते हैं. परन्तु अगर प्रकाश उन्हें अनियमित ढंग से मिले तो उनके लिए यह फर्क करना थोडा मुश्किल हो जाता है. यह उन वनचरों पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है जो पेड़ पौधों पर तथा इसके मौसमी बदलाव आश्रित हैं।

कृत्रिम प्रकाश व्यवस्था का पेड़ों और पौधों पर कई नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं, विशेष रूप से पतझड़ और शरद ऋतु के फेनोलॉजी में। पेड़ और जड़ी–बूटी वाले पौधे फोटोपेरियोड या दिन में उस समय की मात्रा पर निर्भर करते हैं, जहा प्रकाश संश्लेषण के लिए सूर्य का प्रकाश उपलब्ध होता है। बदलते मौसमों को निर्धारित करने में मदद करने के लिए जब धूप के घंटे कम हो जाते हैं, तो पौधे पहचान सकते हैं कि शरद ऋतु चल रही है और सर्दियों की सुस्ती की तैयारी शुरू कर देते हैं। उदाहरण के लिए, पर्णपाती पेड़ प्रकाश की विभिन्न तरंगदैर्ध्य को अधिकतम करने के लिए अपनी पत्तियों के रंग को बदलते हैं जो अंततः गिरने से पहले गिरने में अधिक प्रचलित होते हैं क्योंकि प्रकाश संश्लेषण के लिए प्रकाश बहुत दुर्लभ हो जाता है। जब पर्णपाती होते हैं क्योंकि प्रकाश संश्लेषण के लिए प्रकाश बहुत दुर्लभ हो जाता है। जब पर्णपाती पेड़ प्रकाश प्रदूषण के संपर्क में आते हैं, तो वे सूर्य के प्रकाश के लिए कृत्रिम प्रकाश की गलती करते हैं और बाद में पतझड़ के मौसम में अपनी हरी पत्तियों को बनाए रखते हैं। यह पेड़ के लिए खतरनाक हो सकता है, क्योंकि यह प्रकाश संश्लेषण की कोशिश में ऊर्जा बर्बाद करता है जिसे सर्दियों में जीवित रहने के लिए संरक्षित किया जाना चाहिए। प्रकाश प्रदूषण भी पत्ती रंध्र का कारण बन सकता है रात में खुला रहता है, जिससे पेड़ संक्रमण और बीमारी की चपेट में आ जाता है। इसी तरह वसंत ऋतु मे प्रकाश प्रदूषण भी पेड़–पौधों के लिए खतरनाक हो सकता है। कृत्रिम प्रकाश पौधों को यह सोचने का कारण बनता है कि वसंत आ गया है और फिर से प्रकाश संश्लेषण के लिए पत्तियों का उत्पादन शुरू करने का समय आ गया हैं। हालांकि, नई पत्ती की कलियों का समर्थन करने के लिए तापमान अभी तक पर्याप्त गर्म नहीं हो सकता है, और वे ठंण्ड के लिए अतिसंवेदनशील होते हैं, जो भविष्य के पत्ते के उत्पादन को कम कर सकते हैं। कृत्रिम प्रकाश के संपर्क में आने वाले छोटे शाकाहारी पौधे संभावित रूप से अधिक जोखिम का सामना करते हैं, क्योंकि उनके शरीर का अधिक भाग प्रकाशित होता है। इसलिए केवल जड़ प्रणाली को संरक्षित किया जाता है, और संभवतः पूरे पौधे को बनाए रखने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है क्योंकि यह गिरावट और सर्दियों के माध्यम से हरे रहने की कोशिश करता है।

जलीय पर्यावरण पर प्रभाव :–

जोप्लांकटन (जैसे डैफनिया) डायल वर्टिकल माइग्रेशन प्रदर्शित करता है। यही है, वे पूरे दिन झीलों के अंदर अपनी ऊर्ध्वाधर स्थिति को सक्रिय रूप से बदलते रहते हैं। मछलियों वाली झीलों में, उनके प्रवास का प्राथमिक चालक हल्का स्तर होता है, क्योंकि छोटी मछलियाँ दृष्टिगत रूप से उनका शिकार करती हैं। स्काईग्लों के माध्यम से प्रकाश की शुरूआत उस ऊंचाई को कम कर देती है जिस पर वे रात के दौरान चढ़ सकते हैं। क्योंकि जोप्लांकटन शैवाल बनाने वाले फाइटोप्लांकटन पर फीड करते हैं, फाइटोप्लांकटन पर उनके शिकार में कमी से शैवाल के खिलने की संभावना बढ़ सकती है, जो झीलों के पौधों को मार सकती है और कम कर सकती

है। प्रकाश प्रदूषण मछलियों की कुछ प्रजातियों के प्रवास को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, किशोर चिनूक सामन कृत्रिम प्रकाश द्वारा आकर्षित और धीमा हो जाता है। यह संभव है कि कृत्रिम प्रकाश उन्हें तटरेखा के करीब ले जाए, जहां उन्हें पक्षियों और स्तनधारियों के शिकार होने का अधिक खतरा होता है। कृत्रिम प्रकाश व्यवस्था भी मछली के अधिक घनत्व को आकर्षित करती है, जिसका किशोर मछली की धीमी गति के कारण लाभ होता है। प्रकाश प्रदूषण का भी कुछ मछलियों के हार्मोनल कामकाज पर प्रभाव पड़ता है; ग्रामीण वातावरण में कृत्रिम प्रकाश व्यवस्था के संपर्क में आने पर यूरोपीय पर्च और रोच दोनों प्रजनन हार्मोन के उत्पादन में कमी का अनुभव करते हैं। कृत्रिम प्रकाश को उच्च आर्कटिक में मछली (और जोप्लांकटन) में व्यवधान पैदा करने के लिए भी दिखाया गया है, जहाँ रोशनी वाली मछली पकड़ने वाली नौकाओं के परिणामस्वरूप पानी की सतह से 200 मीटर नीचे मछली की कमी होती है।

मानव शरीर पर प्रभाव :–

ईश्वर ने हमारा देह तथा इसका विकास प्रकृति के कुछ नियमों के तहत किया है। हम दिवा–रात्रि के उस ताल से पोषित–पल्लवित हुए हैं जो मानव के अस्तित्व में आने के समय से है. हमारी जैविक घड़ी भी इसी के अनुसार चलती है. चूँकि हम भी धीरे–धीरे 'अंधकार' से दूर होने लगे हैं, तो यह भी हमें कई बिमारियों का ग्रास बना रहा है। यह बात पर्याप्त नींद लेने की नहीं, परन्तु रात्रि में भी प्रकाश के समक्ष होने से है जो अप्रकृतिक है। हमारे शरीर में 'मेलाटोनिन' नामक एक हॉर्मोन का निर्माण तभी संभव होता है जब नेत्रों को अंधकार का संकेत मिलता है. इसका काम शरीर की प्रतिरोध क्षमता से लेकर कोलेस्ट्रोल में कमी अथवा अन्य अति–आवश्यक कार्यों का निष्पादन है जो एक स्वस्थ शारीर के लिए अहम है। ज्ञातव्य हो कि कंप्यूटर स्क्रीन से निकल रहा प्रकाश भी उपरोक्त बाधा में अपनी भूमिका निभाता है (जो एक नीली रोशनी का स्रोत है). इसलिए देर रात जागकर इसपर काम करना सिर्फ आँखें ही नहीं, समस्त शरीर के लिए नुकसानदायक है। प्रकाश प्रदूषण या अत्यधिक प्रदीप्ति के अन्य कई दुष्प्रभाव भी हैं. जैसे मान लीजिये आप रात के फुर्सत में बालकनी से क्षितिज या असमान को निहारने गए और कुछ न दिख कर लाल/नारंगी आकाश ही दिखता रहे तो यह मनोवैज्ञानिक असर भी डालता है. हम अपने बच्चों को तारा समूह इतिहास के तौर पर पढ़ाएंगे, विज्ञान या खगौल–शास्त्र के तहत नहीं।

कृत्रिम प्रकाश प्रदूषण का समाधान एवं उपाय :–

प्रौद्योगिकी में प्रगति और कृत्रिम प्रकाश तक पहुंच ने शहरों की सड़कों रामजार्गों और प्रमुख केंद्रों को रोशन करके उनकी भव्यकता को चित्रित करने में सुविधा प्रदान की है। हालांकि, शहरों को रोशन करने मे ंस्रोतों के रूप में उपयोग की जाने वाली शक्तिशाली कृत्रिम रोशनी प्रकाश प्रदूषण का कारण बनती है। मुख्य रूप से रात के दौरान बाहरी वातावरण में प्राकृतिक प्रकाश व्यवस्था के परिवर्तन के संबंध में है। यहां तक कि शानदार स्मारकों को रोशन करने के लिए उपयोग की जाने वाली शानदार संरचनात्मक रोशनी भी हानिकारक प्रभाव पैदा करती है और प्रकाश प्रदूषण को तेज करती है। जबकि संरचनात्मक प्रकाश व्यवस्था ने पिछले कुछ दशकों में लोकप्रियता हासिल की है क्योंकि यह संरचना को सुशोभित करती है और इसे यात्री के लिए सुरक्षित बनाती है। विशिष्ट रोशनी जो इन बड़ी संरचनात्मक इमारतों या स्मारकों को एक शानदार रोशनी देने के लिए उपयोग की जाती है, उन्हें आर्किटेक्चरल आरजीबी लाइटिंग कहा जाता है, यह लाल, नीले और हरे रंग के एल ई डी का एक संयोजन है जो 16 मिलियन से अधिक प्रकाश का उत्पादन करता है। ये प्रकाश स्पॉटलाइट में सेट करते समय एक मात्र निर्माण

के लिए एक चरित्र देते हैं। हालांकि, व्यापक संदूषण इमारतों, स्मारकों, स्ट्रीटलाइट्स, पार्किंग स्थल, मॉल, कार्यालय भवनों आदि से संयुक्त प्रकाश के कारण होता है। हालांकि यह रात के आसमान में चमक जोड़ता है लेकिन ऊर्जा की बर्बादी और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में योगदान जैसे कई मूलभूत मुद्दों को जन्म देता है। यह जैविक लय, पारिस्थितिक तंत्र और जैव विविधता को बाधित करता है। कृत्रिम प्रकाश के लगातार संपर्क में रहने के कारण यह मानव चयापचय और नींद के साथ हस्तक्षेप भी करता है। इसके बाद, इसके कारण होने वाली चिंताओं को दूर करना और उन तरीकों का पता लगाना बहुत महत्वपूर्ण है जिनके माध्यम से हम संरचनात्मक प्रकाश व्यवस्था को फिर से परिभाषित कर सकते हैं। प्रकाश प्रदूषण को कम करने वाले उत्पादों को लगातार बनाकर कंपनियों के लिए एक स्थायी पर्यावरण की दिशा में काम करना महत्वपूर्ण है। निम्नलिखित कुछ अन्य तरीके हैं जो हमें प्रकाश प्रदूषण से प्रभावी ढंग से निपटने में सक्षम बनाते हैं।

मोशन सेंसर्स आउटडोर लैंप प्रदान करनाः अंधेरे के घंटों के दौरान पर्याप्त रोशनी लोगों की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है। अच्छी रोशनी वाली जगहें शहर के चारों ओर घूमते समय लोगों को सुरक्षित महसूस कराकर उनकी मदद करती हैं। हालांकि, ऐसे समय होते हैं जब सड़कें खाली होने पर प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती है, ऐसे मामलों में गति संवेदी बल्बों का उपयोग, जो आंदोलन का पता चलने पर प्रकाश करते हैं, इस प्रकार के प्रदूषण को कम करने के साथ–साथ समग्र रूप से कटौती करेंगे। बिजली की लागत दूसरा तरीका यह है कि औसत रोशनी के स्तर को कम करने और भी अधिक ऊर्जा बचाने के लिए डिमर्स और टाइमर का उपयोग किया जाए। सूक्ष्म रूप से तैयार, कम चमक वाले जुड़नार, बाहरी रोशनीः बाजार में उपलब्ध बाहरी प्रकाश व्यवस्था के लिए कई विकल्प हैं। इस प्रकार, कम चमक वाले लोगों को चुनने से कम प्रदूषण और अनावश्यक अत्यधिक चमक की गारंटी होगी।

एलईडी लाइट का उपयोग गर्म रंग के एलईडी बल्ब और कॉम्पैक्ट फ्लोरेसेंट (सीएफएल) का उपयोग हमारे पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा करने का एक शानदार तरीका है क्योंकि यह ऊर्जा के उपयोग को कम करता है। आर्किटेक्चरल एलईडी लाइटिंग दृश्यता को जोखिम में डाले बिना कम चमक की अनुमति देती है। इस प्रकार, प्रकाश प्रदूषण के स्तर को कम करने की दिशा में योगदान देने के लिए, उच्च गुणवत्ता वाले, यांत्रिक रूप से उन्नत और पर्यावरण के अनुकूल उत्पादों को भुनाना महत्वपूर्ण है। हम नवीन समाधानों और आधुनिक तकनीक के उपयोग की मदद से अपने प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा में आसानी से परिवर्तनकारी बन सकते हैं। महामारी के समय ने हमें सामूहिक रूप से रीसेट बटन को हिट करने और अधिक लचीला और टिकाऊ दुनिया बनाने के लिए संशोधन करने का एक असाधारण अवसर प्रदान किया है।

प्रकाश प्रदूषण को हल करने के लिए दो बुनियादी दृष्टिकोण हैं – योजना और जागरूकता, प्रकाश के स्रोत को इस प्रकार लगाया जाना चाहिए ताकि ऊर्जा का संरक्षण हो सकें, लोगों को कम से कम समस्या हो, इसलिए घर के अन्दर उपयोग होने प्रकाश स्रोतों, सड़कों पर स्ट्रीट–लैंप को अधिक कुशलता वाले बल्बों से प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए, यहाँ पर कुछ प्रकाश प्रदूषण को कम करने के लिए उपाय दिए गए हैं।

1. **लाइट बंद रखे :–** जितने अधिक लोग ऊर्जा संरक्षण और प्रकाश प्रदूषण को कम करने के लिए जितनी बार संभव हो रोशनी बंद करने के महत्व को समझेंगे, उतनी ही तेजी से बदलाव देखा जाएगा, यह प्रकाश प्रदूषण के प्रतिकूल प्रभावों को रोकने के सबसे आसान और सबसे प्रभावी तरीकों में से एक है।

2. **कट ऑफ लाइट :–** कुछ समय के लिए उन इलाकों के प्रकाश को पूर्णतया बंद कर देना चाहिए जहाँ इसकी बिल्कुल आवश्यकता ही नहीं हो, इसके जरिये आस–पास के घरों को प्रकाश प्रदूषण से मुक्त किया जा सकता है क्योंकि प्रकाश कुछ निश्चित स्थानों पर केंद्रित होता है।
3. **लाइट शील्ड्स :–** प्रकाश स्रोत को इस प्रकार लगाया जाना चाहिए कि प्रकाश को आस–पास के क्षेत्रों में फैलने से रोकती हैं और प्रकाश को निश्चित स्थानों पर केंद्रित करती हैं। यह प्रकाश प्रदूषण की समस्या और आस–पास के घरों और उनके निवासियों के लिए इसके नकारात्मक परिणामों को सुलझाने में मदद करें।
4. **प्रमाणित प्रकाश स्रोत का प्रयोग करें :–** एक अन्य प्रभावी तरीका यह है कि प्रमाणित प्रकाश व्यवस्था का उपयोग करना है जो चकाचौंध, आकाश की चमक और प्रकाश के फैलाव को काफी हद तक कम कर सकता है। IDA जैसे कुछ प्रमाण–पत्र पर्यावरण पर रोशनी के कम प्रभाव की गारंटी देते हैं, जिससे प्रकाश प्रदूषण कम से कम होता है।
5. **मोशन सेंसर :–** मोशन सेंसर प्रकाश प्रदूषण को कम करने का एक अद्भुत तरीका है। इस मामले में कोई भी स्रोत या बत्ती तभी चालू होती है, जब गति संवेदक चालू होता है और इससे बहुत सारी ऊर्जा बचाने में मदद मिलती है।
6. **दूसरों को शिक्षित करें :–** प्रकाश प्रदूषण से निपटने के लिए शिक्षा और जागरूकता भी महत्वपूर्ण है; अपने मित्रों से इसके बारे में बात करें, उन्हें समझाइए, मैं इस पोस्ट को लिखकर आपके पास इस बात को पहुंचा रहा हूँ आप इसको शेयर करके आगे पहुंचा सकते हैं, इस प्रकार के कदम प्रकाश प्रदूषण की गंभीर समस्या को कम करने के लिए एक बड़ा प्रभाव डालेगा और कई अन्य वैश्विक समस्याओं से भी लड़ने में मदद करेगा जिनका हम वर्तमान में सामना कर रहे हैं।

स्रोत :–

- 'जर्नल अर्बन कलाइमेट'
- Urban climate impact factor & sky scientometries Index 54.
- Word Atlas of Artificial Light Brightness 2016.
- प्राग भटनागर, कार्यकारी उपाध्यक्ष और एस0बी0यू0 प्रमुख हैवेल्स इंडिया लिमिटेड
- भारत में नगरीय ऊष्मा द्वीप – दृष्टि 18 फरवरी 2020
- अर्बन हीट आइलैंड (यू0एच0आई0) संयुक्त राज्य अमेरिका

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

A study on Non – Performing assets of Public sector Banks in India with special Reference to State Bank of India

Amar Kumar Amar
(JRF, Research scholar)
(University Deptt. of commerce & Business Administration
T.M.B.U. Bhagalpur)

1.1. INTRODUCTION

Plays an important role in the economic development of the banking sector in India. Promotes the banking sector, through its intermediation activities Production, distribution, exchange and consumption processes in the economy Arrangement. It stimulates the flow of money into the economy and fuels the economic growth. The efficiency of the banking system thus determines the speed development of the economy. Like any other business enterprise, Bank efficiency is assessed on the basis of profitability and asset quality possess. But unlike other commercial enterprises, Indian banking has social Integrate the commitments into its operations. Banking system in India the goals of the economic policies formulated in five consecutive years were to be met. Development planning, especially related to equitable income distribution, balanced regional economic development and the reduction and elimination of private the region's monopoly in trade and industry. In the post-independence period, the content the banking sector has played a catalytic and commendable role in supporting Government to achieve its social and economic objectives through deposits Mobilization, Mass Branch Networking, Priority Sector Lending, Employment generation etc. imposed as a result of achieving such social objectives extensive regulations by the government which in turn hinder Productivity of Indian banking during the pre-liberalization era. Evaluation of Indian Banking Industry during Pre-liberalization era revealed the presence of several deficiencies that joined significantly lower productivity of the financial system over the years, worsened Asset quality and efficiency and enhanced cost structure due to technical backwardness. Among these shortcomings, policy makers identified erosion Property quality as the most important constraint to sound development and efficient banking sector. In fact, different practices were followed during the pre-liberalization period which includes asset classification using health the accrual basis used to book interest in the code system, bank accounts, etc. concealed the seriousness of the asset quality issues of the banking sector. Property Quality is a major concern and affects various performance indicators, viz., Profitability, Arbitrage Cost, Liquidity, Reliability, Income Generation Efficiency and overall functioning of banks. Decline in asset quality resulting in accumulation of Non-Performing Assets (NPAs).

The arbitration process is a major function of a commercial Bank. Since there is counterparty risk involved; Risk is inherent in banking. Banker not all loans should be expected to bring returns/income to the portfolio general Curriculum. Loan/advance is an important source of income for Banks. On what does the strength and soundness of the banking system mainly depend? The quality and performance of the loan portfolio, i.e. fulfillment immediate liability by the Borrowers.

Non-performing assets represent an advance for which interest or repayment is due the principal amount or both remains overdue for a period of 90 days or more. One an advance/loan is considered non-performing when it fails to meet its repayment obligations. Thus, non-performing assets are loans at risk of default. NPA level is an indicator of efficiency of banker's credit risk management and the efficiency of resource allocation to productive sectors. Basel Committee Credit risk is defined on banking supervision as "the potential default of a borrower". Fulfill the obligation as per the agreed terms" (BIS, 2005). Higher Many banks failed as a result of non-performing assets (Nayak et al., 2010). NPA represent a real economic cost in the modern day as they reflect the application of scarce capital and credit funds to unproductive use. It also affects the loan capacity because funds have been blocked and repayments have been disrupted and this has also resulted in additional cost for arbitration and recovery of NPAs. Banking reforms were initiated to upgrade the operating standards, health and financial soundness of banks to internationally accepted levels in increasingly globalized market (Pathak, 2009). Improvements have been made gradually by mutual consent and extensive debate among the participants and in a sequential pattern that is strengthening the overall economy **(Badola and Verma, 2006).** These reform measures confirm the ideas that highlight important role in economic development that can be played by a banking system were free from controls on interest rates and amounts prevalent at the time **(Barajas et al, 2012).**

Two decades were completed since the banking sector introduced the measure to uplift and reform the banking sector in line with international standards Productivity and efficiency of banks. Several researches on NPAs exemplified This the relationship between asset quality and financial distress explored further Management of NPAs as a key condition to counter the slowdown pressure and boost economic growth. Some key observations Past researches include;

The problem of the NPA is severe in countries where severe government intervention had led to the institutional decay of banks or prevented their sound development (Renaud, 1997) ƒ NPA management assumes priority over other aspects of bank functioning (Batra, 2003) ƒ The existing capital adequacy regulations tried to protect the interest of depositors (avoiding bankruptcy), but impacted availability of funds for productive purposes. (Murinde and Yaseen, 2004) ƒ Reduction in NPA ratios does not indicate a reduction of fresh NPA. For ex, Banks have aggressively provided for their bad debts from the treasury profits during 2003-04 in order to show a better NPA picture, resulting a decline in NPA by 24.7% as against a decline of 8% in 2002-03. (Pathak, 2009) ƒ The NPA is a significant threat to Indian Banking Sector (Estrella et

al, 2000; Gopalakrishan, 2004; Ahmed et al, 2007; Heid and Kruger, 2011) The Slowdown in economic growth and rapid credit growth are independently associated with higher levels of NPA (Bock and Demyanets, 2012).

Classification of Loan Accounts

The assets (loans) are classified into;

(i) Standard Assets
(ii) Sub-standard Assets
(iii) Doubtful Assets
(iv) Loss Assets

The RBI guidelines direct commercial banks to classify the loan account into various categories taking into account the degree of well defined credit weaknesses and extent of dependence on collateral security for realization of Dues.

REVIEW OF LITERATURE

This chapter encapsulates the major conclusions and propositions of previous research studies on NPA. The review of literature is utmost important in any research as it offers an explanation for the necessity of the current research initiatives. The asset quality and non-performing assets (NPAs) is debated in many academic literatures across the world. In Indian context, the literature focused mainly on a review of NPA among different bank groups and its management since the post-liberalization period. The review of the literature offered an in-depth view on the treatment of NPA in Indian banking sector over the years. The comparative studies available on NPA helped the researcher to evaluate the incidence of NPA and its management in different economies. The review is presented in two parts;

1. Studies on NPA in Indian context.
2. Studies on NPA in international context.

Studies on NPA in Indian Context:

The observations of Gopalakrishnan, T.V. (2004), explained in the research study "Management of Non-Performing Advances" portrayed the severity of NPA on bank's survival and growth. Assessing the performance of Indian banking, especially the public sector banks (PSBs) during 1993-2001, the author confirmed a significant relationship between NPA and macroeconomic indicators like GDP, Inflation, Index of industrial and Agricultural Production, etc. Based on primary data, the author stressed the need to further enhance existing measures to manage NPA. The findings of the study reiterated that NPA pose significant blow on the balance sheets and profitability of banks and high level of NPAs in bank books is a great risk to bank's health, stability, viability and soundness. The above observations were further reiterated by Reddy, B.R. (2004) who compiled 38 research papers presented in National Conference on NPA in Tirupathi during 2000. Using both secondary and primary data, these research articles highlighted the developments in the management of NPA. In

summary, these studies identified NPA as a severe threat for the existence and stability of Indian banking and demanded more proactive and curative measures to manage it.

Studies on NPA in International context.

Various studies were conducted in the international context on NPA and its trends. These studies explained various facets of NPA that includes the various reasons behind the accumulation of NPA, the effectiveness of measures taken by the government to reduce NPA, to name a few. Some of the studies focused on specific factors and its impact on increasing or decreasing the level of the NPA in the banking sector.

Herr and Miyazaki (1999) in their research article about the NPA problem in the Japanese banking industry briefed the various problems faced by the banking sector in managing their NPA accounts. Aggressive levels of NPA during 1990s, a tax system that doesn't provide tax reductions for write offs, increased number of bankruptcies etc., were evident in the Japanese banking sector since 1990. The authors based on literature review rated securitization as an effective way to handle NPAs in the banking industry. The authors also proposed sale of NPA to a jointly established Special Purpose Companies (SPCs) to allow banks to remove NPA from their balance sheets.

Krueger, A. and Tornell, A. (1999) examined the financial crisis in Mexico and the credit crunch and increased level of NPA. The authors explained that the bail out policy adopted in 1995 could not resolve the problem of NPA in the banking sector. Based on the analysis, the authors explained that NPA is unlikely to disappear on their own even under a high growth scenario. The authors called for an alternate strategy under which all NPAs were recognized at once and the fiscal costs were all paid up-front as preferable to solve the issue of the NPA in the banking sector.

Research Gap:

A review of the previous study report has revealed that studies have shown that banks have been able to achieve the annual PSL target and sub-target. There are very few studies that analyze between NPA and PSL. NPAs based on PSL and NPSL could not be found. Therefore, this study is conducted on the basis of this area.

Statement of the Problem:

The NPA is the biggest problem facing Indian banks. For the economic growth of India, the NPA of banks is changing adversely. It can be seen that the level of NPA in sector lending is increasing every year. The extent to which NPAs lend.

Objectives:

1. Analyze how much NPA is generated on loans by private sector banks and public sector banks.
2. Examine the NPA in the ground of Priority sector and Public sector lending.

Scope of the Study:

The main focus of the study is on how much NPA is generated in sector wise lending. Through this study we will be able to understand the NPAs of the lenders as well as

whether the public sector bank or the private sector bank has the highest NPA, by analyzing the banks and exploring solutions.

Methodology:

This study is based on second data. Data is collected on the basis of Banks Annual Report. A total of six banks have been selected. Three banks are from the public sector and three banks are from the private sector. SBI, Punjab National Bank and Canara Bank from Public Sector Bank. But HDFC, ICICI and Axis Bank are selected from private sector banks. The reason for selecting these banks is based on the criteria of selecting the banks which are ranked in first three ranks of the top most banks in the top Most Bank in Revenue List 2021. In the Private sector, HDFC came first and ICICI came second and Axis Bank in third. In the Public sector, SBI came first and Punjab National Bank and Canara Bank. Data collected from Annual Reportfrom 2016 to 2021.

Reference:

Ahmed, J. (2010). Priority Sector Lending by Commercial Banks in India:A Case of Barak Valley. Asian Journal of Finance & Accounting, 2(1), 92-110.2.

Sima N & Jyoti A. N. (2015) A study on priority sector lending and itstargets in India, International Journal of Advanced Multidisciplinary Research,Vol.2 Issue 6 pp 31-43.

Keshavan V (2016) A Study on the Non-Performing Assets of Banks in India, International Journal for Research in Business, Management and accounting, Vol. 2 Issue 1 January 20164.

Nikam K. S. & Sehgal S. (2016) A study of the reasons for rising NPA's in public and private sector banks in India and measures to control it.,International Resear ch Journal of Multidisciplinary Studies , Vol. 2, Issue4, April, 20165.

Rinaldi, L., & Sanchis - Arellano, A.(2006). Household debtsustainability: what explains household nonperforming loans? Anempirical analysis. (working paper)7. Master Circular- Priority Sector Lending- UCBs CircularUBD.CO.BPD.(PCB) MC. No.7/09.09.001/2014-15 dated July 01, 20148.

Boyd, J. H., & De Nicolo, G. (2005). The theory of bank risk taking andcompetition revisited. The Journal of Finance, 60(3), 1329-1343.9. Desai, R. (2019). Impact of Sectorial Advances on Priority Sector NPA- Case of BSE Bank

Goyal,N.Agrawal, R. & Aggarwal, R. (2016). Two Way Fixed Effect Of Priority Sector Lending (Sector Wise) On Non Performing Assets of Indian CommercialBanks.

International Journal of BRICs
Business Research https://doi.org/10.14810/ijbbr.2016.510111.

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

A study of Non-Performing assets on Public sector Bank in India

Sadanand Gupta
(JRF, Research scholar)
(University Deptt of commerce & Business Administration
T.M.B.U. Bhagalpur)

Introduction:

The banking sector plays a crucial role in the development of any country. Banks for generating credit, follow the concept of maturity transformation, i.e., using short-term deposits from savers and turning them into long-term borrowings. Considering all borrowers pay back on a timely basis, the banks are able to generate credit, stimulate the money flow within the country, and thereby contribute to the economic development of the country by acting as the strong backbone of the economy. But this doesn't happen in reality, borrowers default when it comes to repaying their debt, hence leading to hindrances in credit creation and development of the nation. Non-Performing Assets (NPA) continue to be a prominent buzzword since the last decade.

When a borrower deliberately defaults on a loan payment (either on interest and capital repayment) or is unable to make loan repayments because of adverse business economic conditions, non-performing assets occur. RBI defined NPAs as credit in respect of which interest and/ or installment of principal has remained 'past due' for a specific period of time. This specified time period changed over time-

Table No.- 01

Year (ending March 31st)	Specified Period for 'Past Due'
1993	**4 quarter's**
1994	**3 quarter's**
1995 onward	**2 quarter's**

Source RBI

When either interest and principal amount is unpaid for 30 days after its due date, it is regarded as past late. The idea of "past due" has been abandoned as of March 31, 2001, and the term now begins on the day that payment is due. To comply with international norms and standards RBI in 2004, NPA's overdue time period has been reduced to 90 days.

Table No.- 02, provision requirement regarding NPAs:

Assets category	NPA duration	Provision rate (%)
Standard		**0.25 – 0.10**
Sub-standard	**< 1 year**	**15**
Doubtful	**Up to 1 year**	**25**
	1 – 3 years	**40**
	More than 3 years	**100**
Loss		**100**

Source RBI

For any given bank, Gross NPA indicates how much of the bad portfolio.

If we subtract provisions made by banks from gross NPA the remaining figure will be Net NPA. The term 'willful default' is somewhat unique to India.

A willful default broadly covers the following:

a) Deliberate non-payment of the dues despite adequate cash flow and good net worth;

b) Siphoning off of funds to the detriment of the defaulting unit;

c) Assets financed either not been purchased or been sold and proceeds have misutilised;

d) Misrepresentation/falsification of records;

e) Disposal/ removal of securities without the bank's knowledge; and

f) Fraudulent transactions by the borrower" (RBI,2007). The notion of bad debt is associated with impaired assets notion in accounting principles and prudential oversight.

NPAs from 2011-21:

Considering the long history of NPAs in India they have been at their lowest level during the global financial crisis and the few years following it. But there is an increase in NPAs since 2011, however, till 2013-14 the growth rate of NPA was considerably slow. From 2014 onwards, NPA grew at anexponential pace, reaching the maximum levels in 2017-18. The spur in NPAs was coming largely from the Public Sector Banks.

Reasons for NPAs in India as per Raghuram Rajan-

(i) Over-optimism and slow growth

India was growing at a growth rate of 9-10% p.a. in the mid-2000s when huge loans were taken by all sectors but loans given to the infrastructure sector accounted for the most. Banks assumed this high growth trend in India will

continue so they took the liberty of accepting risky projects. The loans which turned into NPAs were mostly given during 2003-2008. All the expectations made by corporate houses as well as the banks suddenly failed due to GFC in 2008. Repercussions of GFC were felt in India too, RBI increased the interest rates, and a higher interest rate result in increased NPA. The companies found it difficult to meet their interest obligations and capital repayment, leading to rising in NPAs.

(ii) Government Permissions and Foot-Dragging

Government decision-making was dragged down by a number of governance issues, including the questionable allocation of coal mines and the associated fear of investigation investigations, during both the UPA and the succeeding NDA governments. Stalled projects saw an increase in cost overruns, and they grew more and more unable to pay back loans. Despite India's power shortage, the struggles of the stranded power plants indicate that government decision-making has not yet sped up enough.

Impact of NPA on the economy and profitability of the banks

Banking Sector is the power house of the Indian economy, a strong and growing economy thereby implies that the Indian banking sector must be working well and acting as a vital role for economic growth. Banks provide credit, which is further invested in profitable project and the development of the economy. But when money moves out of the financial system and cycle of lending-repaying and loan amount gets impacted. Banks have a responsibility to pay back their depositors and other lenders. In the absence of loan repayment, banks are forced to take out new loans in order to pay back depositors and creditors. This results in a situation where banks are hesitant to lend more money to ongoing or new projects. The economy suffers when credit to diverse areas of the economy slows down. Additionally, NPAs force credit risk management to take precedence over other parts of a bank's operation. A bank with a high NPA ratio would be required to pay carrying costs on non-income producing assets. Some other consequences of NPAs are- high levels of provisioning, reduction in interest income, stress on profitability and capital adequacy ratio, gradual decline in the ability to meet the steady increase in cost, and increased pressure on Net Interest Margin (NIM) thereby reducing competitiveness, steady erosion of capital resources and increased difficulty in augmenting capital resources. Thereby rising NPAs imply an ailing economy.

Measures taken by RBI to reduce NPAs:

Both Government of India and RBI have undertaken some measures keypoint to reduce NPA like- Debt Recovery Tribunals (DRTs) in 1993, Lok Adalat in 2001, Securitization and Reconstruction of Financial Assets and Enforcement of Security Interest (SARFAESI) Act in 2002, and recently Insolvency and Bankruptcy Code (IBC) was issued in 2016. Over years there is a decreasing trend in the % of NPAs recovered via various institutes, which raises the question of the efficiency of these institutions.

Table No.- 03, NPAs of SCBs Recovered through various channels (in %)

Recovery channel	2011-2012	2017-2018	2021-2022
Lok Adalat	11.8	4	4
DRTs	17	5.4	3.6
SARFAESI Act	28.6	32.2	41
IBC	-	49.6	20.2
total	23.6	14.9	14.1

Source- Report on trend and progress of Banking in India source and progress, RBI on different years

Literature review:

Joseph and M. Prakash, 2014 have studied the NPAs levels of the private sector banks and public sector banks. They found that NPAs level was more in case of substandard asset and doubtful asset. However in case of standard asset, private banks rule over which shows a good position of private sector banks. Also it shows that they have adopted all necessary measures in order to avoid any account becoming NPAs. The study by S.S.

Prasad and P. Goyal, 2015 revealed that NPAwas not the factor which significantly affected the ROCE, ROAand RONW of Vijaya Bank. The study concluded that Vijaya Bank was effectively able to manage its NPAs resulted in not affecting its profitability.

The study by R.K. Uppal and P. Khanna, 2015 has analyzed the primary reasons for the growth of NPAs in scheduled commercial banks of Punjab and also suggested the measures for controlling the same. The objectives of study were to find out the factors that affect the loan repayment capacity of the bank customers. The report published by CARE had emphasised that the NPA s of of at least 26 listed banks were Rs. 7.31lakh crore as per the declared results of FY 2017 Fourth Quarter. Ever since the remaining 12 listed banks which include Bank of Baroda, Andhra Bank, Corporation Bank and private financial lenders like City Union.

Dhanlaxmi and Karur Vysya (Business Today, 2018). The Government of India felt that the usual recovery measures like issue of notices for enforcement of securities and recovery of dues was a time consuming process.

(Rajeev and Mahesh, 2010).have studied the NPAs levels of the private sector banks and public sector banks. They found that NPAs level was more in case of substandard asset and doubtful asset. However in case of standard asset, private banks rule over which shows a good position of private sector banks. Also it shows that they have adopted all necessary measures in order to avoid any account becoming NPAs.

T R.K. Uppal and P. Khanna, 2015 has analyzed the primary reasons for the growth of NPAs in scheduled commercial banks of Punjab and also suggested the measures for

controlling the same. The objectives of study were to find out the factors that affect the loan repayment capacity of the bank customers. The report published by CARE had emphasised that the NPA s of of at least 26 listed banks were Rs. 7.31lakh crore as per the declared results of FY 2017 Fourth Quarter.Ever since the remaining 12 listed banks which include Bank of Baroda, Andhra Bank, Corporation Bank and private financial lenders like City Union,

Objectives of the study:-

The main objectives of this study are:-
1. To study the trend in Gross NPA to Gross Advance of the SBI
2. To study the trend in Net NPA to Net Advance of SBI
3. To study the difference in average Gross NPA to Gross Advance of SBI
4. To study the difference in average Net NPA to Net Advance of SBI **Hypotheses:**

H1: There is significant difference in average Gross NPA to Gross Advance ratio of SBI

H2: There is significant difference in average Net NPA to Net Advance ratio of SBI.

Research Methodology:

The study uses secondary data collected from Annual Reports of respective Banks, Report on Trend and Progress of Banking in India, RBI, and Statistical Tables Relating to Banks in India, RBI. Period of the Study The study period covers past 5 financial years covering the period 2013 to 2017. Statistical Tools Used One way ANOVA and Post Hoc Test. The results are tested and validated at 5 percent level of significance. The two ratios used to measure the NPA position of the banks are Gross NPA to Gross Advance and Net NPA to Net Advance.

One Way ANOVA- Analysis of variance is a statistical tool used to study the significance of difference in mean of two samples. In the present study ANOVA is applied to study that if there is significant difference in the mean ratios of small, medium and large banks. The objective of this analysis is to know the position of SBI in terms of total Assets. From the time period from 2013 to 2017. A firm's total assets include all current and fixed assets.

Table No.- 04. Total balance sheet assets of SBI Bank From 2013 to 2017

Year	Total assets (Rs in billions)
2013	15662.61
2014	17922.35
2015	20480.80
2016	22590.63
2017	27059.67

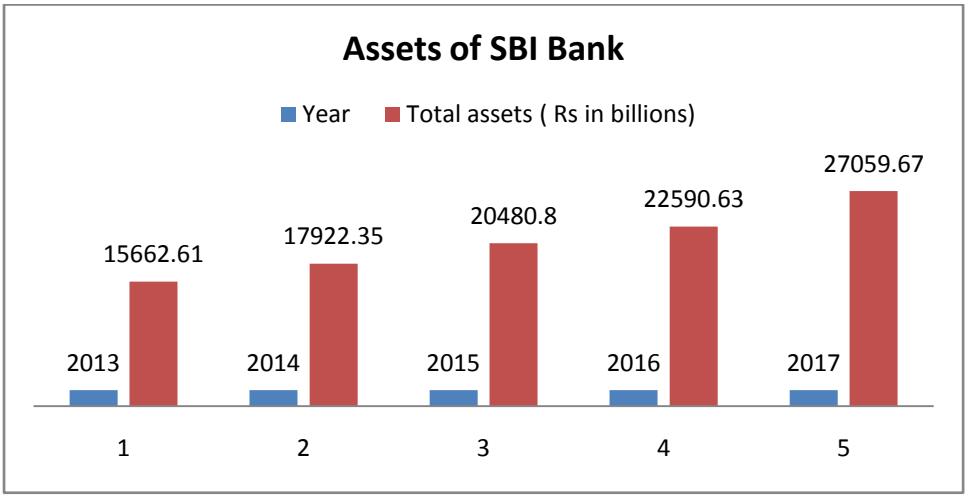

Interpretations:

Above **table No - 04** and graph show that total assets of SBI is increased in **2014 by 2259.74** billion, in 2017 increased by **4469.04** billion. It has been observed that the assets of the SBI bank increased in the last five year.

Findings:-

After finding the trend in average GNPA to Gross Advance ratio, let us see if there is any significant difference in the same on the basis of size. For this purpose we have applied One Way ANOVA. A perusal of Table 8 reveals that there is no significant difference in average GNPA to Gross Advance ratio as the p value obtained (1.05) is greater than .05 at 5% level of significance. Thus the alternate hypothesis is rejected and it has been safely concluded that there is no significant difference in average Gross NPA to Gross Advances.

References:

1. **A. Joseph, M. Prakash (2014),** "A study of analyzing the trend of NPA level in private sector banks and public sector banks", Research Paper, International journal of scientific and research publications, Vol. 4, Issue. 7, page no. 1-9.

2. S. S. Prasad, P. Goyal (2015), "A study of non-performing assets and its impact on Vijaya bank performance", Research Paper, Indian Journal of Accounting, Vol. XLVII (2), page no.89-92.

3. R. K. Uppal, P. Khanna (2015), "Factors affecting NPAs of Scheduled Commercial Banks: An empirical study based in Punjab" Research Paper, Indian journal of finance, Volume. 9, issue num. 2, page no. 7-16. IJS.

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

आचार्य अभिनवगुप्त के ग्रंथों में पूर्वाचार्य

डॉ. भारतेंदु कुमार पाठक
सहायक प्रोफ़ेसर
हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय,हजरतबल,श्रीनगर
जम्मू व कश्मीर- 190006

कश्मीरी आचार्यों द्वारा लिखे गए काव्यशास्त्रीय ग्रंथ एवं काव्य ग्रंथ कश्मीर के ही नहीं अपितु पूरे भारत के धरोहर हैं। यह ग्रंथ अपने आप में इतने महत्वपूर्ण हैं कि इनके सूक्ष्म अध्ययन के द्वारा कश्मीर की संस्कृति सभ्यता, कला एवं परंपरा को समझा जा सकता है, यही तक नहीं प्रत्युत प्राचीन इतिहास, परंपरा व अतीत में छिपे हुए ऐतिहासिक पात्रों को ढूंढा जा सकता हैं। काल के गाल में अनेक ग्रंथ समा गए हैं,किन्तु उनके अध्ययन के द्वारा, उन ग्रंथकारों का अता-पता ज्ञात होता हैं। आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा रचित अभिनव भारती, लोचन, तंत्रालोक, तंत्रसार मुख्य ग्रंथ के अध्ययन करने से अतीत के अज्ञात लेखकों का पता चलता हैं। नाट्यशास्त्र की व्याख्या करते हुए उन्होंने बताया हैं कि कश्मीर में श्री विप्रवर, आचार्य भट्टतोत के द्वारा यह नाट्य वेद प्रकट हुआ–

सद्विप्रतोतवदनोदितनाटयवेद-
तत्त्वार्थमर्थिजनवांछितसिद्धिहेतो: ।
माहेश्वराभिनवगुप्तपदप्रतिष्ठ:
संक्षिप्तवृतिविधिना विशदीकरोति॥ [1]

वर्तमान में आचार्य अभिनवगुप्त के साक्ष्य पर वे कश्मीर में नाट्यशास्त्र के आदि प्रचारक थे।

आचार्य आनंदवर्धन द्वारा लिखित ध्वन्यालोक की व्याख्या लोचन से आचार्य अभिनवगुप्त ने की हैं, किन्तु उन्होंने कालकवलित अनेक ग्रंथकारों से परिचय कराया हैं। लोचन के आरंभ में कहा गया हैं–

भट्टेंदुराजचरणाब्जकृताधिवास-

हृद्यश्रुतोSभिनवगुप्तपदाभिधोSहम् ।

यत्किचिदप्यनुरणन्स्फुटयामि काव्या-

लोकं स्वलोचननियोजनया जनस्य ॥[2]

और लोचन के अंत में भी कहा गया हैं–

श्रीसिद्धिचेलचरणाब्जपरागपूत-

भट्टेन्दुराजमतिसंस्कृतबुद्धिलेश: ।

वाक्यप्रमाणपदवेदिगुरु: प्रबन्ध-

सेवारसो व्यरचयदध्वनि वस्तुवृतिम् ।।[3]

आचार्य श्री सिद्धि चेल, आचार्य श्री इंदुराज के नामों से जन मानस को परिचय कराते हैं,उसी प्रकार आचार्य भट्टनायक(हृदय दर्पण), आचार्य भट्टलोलट, आचार्य भट्टशंकुक जैसे आचार्यों से अभिनवगुप्त लुप्त परंपरा को स्पष्ट करते हैं। इन आचार्यों के ग्रंथ भी अनुपलब्ध हैं।

अभिनवगुप्त ने आचार्य कोहल, आचार्य दत्तिल,[4] आचार्य मतंग, आचार्य तंडू, आचार्य नारद, आचार्य नन्दी, आचार्य साकल गर्भ, आचार्य हर्ष, आचार्य कीर्तिधर, आचार्य भट्टयंत्र, आचार्य राहुल, आचार्य नंददेव इत्यादि का उल्लेख अपने ग्रंथों में यत्र-तत्र किया हैं।

"आचार्य भट्टतोत ने 'काव्य कौतुक' नामक एक स्वतंत्र ग्रंथ की रचना की थी, जिस पर आचार्य अभिनवगुप्त ने विवरण नामक टीका लिखी है।" [5]

इसके अतिरिक्त सिद्ध महात्मा मच्छेन्द्रनाथ, श्री कंठनाथ,[6] भगवान महेश्वरभूति राज, श्री सोमानंद, श्री मद्उत्पलदेव, श्री लक्ष्मणगुप्त, श्री चुखुलक, श्री शंभूनाथ, श्री भटनाथ, श्रीभट्टारिका, गुरु नाथ, श्री नाथ, भूतिराज तनय इत्यादि आचार्यों का उल्लेख उनके ग्रंथ तंत्रालोक में मिलता हैं।

सारांश यह है कि जिस प्रकार प्राचीन खंडहर, शिलालेख, ताम्र पत्र, भोज पत्र, पांडुलिपियाँ, गुफाएँ एवं मंदिर आदि के अवशेष प्राचीन संस्कृति सभ्यता को व्यक्त करने के लिए यदि धरोहर हैं तो आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा लिखे गए ग्रंथ कही अधिक धरोहर हैं, जिनके माध्यम से व रचनाओं तथा उनके वैशिष्टय का पता लगा सकते हैं।

संदर्भ :

1. नाट्यशास्त्र-अभिनव भारती सहित- व्याख्याकार आचार्य डॉ पारसनाथ द्विवेदी, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, द्वितीय संस्करण विक्रम संवत:2048, पृ. -3
2. ध्वन्यालोक लोचन- आचार्य अभिनवगुप्त, व्याख्याकार आचार्य जगन्नाथ पाठक, प्रथम उद्योत, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, संस्करण: 2009, पृ. -2
3. ध्वन्यालोक लोचन- आचार्य अभिनवगुप्त, व्याख्याकार आचार्य जगन्नाथ पाठक, प्रथम उद्योत, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, संस्करण: 2009, पृ. -603-604
4. नाट्यशास्त्र-अभिनव भारती सहित- व्याख्याकार आचार्य डॉ पारसनाथ द्विवेदी,सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी,द्वितीय संस्करण विक्रम संवत:2048, प्रस्तावना, पृ.- 49
5. नाट्यशास्त्र-अभिनव भारती सहित- व्याख्याकार आचार्य डॉ पारसनाथ द्विवेदी, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी,द्वितीय संस्करण विक्रम संवत:2048, पृ.- 60-61
6. तंत्रालोक-आचार्य अभिनवगुप्त-हिंदी व्याख्याकार प्रो. राधेश्याम prqosZnh, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण -2017- पृ.-23

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

"Landlords Politics of the United Provinces and the Role of Nawab of Chhatari"

Samshad Alam
Research Scholar
Department of History
Centre of Advanced Study. A.M.U Aligarh

Abstract: The Landlords of Uttar Pradesh were a vast but diversified group of landowners. The British assigned them a social and political role to keep control over the province. By 1920, the U.P. had a legislative council with a solid non-official majority and partial power over some government ministries. Zamindars could govern the village's lives and resources from this vantage point. The British India Association (BIA) recommended that all taluqdars who returned to the Council "form themselves into a committee and act in cooperation" with the Association's Executive Committee. Muzaffarnagar primarily represented the Meerut and Rohilkhand divisions' moderate Zamindars. The Zamindar Party was formed by a collection of men who owed each other nothing regarding their Council positions but shared a common worldview as landlords. The Zamindar Party's failure to significantly impact the elections is unsurprising. Hidayat Husain predicted the Party's demise: "The future is in the hands of the deity". Kunwar Jagdish Prasad was a fluent and capable champion behind the scenes. Raja Parmanand and Nawab of Chhatari were appointed as ministers. Marris did not soften his suspicion of joint responsibility in the dyarchic government. Hailey and his friends predicted doom for the province if Congress socialists swept to power. They set out to build a central party of stability among moderate and property-tied groups. The formation of National Agriculrists party led by the Nawab of Chhatari ushered in a new era of landlord politics.

Key Words: Awadh Policy, Zamindar Party, Landlords Party, Rajput Council, Swarajist, Congress party, Nawab of Chhatari.

Introduction:

The British identified a vast but diversified group of landholders when conquering and governing the territory that formed the U.P. Then, they assigned this group a social and political role to keep control over the province. This policy helped individuals with larger estates most concerned about agrarian concerns. For nearly 60 years after 1860, landlord-oriented policies were the bedrock of provincial politics. However, the Awadh Policy was not without its critics. The exploitation of tenants by landlords created a sense of resentment among the peasantry. As a result, the

landowners were forced to confront new political institutions established by the British. By 1920, the U.P. had a legislative council with a solid non-official majority and partial power over some government ministries.

The Agrarian Background

Landholders and landlords: From the end of the eighteenth to the middle of the nineteenth centuries, the existence of a large group of landholders was the immediate result of agricultural developments in the North-Western Provinces and Awadh. In 1881, there were a little over a quarter million of these landowners; by 1920, the number had risen to more than two million. Estates were divided according to customary inheritance laws (each son received an equal share), or estates were sold piecemeal to pay off debts. The Zamindars of Awadh, Benares, and the North-Western Provinces were the most favoured of them. Some of the Zamindars owned land on their account, while others were petty proprietors who shared the lands of a village.

The Taluqdars of Awadh were the wealthiest in the U.P. Although there were others with very tiny holdings, just as there were Zamindars with massive estates. Large groups of landholders paid more than Rs. 10,000 per year in land taxes in the western and central divisions of the North-Western Provinces. The pyramid's pinnacle represented the Taluqdars and larger estates, who held their estates on their account. The base represented the vast majority of smaller Zamindars and co-sharers, while the base was made up of smaller estates and their owners. Although the topmost groupings comprised only a tiny percentage of the total landholding groups, they were the most politically powerful. However, this was only the start; its continued significance stemmed from its incorporation into an imperial administration doctrine by a group of Awadh administrators. Until the inauguration of the Montagu-Chelmsford reforms, the 'Awadh policy', the aristocratic policy, and the policy of sympathy and trust were the dominant elements in political ideology in the U.P.

The doctrine of the Awadh men

The administrators devised the Awadh policy, tasked with restoring peace in Awadh in (1858-1859). The moderates eventually gave in to the 'pro-taluqdars', and the latter's success laid the groundwork for the new policy. The discussion was started by Sir James Outram, the chief commissioner of Awadh, who advocated that the taluqdars be fully reinstated. As vengeance for the people of Awadh's acts, it would take over the property rights to all land in the province and re-distribute these rights as deemed suitable. On the other hand, Canning was against universal repudiation because he was adamant that the taluqdars should be punished for going against British authority.

Sir John Strachey's settlement of 1858 with the taluqdars of Awadh was used as the foundation for a doctrine that led to the formation of the British Indian Association (B.I.A.) in 1861. Most of the 200-300 members of the Muzaffarnagar organisation were from the Agarwal or related caste groups, with the majority being from the northwest area. The Indian Association in Calcutta was founded in 1851 by Bengal landlords to

promote the reform and effectiveness of the British Indian Government. However, there were signals that the landlords would band together.

The Zamindar Party was formed by a group of men who owed each other nothing regarding their council positions but shared a common worldview as landlords. It was the landowners' first attempt to deal with the changes in politics caused by the Montagu-Chelmsford reforms, and it was a big part of their response to the Council of 1921, which was not well organised.

The 1919 Reforms and Provincial Legislature

The Montague-Chelmsford Reforms aimed to extend and improve the existing control system through a new method. The reforms, on the other hand, were a challenge as a reaction to India's increasing educated and professional class. "If they wanted to be restored to the provincial council, they had to either make themselves palatable to dominating local interests or take up guns and oppose them." The Congress-League partnership was challenging for the Muslim community in Uttar Pradesh (U.P.) because of the region's diverse religious and linguistic make-up. During the U.P. legislative council debates between 1913 and 1919, Muslim legislators from the Agra Province, notably from the Rohilkhand region, were more passionate in their language and utterances. On the other hand, Muslim members from the Awadh region spoke in a more moderate tone.

The Awadh group was formed in 1912 and worked to increase its influence in the province from 1912 to 1914. It gained all-India relevance with the onset of World War I, thanks to the collaboration of several other politicians. Awadh's Muslim leaders were mostly from the Shia sect, while Lucknow's elite came from a more liberal and wealthy area. Landlords were able to get the average assessment amount decreased from 40% to 35% of the net assets during the select committee meetings. Landlords thought that Swarajists would agree with them that there should be a clause (clause 40) that said a landowner could take back land held by a statutory tenant and have it recorded as "*Sir" within* two years of the Act going into effect. The Swarajists have accepted revisions to the section authorising the resumption of land held by tenants, which would provide the landholder with an unfettered right to restart land for their cultivation. However, resumption for other uses would require the permission of the collector. On June 28, the council meeting ended after Muhammad Ismail, a progressive landowner from Gorakhpur, asked for it to do so.

As the debate progressed, the administration found itself up against the united opposition of landlords and Swarajists on numerous vital clauses. On other important issues, Swarajists worked with the government to make landlords give renters more benefits. Landlords and Swarajists have been split on the issue of how landlords should be able to increase their rents. The landlord's rent enhancement maximum was cut from 33% to 25%, and the time when rent could not be raised after a previous enhancement was expanded from ten to twenty years. However, G.B. Pant's amendment allowing a tenant who had regularly cultivated on the landlord's land for twelve years to acquire occupation rights was lost. According to these, the finance member's grounds for

opposing the amendment were unconvincing. The report said that since a Zamindar could get "*Sir"* rights after ten years of farming, there was no reason why a tenant couldn't get occupancy rights after a period of continuous farming. Landlords made a fatal error when they requested that the council session be adjourned until July 24 to observe Moharram. On July 30, a total of fifteen new landlords arrived, and the government made the most of the circumstances. The Swarajists terminated the mutual agreement and called for revisions to the Settlement Bill.

The administration was successful in getting the requested revisions incorporated into the bill. All of you, "*Sir*", were restricted. The resumption of land for personal use by the landholder requires the collector's approval. Without a division, the roster year rent system was also resumed. Most Hindu landlords were expected to vote for the Nationalist Party, led by C.Y. Chintamani, in the next council elections. Hidayat Husain was sad about how embarrassed the landlords were, so he said, "The future is in the hands of the deity."

The Zamindar Party and its Success

Landlords held a commanding position during the second of the Montagu Chelmsford period's four legislative councils. The landlords' understanding of political procedures lagged behind wider political trends, and their Zamindar Party remained too loose a coalition to keep landlord interests alive in the Council. Sir William Marris continued to form his government entirely from Council landlords. Landlords' influence in the Council of India was severely curtailed under Marris because Butler had abandoned positions on the policy's peripheral elements in order to keep the government's overall stance. At the same time, Marris proved himself willing to relinquish even the most important elements, such as those related to the landlords' agrarian interests. The Landlords' Council fell apart and the Awadh Policy was made because of both of these things.

The Council rejected the names of Sita Ram, Gokaran Nath Misra, and Nawab of Chhatari for their refusal to grant Marris permission to visit Nainital. This setback shattered the semblance of the Awadh Policy that had been built up, prompting the landlords to abandon their long-standing cooperation with the government. Marris, on the other hand, had already begun his search. Nawab of Chhatari arrived right away, though not without reservations. When he politely turned it down because he didn't think he was good enough, Marris brushed his complaints aside and promised not to make him Minister of Education, Nawab of Chhatari did not want to make Education Minister because didn't have a college degree and He didn't want to be knew as an "uneducated Minister of Education in future."

Kunwar Jagdish Prasad was a mature politician behind the scenes. Parmanand was a judge in the states of Indore and Kashmir and retired from the Uttar Pradesh Civil Service. Chhatari was the scion of a prominent family in the western U.P. and one of the largest landowners in the Meerut division. The new ministers were not without notoriety in their own right. Jagdish Prasad's uncle was appointed so fast that Marris should have turned to Chhatari when the Progressives refused to join the ministry.

Marris did not soften his suspicion of joint responsibility in the dyarchic government by appointing landlords as ministers. When it came to agricultural reform, it became clear that he didn't value the advice of his landlord advisers the same way.

The choice of Kunwar Parmanand and the Nawab of Chhatari as ministers, on the other hand, was a landlord's win over the Liberals. It was the result of a fight between two strong-willed people who happened to be in the same place at the same time, not because the landowners reorganised or fixed up their soldiers or weapons. This was a major blunder since the political environment in the province was rapidly changing and the Zamindar Party was unprepared to handle the tasks that arose in these new conditions. When the Indian National Congress got back into legislative politics, things got very complicated in the province and on the Council.

The Legislative Council elections and the position of Landlords

The Swarajist decision to run in the second general elections in December 1923 injected a political dimension into the campaign. The Swaraja's agenda of "internal non-cooperation" directly responded to the Liberals' call for the constitution to operate so that more changes could be implemented. The policy declarations presented by the two parties highlighted the differences in approach. Senior congressional leaders proposed a complete tactical shift in Congress. If lawmakers joined legislatures and 'wrecked' them with constant resistance, the government would be obliged to negotiate with Congress and give in to its demand for Swaraj (self-rule). The leaders argued that instead of disregarding the government and its institutions, they wanted to engage in negotiations with them.

If the British government refused to provide Indians with the right to draught their constitution, the Party would use a policy of "uniform, continuous, and consistent resistance in the Assembly and provincial Councils" to force the British government to meet its demands. In addition, the Raja Parmanand and Nawab of Chhatari issued a manifesto which called for self-government within the empire' and outlined a (more or less liberal) programme of reforms. They claimed that the purpose of their declaration was to eliminate any notion that they were reactionaries. In the summer of 1923, both ministers approached Swarajist leader Pandit Motilal Nehru and offered him a Zamindar Party pledge that "although opposing a Liberal, it would not stand in the way of Swarajists." The Zamindar Party's failure to have a significant impact on the elections is unsurprising. The party lacked the necessary electoral equipment and organisation to assist its candidates. There are signs that Raja Rampal Singh was able to use his power to "arrange" several elections in Awadh as part of a deal with some Swarajists. Liberals demanded "full Dominion status." When Raja Parmanand died in December 1923, it became necessary to appoint a new ministerial companion for the Nawab of Chhatari. Competition for ministerial positions erupted, highlighting the risk to the Zamindar Party posed by individuality among its members. There was just one clear point: Parmanand should be succeeded by someone who was a Hindu like him in order to maintain the "communal balance" in the ministry. Aside from that, the topic of who should succeed Parmanand created a problematic scenario that nearly brought the

party down. The Nawab of Chhatari was first absent from Lucknow. His initial ideas were that the choice would be between Lala Sita Ram, a capable and knowledgeable landlord-lawyer from Meerut who had run for the seat in May 1923, and Rai Rajeshwar Bali, a taluqdar from Bara Banki and a prominent member of Mashal Singh's progressive landlord group. He favoured Sita Ram out of the two, but he could not contact him when he sent a message. When he returned to Lucknow on January 4, 1924.

Sir Malcolm Hailey had advised the landlords in 1928 that the only way for them to succeed in the future was to form an organised conservative-agrarian party. Events in 1929 and 1933 bolstered his case in the eyes of the landlords, prompting them to form a landlord party. This faction, led by Jawaharlal Nehru, evolved into the Congress Socialist Party, which infused anti-landlord sentiment into Congress's thinking. The major contenders' armies had already gathered strength. Landlords were not given as secure a place in a larger, more powerful legislature as they had been in (1919–1920). The franchise extension gave them a more significant, and hence more difficult, electorate to manage. The political situation they had known since 1920 disappeared, and they were left with a "new reality" that was harder and more dangerous. Hailey and his friends predicted doom for the province if the Congress socialists swept to power under the new constitution. They built a central party of stability among moderate and property-tied groups. They campaigned among the landlords for this notion throughout 1932 and 1933, asking them to organise to defend their interests. Although there was initial interest, most landlords were not ready to take up the proposal until late 1933. The result was the formation of the National Agriculrists party led by the Nawab of Chhatari on August 5, 1934 which ushered in a new era of landlord politics.

References:

1. Butler, S.H., Oudh Policy - the policy of sympathy, Pioneer Press, Allahabad, 1906.
2. Moreland, W. H., *Agrarian system of Moslem India*, Cambridge University Press, 1929.
3. Gupta S.C., 'Agrarian structure in U.P. in the late 18th and early 19th century', C.I.E.H., I., *In Contributions to Indian Economic History, No-1, (ed.) T, Ray* Chaudhuri, *Calcutta; Firma* K.L. Mukhopadhyay, 1960.
4. Day, Winifred M., 'Relative permanence of former boundaries in India', The Scottish Geographical Magazine, LXV, no.3, Dec, 1949.
5. B.S. Cohn, Some notes on law and change in north India, Economic Development and Cultural Change, VIII, no.1. Chicago, Oct 1959.
6. Habib, M Irfan., 'Banking in Mughal India ', C. I.E. H. . . I, Calcutta, 1960.
7. Benett, W.C., Final settlement report on the Gonda district, Allahabad, 1878.
8. Neale, Walter C., *Economic change in rural India: Land tenure and reform in Uttar Pradesh*, (1800-1955), Yale University, 1962.

9. Irwin, H. C., The *Garden of India; or, chapters in Oudh history and affairs*, W.H.Allen, London, 1880.
10. G.Q.I. Reforms (Franchise) June, 1920, At 377-445. Cf. Kr, Jagdish Prasad, Reforms Officer - all district officers, 17 January, 1920.
11. Census of India 1931, vol. XVIII; United Provinces, part 1; Report by A.C. Turner, Allahabad, 1933.
12. Bulandshahr: A Gazetteer, Volume.V, District Gazetteers of The United Provinces of Agra And Oudh, The Government Brahch Press, Lucknow, 1922.
13. Siddiqui, Majid Hayat., *Agrarian Unrest in Northern India, The United Provinces (1918-22*), Ch- XIV, Vikas Publishing House, New Delhi, 1978.
14. Metcalf, Thomas R., 'The influence of the Mutiny of 1857 on land policy in India', Cambridge University press, 1961.
15. Barrow – (Chief Commissioner, Oudh), 3 Jan 1866: G.O.I., Foreign (Revenue) June 1867.
16. Ghosh, Sujata., *"The British Indian Association, Bengal Past and Present*" (1851-1900), Vol. LXXVII, Calcutta, 1958.
17. Pioneer. 30 July 1914.
18. B.I.A. translation of proceeding. General meeting, 21 January, 1921.
19. Chhatari, Nawab Said-ul-Mulk Sir Ahmad Said Khan., *Yaad-e-Ayyam*, Brown Book Publication, Aligarh, 2019.
20. Leader, 19 December, 1920.
21. Ilbert, Sir Courtenay Meston., *The New Constitution of India*, University of London, 1923.
22. Syed Raza Ali's speeches in the U.P. legislative Council see U.P.L.C. Proceedings, 1923.
23. Proceedings of UP Legislative Council, Vol. XIV, March 1923.
24. Leader, 9 July, 1926.
25. U.P. government G.A.D. File No.167 of 1927. U.P.S.A.
26. Pandey, Gyanendra., *The Ascendancy of the Congress in Uttar Pradesh (1926-34)*. Oxford University Press, New Delhi, 1978.
27. UPLC. Proceedings, Vol.XXX, 1926.
28. Leader, 20 Oct, 1921.
29. The Annual Register, Calcutta, 1923.
30. Chhatari visited Bareilly, Aligarh and Shahjehanpur in July, 1923, Pioneer. 21 July, 1923.
31. Allahabad District Zamindars' Association, 11 September, 1923.
32. Pioneer, 24 January, 1923.
33. Indian Year Book, Bombay, 1938.
34. B. R. MISRA., *Land Revenue Policy in the United Provinces under British Rule*, Nand Kishore & Bros. Benares, 1942.
35. Moreland.W.H, The Agrarian System of Moslem India: A Historical Essay with Appendices, Vanguard Press, Allahabad, 1929.

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

शिक्षक प्रशिक्षण में मूल्य के प्रति अभिवृत्ति

डॉ0 देवेन्द्र यादव
असिस्टेण्ट प्रोफेसर
शिक्षक शिक्षा विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय,
प्रयागराज।

सारांश

जिस प्रकार की अभिवृत्तियाँ व्यक्ति में उत्पन्न होती हैं और जिस प्रकार की अभिवृत्तियों का व्यक्ति पोषण करता है, प्रकारांतर में उसी प्रकार के मूल्यों का निर्माण भी होता है। प्रोफेसर राम शकल पांडे के अनुसार, मूल्य व्यक्ति के मूल में होते हैं अर्थात मूल्य के वह मूलभूत गुण होते हैं जिनके आधार पर व्यक्ति का समस्त जीवन और जीवनचर्या निर्धारित होता है। मूल्यों का निर्माण एक लम्बी प्रक्रिया के दौरान होता है। मूल्यों के स्रोत के रूप में अभिवृत्तियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है, यही अभिवृत्तियाँ जब विकृत हो जाती हैं तब इनका स्वरूप मूल्यों में परिवर्तित होता है। अतः स्पष्ट है कि अगर शिक्षण के प्रति अभिवृत्तियों में किसी प्रकार का अन्तर दृष्टिगोचर होता है तो यह भी स्पष्ट है कि शिक्षण के प्रति जो मूल्य पैदा होंगे उनमें भी एक स्पष्ट अंतर पाया जाएगा।

मुख्य शब्द– शिक्षक प्रशिक्षण, बी0एड0 प्रशिक्षणार्थी, मूल्य शिक्षा, अभिवृत्ति, सुझाव

शिक्षा को मूल्य या शिक्षा के माध्यम से मूल्यों में शिक्षा को आमतौर पर शिक्षा के मूल्य के लिए पारंपरिक अभिवृत्ति या रणनीति कहा जाता है। ये अभिवृत्ति आमतौर पर पारंपरिक मूल्यों को विकसित करने का लक्ष्य रखते हैं, जिसके लिए एक मूल्य को स्वीकार करने या औचित्य के लिए उचित कारण कभी नहीं मांगे जाते हैं। परिश्रम की रणनीति, जो कुछ पारंपरिक मूल्यों में निहित विश्वास के आधार पर, निश्चित मूल्यों को प्राप्त करने के लिए किसी प्रकार के व्यक्ति के लिए विद्यार्थियों को प्रेरित करती है, जिसका औचित्य कभी नहीं मांगा जाता है। ये अभिवृत्ति आम तौर पर समाज द्वारा निर्धारित मूल्यों और गुणों को सामाजिक रूप से मान्य मानते हैं।

पारंपरिक अभिवृत्ति के माध्यम से मूल्यों को प्रदान करने वाले शिक्षक आमतौर पर आधिकारिक होते हैं। वे अपने विचारों को छात्रों पर थोपने के लिए या तो धमकी या उद्‌बोधन रणनीति का उपयोग करते हैं। छात्रों को बिना किसी समझ के कुछ मूल्यों के लिए अपनी प्रतिबद्धता के लिए मजबूर किया जाता है, तर्क की अनदेखी की जाती है और इस अभिवृत्ति में भय, अपराध या पुरस्कार की उम्मीद जैसी भावनाओं का उपयोग किया जाता है। कहानियों के माध्यम से सद्‌गुणों और कुछ मूल्यों को विकसित किया जाता है।

नैतिक व्यवहार और विचारों को दोहराया जाता है और बच्चों को सही मूल्यों से अवगत कराया जाता है और गलत मूल्यों के साथ उनके संपर्क को हतोत्साहित किया जाता है। यह अभिवृत्ति कारण, महत्वपूर्ण जागरूकता और नैतिक जांच के स्तर को कम करता है।

मूल्य स्पष्टीकरण अभिवृत्ति रथ, हरमिन और साइमन द्वारा प्रस्तावित किया गया था। इस अभिवृत्ति का उद्देश्य शिक्षार्थियों की मदद करना, आत्म अवलोकन और आत्म विश्लेषण के माध्यम से उन मूल्यों को खोजना है, जिन्हें केवल वे ही मान्य या अमान्य मान सकते हैं। मूल्य सिद्धांत के मूल्य और मान्यताओं के विचार और मूल्य स्पष्टीकरण के शिक्षण रणनीतियों रथ एट अल द्वारा कहा गया है, ष्हमारे मूल्य सिद्धांत और शिक्षण रणनीतियों में एक धारणा है जो इससे बढ़ती है कि मनुष्य चुनने की एक बुद्धिमान प्रक्रिया द्वारा मूल्यों पर पहुंच सकता है। , पुरस्कार और व्यवहार। कम से कम हम यह मानते हैं कि मनुष्य उस प्रक्रिया के माध्यम से किसी चीज पर पहुंच सकते हैं, और साहित्य में कुछ समर्थन के साथ, हम उस कुछ मूल्यों को पसंद करते हैं।

यह अभिवृत्ति आगे बताता है कि मूल्य व्यक्तिगत चीजें हैं और स्पष्ट प्रतिक्रियाएं उन स्थितियों में काम करती हैं जहां कोई सही उत्तर नहीं हैं, एक ऐसे क्षेत्र से निपटना जो सबूत या सहमति का विषय नहीं है, लेकिन अनुभव और मूल्यों का मामला सिर्फ सच या झूठ का मामला नहीं है। मूल्य स्पष्टीकरण अभिवृत्ति की शिक्षण अधिगम रणनीतियाँ उपरोक्त मान्यताओं पर आधारित हैं। शिक्षार्थियों को केवल शिक्षक से किसी भी टिप्पणी के बिना अपने मूल्यों को स्पष्ट करने के लिए कहा जाता है। छात्रों की प्रतिक्रियाओं को बेहतर या बदतर नहीं माना जाता है, प्रत्येक छात्र के विचारों को समान सम्मान के साथ माना जाता है। यह अभिवृत्ति छात्रों को सापेक्षवादियों तक ले जाएगा, यह विश्वास करते हुए कि कोई सही नैतिक जवाब नहीं है।

यह अभिवृत्ति यह साबित करने में विफल रहता है कि कुछ मूल्य बेहतर या अच्छे क्यों हैं? हालांकि यह अभिवृत्ति छात्रों को खुद के लिए सोचने के लिए प्रोत्साहित करता है, उदासीनता को रुचि में परिवर्तित करता है, विवादास्पद विचारों के बीच सहिष्णुता विकसित करता है, लेकिन मूल्यों में शिक्षा, विशेष रूप से नैतिक मूल्यों में, इस अभिवृत्ति के माध्यम से दिया जा सकता है।

ऊपर चर्चा की गई मूल्य शिक्षा के विभिन्न अभिवृत्तियों में उनकी खूबियां और कमियां हैं, इसलिए, कोई भी अभिवृत्ति शिक्षार्थियों के मूल्यों को विकसित करने में प्रभावी नहीं होगा। शिक्षण मूल्यों के प्रभावी तरीके के लिए प्रत्येक अभिवृत्ति के गुण को एकीकृत किया जाना चाहिए। एकीकृ त अभिवृत्ति में निम्नलिखित शामिल हो सकते हैं–

- संघात्मक और अनुकूल संस्थागत जलवायु, जहां पाठ्यचर्या और सह–पाठयक्रम गतिविधियां और कार्यक्रम मूल्यों की चेतना को बढ़ावा देते हैं।
- वांछनीय स्कूल के अनुभवों के पूरक और पूरक अभिवृत्ति और स्कूल के अनुभवों से बाहर।
- मूल्य शिक्षा में शिक्षकों, अभिभावकों और समुदाय द्वारा रचनात्मक भागीदारी।
- पूछताछ, अनुभव और कार्रवाई पर जोर दिया जाना चाहिए ताकि मूल्य निर्धारण के दौरान समझ, आवेग के साथ मूल्य स्पष्टीकरण सुनिश्चित किया जा सके, इसके बाद मूल्यों का आंतरिककरण और सामंजस्य स्थापित किया जाएगा।
- मूल्य विकास के लिए चार–गुना कार्यक्रम के बाद शिक्षकों द्वारा सेवा प्रशिक्षण कार्यक्रम और पूर्व–सेवा शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम शिक्षकों और भावी शिक्षकों के बीच मूल्यों के विकास के लिए किए जा सकते हैं जो बदले में उनके मानवाधिकार जागरूकता को बढ़ाएंगे।

इस संबंध में की जाने वाली महत्वपूर्ण गतिविधियाँ निम्नलिखित हैं–

- राष्ट्रीय त्योहारों का उत्सव
- समाज सेवा कार्यक्रम
- सभी धर्मों की एकता पर जोर, समुदायों के बीच सद्भाव और राष्ट्रीय एकीकरण
- वैज्ञानिक स्वभाव का विकास
- स्कूल में सामुदायिक प्रार्थना
- स्वास्थ्य और स्वच्छता कार्यक्रम
- सामाजिक रूप से उपयोगी उत्पादक कार्यक्रम
- नागरिकता प्रशिक्षण कार्यक्रम
- सांस्कृतिक और मनोरंजक कार्यक्रम
- स्कूलों में छात्र स्वशासन
- सूचना प्रौद्योगिकी का परिचय
- अंतर्राष्ट्रीय समझ
- उपयुक्त शिक्षण–अधिगम परिस्थितियाँ

बी0एड0 प्रशिक्षणार्थियों के मूल्यों की अभिवृत्ति में बढ़ावा देने हेतु निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं–

- मनुष्य समाज में रहता है समाज में रहकर वह अपना बेहतर जीवन निर्वहन करता है। वह समाज का सैद्धान्तिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक स्थितियों में सक्रिय रूप से सहभागिता निभाना और इनसे सम्बन्धित जीवन के मूल्यों से अवगत होकर उनको जीवन शैली के रूप में स्वीकार करके जीवन यापन करता है। यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति अपने अन्तर्निहित गुणों का व्यवहार जगत में अनुशीलन करें।
- प्रशिक्षणार्थी में मूल्यों का होना अति आवश्यक है क्योंकि भविष्य के अध्यापक के रूप में कार्यरत होगें और उन्हें विद्यार्थियों में इन मूल्यों को जागृत करना है।
- प्रशिक्षणार्थियों को अपने मूल्यों में और वृद्धि करना चाहिए जिससे उनके आने वाले समय में अध्यापक पद पर नियुक्त होंगे तो उन्हें समाज, विद्यालय, देश एवं अन्य जगहों पर इन मूल्यों की आवश्यकता होगी।
- नई पीढ़ी के लोगों में, विशेषकर नवयुवकों में राष्ट्रीयता और भारतीयता के जीवन मूल्य के प्रति समर्पण की भावना शिक्षा के द्वारा उत्पन्न की जा सकती है। इसमें शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका होगी क्योंकि देश के भावी कर्णधारों के अनुकरणीय व्यवहार के निर्धारक शिक्षक ही हैं।
- मूल्यों की शिक्षा उन्हीं शिक्षकों के द्वारा सुचारू रूप से दी जा सकती है जिसमें मूल्यों के प्रति सच्ची भावना हो और जो अपने कार्य और व्यवहार द्वारा जीवन मूल्यों की शिक्षा दें।

- सत्यनिष्ठ बनकर अपने छात्रों को सच्चाई का पाठ पढ़ाये। स्वयं चरित्रवान बनकर अपने विद्यार्थियों के चरित्र का विकास करे।
- स्वयं देश–सेवा के प्रति समर्पित होकर नई–पीढ़ी को देश–सेवा के जीवन मूल्यों की शिक्षा दें।
- मूल्यों का छात्र/छात्राआं में उद्देश्यपरक भावना का विकास करना चाहिए।
- हमारी शिक्षा व्यवस्था मूल्यपरक होना चाहिए जिससे छात्रों में अनिश्चितता का भाव विकसित न होने पाये।
- छात्र/छात्राओं के लिए उचित वातावरण होना चाहिए जिससे वे चिन्ता मुक्त वातावरण में रहकर अपने उद्देश्यों की पूर्ति कर सके।
- हमारी शिक्षा दिशा विहीन न होकर दिशा का बोध कराने वाली होनी चाहिए जिससे छात्र/छात्राओं में मूल्यों को बढ़ाया जा सके।
- विद्यालयों में खेल, प्रतियोगिता एवं अन्य कार्यक्रम कराकर विद्यार्थियों के मूल्यों को और विकसित करना चाहिए।
- विद्यार्थियों को भ्रमण पर ले जाना चाहिए जिससे उनमें अनेकों प्रकार के अलग–अलग जगहों पर उन्हें अलग–अलग मूल्यों को पहचान सकें।
- देश की वर्तमान शिक्षा से जीवन मूल्य जो लोप होते जा रहे है उस पर विचारों द्वारा पुनः प्राप्त किया जा सकता है। शिक्षण संस्थानों के हिंसक होते वातावरण पर अंकुश लगाया जा सकता है। साम्प्रदायिक विद्वेश को उनकी व्यापक धर्म शिक्षा समाप्त कर जीवन में सत्य आधारित एवं आडम्बरविहीन स्निग्धता का सूत्रपात कर सकती है। राष्ट्रीय एकता के लिए तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के लिए उनके शैक्षिक चिन्तन को वर्तमान समय में स्वीकार करना कल और संघर्ष के विनाश कूप में कूदने से पूर्व अंधेरे पथ में दीप ग्रहण करना होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- कमल किशोर (2011), अनुदानित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन, एम.एड. लघुशोध, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी।
- कुमार, ए0 (2005). जेण्डर डिफरेन्सेज इन वैल्यूज ऑफ स्टूडेन्ट–टीचर्स। *जर्नल ऑफ एजूकेशनल स्टडीज,* 3(1), पृ0 (20–22)
- कुसुमाकर, अरूणा (2015). वर्तमान शिक्षा पद्धति में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता एक अध्ययन, *दिव्या शोध समीक्षा, एन इण्टरनेशनल रिफ्रिड जर्नल,* पृ0 199–201
- कुमार, मनोज (2018). शिक्षक–शिक्षा में गुणवत्ता के मुद्दे, *रिव्यू ऑफ रिसर्च,* वॉ0 7, इश्शू–6, पृ0 1–8
- पाण्डेय, चन्द्रदीप (2017). जीवन मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में समायोजन, नार्थ एशियन इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ मल्टीडिस्पिलनरी, वॉ0 3, इश्शू–10, पृ0 48–55

- भारती, लक्ष्मीना (2018). आधुनिक प्रौद्योगिकी शिक्षा एवं मानवीय मूल्य, *रिमॉकिंग एन एनालाइजेशन*, वॉ0 3, इश्शू–5, पृ0 216–218
- यादव, राम सरन (2009). अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन. एम.एड. लघु शोध प्रबन्ध, इलाहाबादः इलाहाबाद विश्वविद्यालय।
- रानी, वंदना (2018). शिक्षकों की गुणात्मक शिक्षा के अभिवर्धन में मूल्यों की भूमिका, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांसड एजुकेशन एण्ड रिसर्च*, वॉ0 3, इश्शू–1, पृ0 151–152
- शर्मा, एस0के0 एवं सिंह, जे0 (2013). बी0एड0 प्रशिक्षणार्थियों में प्रशिक्षण पूर्व एवं प्रशिक्षण पश्चात् निहित मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन। *शिक्षा चिन्तन*, त्रिमूर्ति संस्थान, 12(48)।
- सुनीता एवं यादव, शालिनी (2016). कला एवं विज्ञान संकाय के स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिपलनरी एलाइड रिसर्च रिव्यू एण्ड प्रैक्टिस*, वॉ0 3, इश्शू–2, पृ0 435–445
- सिंघल एवं खमारी (2017). बी.एड. प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के व्यक्तिगत मूल्यों का अध्ययन, *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च*, 3(10), पृ0 232–236

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

A COMPARATIVE STUDY OF INTERACTION BEHAVIOUR BETWEEN ENGLISH AND HINDI TEACHING

Dr Vineet Kumar Mishra
Associate professor
Dept. of B.Ed.
Late Gaya Prasad Degree College,
Bhabhua, Banda

ABSTRACT

A teaching method comprises the principle and methods used for interaction. Commonly used teaching methods may include class participation, demonstration, recitation, memorization or combination of these. The choice of teaching method are methods to be used depends largely on the information or skill that is being taught, and it may also be influenced by the aptitude and enthusiasm of the students.Researcher have tried to arrive at a general description of teachers and to identify the skills of teachers specific to subjects namely -Hindi and English. Survey technique of descriptive method of research was applied to conduct the present study. With the help of random sampling method100 Pupil teachers related with Hindi and English subjects teaching were selected as sample of the present study. Researcher has developed and applied an Interaction Behaviour Observation schedule. Percentage analysis was done to interpretating the data.

KEY WORDS: Pupil teachers, interaction behaviour, English and Hindi teaching

INTRODUCTION:

Teacher behaviour is overt as well as covered, visible as well as invisible, perceptible as well as imperceptible, modular rather than molar, interactive, observable and measurable. It involves a number of activities is modifiable and integrative in nature.However, it is usually the overt, the visible and the perceptible form, which becomes the object of study and analysis as well as the focus of common concern.There are two types of concepts which have been used by researchers to describe the sequential pattern of teacher classroom behaviour.They are known as tactical and strategic concepts.The tactical behaviour can be observed during classroominteractions. The strategic behaviour is visible in structuring and implementing the instructional system.

Another important feature of teacher behaviour is that, it deals with a special phenomenon arising fro the interaction between the teacher pupils and the specific content of subject matter which display periodic and dynamic behaviour of the teacher

(*Hymen 1971*), related to the manifestation of cognitive structure with corpus of knowledge.Teaching is a dynamic interplay between the teacher and the nature of the pupils.During the teaching processes the teacher establishes report and a sound working relationship with the students and many kinds of learning can be affected under this guidance.(*Ryson 1960*) defined teacher behaviour as the behaviour or activities of persons as they go about doing whatever is required of teachers, particularly those activities that are concerned with the guidance are direction of the learning of others.

Classroom are populated by people whose success as teachers and students will largely depend on the verbal and nonverbal communication skills.A teaching method comprises the principle and methods used for interaction.Commonly used teaching methods may include class participation, demonstration, recitation, memorization or combination of these.The choice of teaching method are methods to be used depends largely on the information or skill that is being taught, and it may alsobe influenced by the aptitude and enthusiasm of the students.

For language teachers the pattern of higher proportion of student - talk to teacher - talk the reflexibility, content cross and total teacher talk wear found to be normative expectations. (*Khanna,1985*), found that successful teachers had traits which were positively helpful and valuable for the mental health of the individual, whereas unsuccessful teachers had traits with which tended to lead the person to a kind of Mal adjustment. The common factors to be teaching of language subject were skills of introducing a lesson, blackboard writing, questioning, reinforcement, using teaching aids and explanations.

Researcher have tried to arrive at a general description of teachers and to identify the skills of teachers specific to subjects namely -Hindi and English.For the conduction of research, the researchers haveattempted various library and related literature at various libraries, so that one can arrive at a generalization attempts in the field to in educational interaction, very few researches have done.So, the present research paper has taken place in this format and dealt with interaction process in teaching during Hindi and English subjects.

OBJECTIVE OF THE STUDY:

The study was conducted under this objective

- To compare interaction behaviour of pupil teachers during teaching of English and Hindi language.

HYPOTHESIS OF THE STUDY:

The hypothesis was formulated for the study is-

- There is no significant difference in interaction behaviour of pupil teachers during teaching of English and Hindi language.

METHODOLOGY OF THE STUDY:

Method is a style of conducting research work which is determined by the nature of the problem.Survey technique of descriptive method of research was applied to conduct the present study.Population of the present study consists of the pupil teachers, teaching English and Hindilanguage atB.Ed level in Prayagraj district.With the help of random sampling method100 Pupil teachers (50 Hindi teachers and 50 English teacher) related with Hindi and English subjects teaching were selected as the sample of the present study. To observe and measure the interaction behaviour, researcher has developedand applied an*Interaction Behaviour Observation schedule.* On the basis of nature of the data, qualitative analysis method was used and percentage analysis was done to interpretating the data.

RESULT AND DISCUSSION:

Table Number 01

Average scores of percentages of individual interaction behaviour of pupil teachers during English and Hindi teaching

Sr.no.	Observed Behaviour	English teaching		Hindi teaching	
		Average score	% Of frequency	Average score	% Of frequency
1	Except feeling	1.4	6.10%	1.22	6.28%
2	Praise and encouragement				
	Repetition of students correct responses by teacher	0.4	1.74%	0.5	2.57%
	Uses of ok good and other words	2.80	12.20%	2.14	11.0%1
	Making fun without being personalized particular students	0	0%	0.2	1.02%
3	Swift ideas of students	0.2	0.87%	0.66	3.39%
4	Ask questions	3.20	13.94%	1.08	11.12%
5	Lecturing	1.08	4.70%	1.14	5.87%
6	Directing instructions	1.04	4.53%	1.06	5.45%
7	Criticizing	0.08	0.34%	0.08	0.41%
8	Response	0.46	2.00%	0.60	3.08%
9	Students' initiation	0.30	1.30%	0.32	1.64%

10	Silence/ confusion	0.22	0.95%	0.50	2.57%
11	Motivation	1.54	6.71%	1.20	0.51%
12	Dis increasing students	0.02	0.08%	0.10	0.51%
13	Maintain democratic and flexible class environment	1.40	6.10%	1.14	5.87%
14	Motivate students for arguments	1.24	5.54%	1.12	5.76%
15	Caring all the students equally	1.38	6.01%	1.02	5.25%
16	Verbal interaction while writing and demonstrating	2.32	10.11%	1.52	7.82%
17	Use of sentences and examples according to interest potential of students	1.9	8.28%	1.22	6.28%
18	Use of important teaching skills	1.96	8.54%	1.52	7.82%

Table no. 01 shows that-

- The pupil teachers of English teaching showed6.1 0% of interaction behaviour related to *Acceptfelling,* whereas the pupil teachers related of Hindi teaching showed 6.28% of the interaction behaviour.
  The pupil teachers of Hindi teaching shows slightly more interaction behaviour related to *except feeling* than pupil teachers of English.
- The pupil students of Hindi teaching shows slightly more interaction behaviour related *to Repetition of students correct responses* by pupil teachers than English teaching.
- The pupil teachersof English teaching shoes slightly more interaction behaviour related to *used okay good and other words* than pupil teachers of Hindi teaching.
- The pupil teachers of Hindi teaching shoes slightly more interaction behaviour related to *Making fun with sound being personalized up particular students words* than English teaching.
- The pupil teachers of Hindi teaching Shows more interaction behaviour related to *Teacher argued at students ideas* than English teaching.
- The pupil teachers of English teaching shows more interaction behaviour related to *Teacher asked student by their name* than pupil teachers those of Hindi teaching.

- Thepupil teachers of Hindi teaching shows more interaction behaviour on *Lecturing* than those of English teaching.
- The pupil teachers of Hindi teaching showsmore interaction behaviour on *Directing instructions* than those of English teaching.
- The pupil teachers of Hindi teaching shows more interaction behaviour on *Made fun of any particular of the students* than pupil teachers of English teaching.
- The pupil teachers of Hindi teaching shows more interaction behaviour on *Students replied correctly* than pupil teachers of English teaching.
- The pupil teachers of Hindi teaching shows more interaction behaviour on *Students initiation* thanpupil teachersof English teaching.
- Pupil teachers of Hindi teaching shows more interaction behaviour on *silence / confusion* than pupil teachers of English teaching.
- The pupil teachers of English teaching shows more interaction behaviour on *Motivation* than pupil teachers of Hindi teaching.
- The pupil teachers of Hindi teaching shows more interaction behaviour on this *Discouragingstudents* than pupil teachers of English teaching.
- The students of English teaching shows more interaction behaviour on *To maintain democratic and flexible class environment,*thanpupil teachers of Hindi teaching.
- The pupil teachers s of Hindi teaching shows more interaction behaviour on *To motivate students for conversation arguments,*than pupil teachers ofEnglish teaching.
- Thepupil teachers of English teaching shows more interaction behaviour on *Verbal interaction while writing and demonstrating,* than pupil teachers of Hindi teaching.
- The pupil teachers of English teaching shows more interaction behaviour on U*se of sentences and examples* than pupil teachers of Hindi teaching.
- The pupil teachers of English teaching shows more interaction behaviour on *Use of important teaching skills,* than pupil teachers of Hindi teaching.

References:

- **Banta,wala&Ayasha,G.(1989).**Exploring the relationship between the classroom interactionand uptake in EFL(English as foreign language)teaching classes to provide better learning opportunities,Ph.D.Edu.Srimati NathibaiDamodar Women university.
- **Butch, M.B. (1978-83).** Third survey of Educational Research,vol-01, New Delhi, NCERT.
- **Butch, M.B. (1988-92).**Fifth survey of Educational Research,vol-01, New Delhi, NCERT.
- **Butch, M.B. (1978-83).** Third survey of Educational Research,vol-01, New Delhi, NCERT.

- **Desai, Sushila, S. (1992**). Interactive effect of sources of feedback and student teacher personality on student teacher competence. Ph.D. Edu.,Karnataka University.

- www.google.co.in
- http://www.academicjournals.org
- www.sodhganga.com
- www.sodhgangotri.com
- www.iosrjournals.org
- www.shodhganga.inflibnet.ac.in
- www.ijip.in
- www.iiste.org
- www.arcjournals.org

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

विद्यालय के वातावरण का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्य में सम्बन्ध का एक अध्ययन

शोध निर्देशक
डॉ0 अरविन्द कुमार मौर्य
एसोसिएट प्रोफेसर
शिक्षक–शिक्षा विभाग
नागरिक पी0जी0 कालेज,
जंघई, जौनपुर (उ0प्र0)

शोधकर्त्ता
संजय कुमार यादव
एम0एड्0, नेट (शिक्षाशास्त्र)

सारांश

समस्या कथन **विद्यालय के वातावरण का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्य में सम्बन्ध का एक अध्ययन करना है।** प्रस्तुत अध्ययन में शोध विधि के रूप में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सहसम्बन्धात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में जौनपुर जिले में स्थित यू0पी0 बोर्ड एवं सी0बी0एस0ई0 बोर्ड से सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं को जनसंख्या माना गया है। न्यादर्श के अन्तर्गत जौनपुर जिले में संचालित यू0पी0 बोर्ड एवं सी0बी0एस0ई0 बोर्ड से सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों का चयन किया गया है तत्पश्चात् उसमें अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है। न्यादर्श के रूप में हिन्दी माध्यम के 150 विद्यार्थी तथा अंग्रेजी माध्यम के 150 विद्यार्थी अर्थात् कुल 300 विद्यार्थियों को चयनित किया गया है। प्रो0 के0एस0 मिश्र द्वारा निर्मित 'स्कूल इन्वायरमेन्ट इन्वेन्टरी' एवं विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्य मापने के लिए फौजिया नजम एवं डॉ0 एस0एम0 खान द्वारा निर्मित ''आध्यात्मिक मूल्य मापनी'' का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु सह–सम्बन्ध गुणांक (कार्ल पियर्सन गुणन आर्घूण) विधि का प्रयोग किया है। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि–

- विद्यालयी वातावरण की विमा सृजनात्मक उद्दीपक, संज्ञानात्मक प्रोत्साहन, अनुशंसाकरण, स्वीकारोक्ति, अस्वीकृति, अंकुश एवं सम्पूर्ण विद्यालयी वातावरण में वृद्धि या कमी का हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों के वृद्धि या कमी से सम्बन्ध नहीं है।
- विद्यालयी वातावरण की विमा सृजनात्मक उद्दीपक, संज्ञानात्मक प्रोत्साहन, अनुशंसाकरण, स्वीकारोक्ति, अस्वीकृत, अंकुश एवं सम्पूर्ण विद्यालयी वातावरण की कमी या वृद्धि का अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्य में कमी या वृद्धि से सम्बन्धित नहीं है।

मुख्य शब्द– हिन्दी, अंग्रेजी, माध्यमिक विद्यालय, छात्र–छात्राएँ, विद्यालयी वातावरण, नैतिक मूल्य, सम्बन्ध।

प्रस्तावना–

प्राचीन शिक्षा पद्धति के परिणामस्वरूप ही भारत–भूमि पर सदैव सन्तों, महात्माओं, महायोगियों, धर्मचारियों एवं महापुरूषों का अवतरण होता रहा। इन महापुरूषों की महानता में हमारी शुचिता सम्पन्न धरती की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक उर्वरता का विशिष्ट योगदान है। इन

महापुरूषों की प्रेरणा से ब्रह्मचर्यव्रती स्नातक और विद्यार्थियों ने महामानव होने की प्रतिष्ठा प्राप्त की और अपने ज्ञान ज्योति से विश्व को आलोकित किया। 'धर्म–गुरू' से अलंकृत होने का गौरव भारत को प्राप्त है तथा प्राचीन भारतीय आर्य संस्कृति आज भी विश्व के समक्ष एक आदर्श है। उन सबके पीछे एक सुदृढ़ अवलम्ब के रूप में हमारी प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति एवं शिक्षा प्रणाली है।

जैसे–जैसे युग बदलता गया शिक्षा का लक्ष्य भी परिवर्तित एवं परिमार्जित होता गया। वैदिक काल से चलकर बौद्ध युग और इस्लाम युग के अनुक परिमार्जनों को समेटे हुए शिक्षा ने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की लड़ाई लड़ी और फिर बीसवीं (20वीं) सदी के साथ–साथ स्वतन्त्र भारत में प्रवेश किया। अपनी बदलती आवश्यकता के साथ–साथ मनुष्य की आध्यात्मिकता एवं नैतिक विकास के मध्य संतुलन स्थापित करना बीसवीं सदी का चुनौती बिन्दु है। 'सा विद्या या विमुक्तये' का नारा आज की स्थिति में हास्यास्पद लगता है। आज का भौतिकवादी युग मुक्ति या मोक्ष की अवधारणा को पीछे ढकेल रहा है। जीवन की भाग–दौड़ में हर कोई चकाचौंध भरी जिन्दगी जीना चाह रहा है तथा शिक्षा को भौतिक आवश्यकता को पूरी करने का माध्यम जीना चाह रहा है। जैसा कि मैथिलीशरण गुप्त जी ने कहा है कि शिक्षा 'तेरा नाश हो, तू नौकर के हित बनी'। आज न तो हम शिक्षा को मुक्ति का आकांक्षी बताकर, साधना का साधन बताकर शिक्षित लोगों को कटोरा थमा सकते हैं और न ही भगवा वस्त्र पहना सकते हैं और न ही लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति को अपनाकर केवल बाबू वर्ग पैदा कर सकते हैं। आज शिक्षा रोजगार से जुड़ गयी है, पढ़ना केवल नौकरी का उपकरण बनकर रह गयी। तकनीकी शिक्षा ग्रहण कर भी हम सन्तुष्ट नहीं हो पा रहे हैं और आज देश में डाक्टर, इंजीनियर और तकनीशियनों की भरमार है। वर्तमान युग ने शिक्षा सम्बन्धी पुरानी धारणाओं, मान्यताओं एवं शिक्षकों को एकदम नकार दिया है। आज की परिस्थिति ऐसी शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता महसूस कर रही है जो इन उपभोक्तवावादी संस्कृति को नकार दे और मनुष्य को वास्तव में संतुष्टि प्रदान कर सके। इसके लिए हमें पुनः अपने स्वर्णिम अतीत से लेकर वर्तमान तक की शिक्षा को खंगालने का प्रयत्न करना पड़ेगा और ढूँढकर ऐसी मंजी हुई विकासोन्मुख शिक्षा व्यवस्था करनी पड़ेगी जो मानव को मानव होने का उद्देश्य समझा सके, सच्ची शिक्षा दे सके।

शिक्षा का जो आध्यात्मिक, धारणात्मक, मानसिक एवं सांस्कृतिक विकास को एक साथ अगली पीढ़ी तक पहुँचाने का प्रभावी माध्यम पुरातन काल में थी, आज भी कमोवेश वही काम कर रही है। अगर शिक्षा का माध्यम न होता तो मनुष्य न तो अपने पुरातन से जुड़ पाता और न ही भविष्य की रूपरेखा के ताने–बाने बुन पाता। फिर कहा भी तो गया है– विद्याविहीन मनुष्य पशु है।' जिस प्रकार पशु का न तो कोई अतीत होता है न वर्तमान, उसी प्रकार मनुष्य भी बिना विद्या के जीता रहता है उसका विकास भी सम्भव नहीं हो पाता और जो कुछ भी वर्तमान में सीखता है उसको अगली पीढ़ी को सौंप नहीं पाता। वेदों, पुराणों और श्रुतियों जैसे ज्ञान के अगाध भण्डार से हम अछूते रहते।

किसी भी राष्ट्र के विद्यालय को उसकी प्रतिनिधि संस्था कहा जा सकता है। जैसा कि टी0पी0 नन ने कहा है – ''एक राष्ट्र के स्कूल उसके प्राण हैं। ये उसकी आध्यात्मिक शक्ति को दृढ करते हैं उसकी ऐतिहासिक अविरलता को संवाहित रखते हैं उसके अतीत की रक्षा करते हैं तथा उसके भविष्य को सुरक्षित बनाते हैं।'' वे जीवन को आदर्श रूप में प्रस्तुत करते हुए जीवन के समस्त पहलुओं को स्पर्श करते हैं और उसके अतीत वर्तमान और भविष्य के रूप का दिग्दर्शन कराते हैं।

यूँ तो अवस्था के अनुरूप बालकों में जीवन–मूल्यों के उदय होने की घोषणा हमारे मनोवैज्ञानिक कर चुके है। ब्यूलर (1993) का मानना है कि बालकों में जीवन मूल्यों के विकास की आयु 15–16 वर्ष है परन्तु इसके अतिरिक्त क्राइस्ट महोदय (1969) का मानना है कि बालकों में जीवन मूल्यों का विकास बाल्यावस्था के अन्त तक किशोरावस्था के प्रारम्भ में ही होने लगता है किन्तु उसमें स्थैर्यता किशोरावस्था के अन्त तक हो जाती है। माध्यमिक स्तर के छात्र किशोरावस्था में जिसका प्रवेश हो चुका होता है मूल्यों के निर्धारण में काफी सार्थक सिद्ध होगे इस दृष्टि से शोधकर्ता के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ है कि हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन किया जाए। विद्यार्थियों को उन नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से अवगत कराना आवश्यक है जिससे वह अपने नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के महत्व को समझें। अतएव प्रस्तुत अध्ययन के लिए शोध समस्या का चयन किया गया है। इस क्षेत्र में किए गये शोध से प्राप्त ज्ञान, सरकार, समाज, केन्द्रीय एवं माध्यमिक विद्यालयों के परिवार, समाज, देश, शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी होगा।

समस्या कथन–

विद्यालय के वातावरण का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्य में सम्बन्ध का एक अध्ययन।

अध्ययन का उद्देश्य–

अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का अध्ययन किया गया है–

1. हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन करना।
2. अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ–

अध्ययन में निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है–

H_{01} हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्यों में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

H_{02} अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्यों में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

शोध–प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन में शोध विधि के रूप में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सहसम्बन्धात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में जौनपुर जिले में स्थित यू0पी0 बोर्ड एवं सी0बी0एस0ई0 बोर्ड से सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं को जनसंख्या माना गया है। न्यादर्श के अन्तर्गत जौनपुर जिले में संचालित यू0पी0 बोर्ड एवं सी0बी0एस0ई0 बोर्ड से सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों का चयन किया गया है तत्पश्चात् उसमें अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है। न्यादर्श के रूप में हिन्दी माध्यम के 150 विद्यार्थी तथा अंग्रेजी माध्यम के 150 विद्यार्थी अर्थात् कुल 300 विद्यार्थियों को चयनित किया गया है। प्रो0 के0एस0 मिश्र द्वारा निर्मित 'स्कूल इन्वायरमेन्ट इन्वेन्टरी' एवं

विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्य मापने के लिए फौजिया नजम (शोधछात्र, मनोविज्ञान विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़), प्रो0 अकबर हुसैन (प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़) एवं डॉ0 एस0एम0 खान (मनोविज्ञान वैज्ञानिक अधिकारी, मनो–तकनीकी इकाई, दक्षिण रेलवे हेड क्वार्टर, चर्चगेट, मुम्बई) द्वारा निर्मित ''आध्यात्मिक मूल्य मापनी'' का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु सह–सम्बन्ध गुणांक (कार्ल पियर्सन गुणन आर्घूण) विधि का प्रयोग किया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

1. **हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन**

H_{01} हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्यों में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

सारणी सं0 1

हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक

क्र0सं0	विद्यालयी वातावरण एवं आध्यात्मिक मूल्य	सहसम्बन्ध गुणांक r (N=150)
1	सृजनात्मक उद्दीपक एवं आध्यात्मिक मूल्य	0.052
2	संज्ञानात्मक प्रोत्साहन एवं आध्यात्मिक मूल्य	0.009
3	अनुशंसाकरण एवं आध्यात्मिक मूल्य	-0.061
4	स्वीकारोक्ति एवं आध्यात्मिक मूल्य	-0.049
5	अस्वीकृति एवं आध्यात्मिक मूल्य	-0.017
6	अंकुश एवं आध्यात्मिक मूल्य	-0.038
7	विद्यालयी वातावरण एवं आध्यात्मिक मूल्य	-0.015

*.05 स्तर पर असार्थक

सारणी संख्या 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण की विमा सृजनात्मक उद्दीपक, संज्ञानात्मक प्रोत्साहन, अनुशंसाकरण, स्वीकारोक्ति, अस्वीकृति, अंकुश एवं सम्पूर्ण विद्यालयी वातावरण का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान क्रमशः 0.052, 0.009, –0.061, –0.049, –0.017, –0.038 एवं –0.015 है जो .05 स्तर पर असार्थक है। अतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण की विमा सृजनात्मक उद्दीपक, संज्ञानात्मक प्रोत्साहन, अनुशंसाकरण, स्वीकारोक्ति, अस्वीकृति, अंकुश एवं सम्पूर्ण विद्यालयी वातावरण का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्य के मध्य के साथ सम्बन्धित नहीं है अर्थात् विद्यालयी वातावरण की विमा सृजनात्मक

उद्दीपक, संज्ञानात्मक प्रोत्साहन, अनुशंसाकरण, स्वीकारोक्ति, अस्वीकृति, अंकुश एवं सम्पूर्ण विद्यालयी वातावरण में वृद्धि या कमी का विद्यार्थियों के वृद्धि या कमी से सम्बन्ध नहीं है।

2. **अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन**

H_{02} अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्यों में कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

सारणी सं0 2

अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक

क्र0सं0	विद्यालयी वातावरण एवं आध्यात्मिक मूल्य	सहसम्बन्ध गुणांक r (N=150)
1	सृजनात्मक उद्दीपक एवं आध्यात्मिक मूल्य	-0.072
2	संज्ञानात्मक प्रोत्साहन एवं आध्यात्मिक मूल्य	0.063
3	अनुशंसाकरण एवं आध्यात्मिक मूल्य	-0.047
4	स्वीकारोक्ति एवं आध्यात्मिक मूल्य	0.058
5	अस्वीकृति एवं आध्यात्मिक मूल्य	-0.094
6	अंकुश एवं आध्यात्मिक मूल्य	0.030
7	विद्यालयी वातावरण एवं आध्यात्मिक मूल्य	-0.030

*.05 स्तर पर सार्थक नहीं

सारणी संख्या 2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों के वातावरण का विद्यार्थियों के विद्यालयी वातावरण की विमा सृजनात्मक उद्दीपक, संज्ञानात्मक प्रोत्साहन, अनुशंसाकरण, स्वीकारोक्ति, अस्वीकृत, अंकुश एवं सम्पूर्ण विद्यालयी वातावरण का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान क्रमशः –0.072, 0.063, –0. 047, 0.058, –0.094, 0.030 एवं –0.030 है जो .05 पर असार्थक है अतः विद्यालयी वातावरण की विमा सृजनात्मक उद्दीपक, संज्ञानात्मक प्रोत्साहन, अनुशंसाकरण, स्वीकारोक्ति, अस्वीकृत, अंकुश एवं सम्पूर्ण विद्यालयी वातावरण का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्य के साथ सम्बन्धित नहीं है अर्थात् विद्यालयी वातावरण की विमा सृजनात्मक उद्दीपक, संज्ञानात्मक प्रोत्साहन, अनुशंसाकरण, स्वीकारोक्ति, अस्वीकृत, अंकुश एवं सम्पूर्ण विद्यालयी वातावरण की कमी या वृद्धि का विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्य में कमी या वृद्धि से सम्बन्धित नहीं है।

निष्कर्ष–

अध्ययन के निष्कर्ष में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- विद्यालयी वातावरण की विमा सृजनात्मक उद्दीपक, संज्ञानात्मक प्रोत्साहन, अनुशंसाकरण, स्वीकारोक्ति, अस्वीकृति, अंकुश एवं सम्पूर्ण विद्यालयी वातावरण में वृद्धि या कमी का हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों के वृद्धि या कमी से सम्बन्ध नहीं है।

- विद्यालयी वातावरण की विमा सृजनात्मक उद्दीपक, संज्ञानात्मक प्रोत्साहन, अनुशंसाकरण, स्वीकारोक्ति, अस्वीकृत, अंकुश एवं सम्पूर्ण विद्यालयी वातावरण की कमी या वृद्धि का अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के आध्यात्मिक मूल्य में कमी या वृद्धि से सम्बन्धित नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अवस्थी, रागिनी (2015). स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की आध्यात्मिक एवं सांवेगिक बुद्धि का सहसम्बन्धात्मक अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
- कुमार, मनोज (2017). दैनिक जीवन में नैतिकता, आध्यात्मिकता एवं धर्म, नैतिकता से आध्यात्मिकता की ओर : साहित्य एवं धर्म, प्रथम संस्करण, युगान्तर पब्लिकेशन, वाराणसी, पृ0 215–221
- किंग (2008). साइटेड इन चौरसिया, अभिलाषा (2015). स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध (शिक्षाशास्त्र), इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
- केट्स (2002). साइटेड इन चौरसिया, अभिलाषा (2015). स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध (शिक्षाशास्त्र), इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
- टुआंगसन (2007). साइटेड इन चौरसिया, अभिलाषा (2015). स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध (शिक्षाशास्त्र), इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
- तिवारी, शालू (2018). माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की पारिवारिक वातावरण का उनके नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों पर प्रभाव का अध्ययन, शोध प्रबन्ध (शिक्षाशास्त्र), नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
- पाठक, अनामिका (2017). नैतिकता एवं आध्यात्मिकता में योग, नैतिकता से आध्यात्मिकता की ओर : साहित्य एवं धर्म, प्रथम संस्करण, युगान्तर पब्लिकेशन, वाराणसी, पृ0 81–88
- मिश्रा, प्रमिला (2017). मानव मूल्यों के विकास में नैतिकता, आध्यात्मिकता एवं धर्म की भूमिका, नैतिकता से आध्यात्मिकता की ओर : साहित्य एवं धर्म, प्रथम संस्करण, युगान्तर पब्लिकेशन, वाराणसी, पृ0 202–205
- यादव, मनोज कुमार (2017). भारतीय समाज में नैतिकता, आध्यात्मिकता एवं धर्म का स्वरूप, नैतिकता से आध्यात्मिकता की ओर : साहित्य एवं धर्म, प्रथम संस्करण, युगान्तर पब्लिकेशन, वाराणसी, पृ0 210–214

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

क्षेत्र के आधार पर प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

शोध निर्देशक
डॉ0 अरविन्द कुमार मौर्य
एसोसिएट प्रोफेसर (बी0एड0)
शिक्षक–शिक्षा विभाग
नागरिक पी0जी0 कालेज,
जंघई, जौनपुर (उ0प्र0)

शोधकर्त्ता
विजयेन्द्र कुमार गुप्त
एम0एस–सी0,, एम0एड्0,
नेट (शिक्षाशास्त्र)

सारांश

अध्ययनकर्त्ता द्वारा क्षेत्र के आधार पर प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। वाराणसी मण्डल के अन्तर्गत जौनपुर जनपद में स्थित सरकारी परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् शिक्षकों को जनसंख्या माना गया है। न्यादर्श के रूप में वाराणसी मण्डल के अन्तर्गत जौनपुर जनपद के अन्तर्गत शहरी एवं ग्रामीण सरकारी परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् 400 शिक्षकों का चयन यादृच्छिकी विधि से किया गया है। डॉ0 प्रमोद कुमार और डी0एन0 मुथा द्वारा ''कार्य संतुष्टि मापनी'' का प्रयोग किया गया है। अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण हेतु टी–अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन का निष्कर्ष–

- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **व्यवसाय के रवैया** में अन्तर है।
- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **काम करने की स्थिति के प्रति रवैया** में अन्तर है।
- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **सत्ता के प्रति रवैया** में अन्तर है।
- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **संस्था के प्रति रवैया** में अन्तर है।
- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के सम्पूर्ण कार्य सन्तुष्टि में अन्तर है।

अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि– शहरी क्षेत्र के शिक्षकों में व्यवसाय, काम करने की स्थिति, सत्ता एवं संस्था के प्रति रवैया तथा सम्पूर्ण कार्य संतुष्टि ग्रामीण शिक्षकों की अपेक्षा उच्च है।

मुख्य शब्द–शहरी, ग्रामीण, प्राथमिक, विद्यालय, नवनियुक्त शिक्षक, व्यवसाय, काम, सत्ता, संस्था एवं कार्य सन्तुष्टि, तुलना

प्रस्तावना–

औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के प्रथम स्तर को प्राथमिक स्तर कहा जाता है। यह बालक के 6–14 वर्ष की आयु तक चलती है। प्राथमिक शिक्षा स्तर पर बालक किसी शिक्षा संस्था में

नियमित ढंग से औपचारिक विद्याध्ययन प्रारम्भ कर देता है अतः कक्षा 1 से 8 तक की शिक्षा को प्राथमिक शिक्षा कहा जा सकता है। शिक्षा आयोग (1964–66) ने कक्षा 1 से 5 तक की शिक्षा को निम्न प्राथमिक शिक्षा कहा है तथा कक्षा 6 से कक्षा 8 तक की शिक्षा को उच्च प्राथमिक शिक्षा कहा है। निम्न प्राथमिक शिक्षा 6–11 वर्ष तथा उच्च प्राथमिक शिक्षा 11–14 वर्ष तक के आयुवर्ग वाले बालकों के लिए है। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि औपचारिक व विधिवत् शैक्षिक ढाँचे का प्रथम स्तर प्राथमिक शिक्षा है, न कि पूर्व–प्राथमिक शिक्षा। वास्तव में पूर्व–प्राथमिक शिक्षा कोई औपचारिक शिक्षा नहीं है वरन् प्राथमिक शिक्षा प्राप्ति के लिए बालक की तैयारी है। अधिकांश भारतीय बालक प्रायः पूर्व–प्राथमिक शिक्षा से वंचित रह जाते है अतः प्राथमिक शिक्षा को औपचारिक शिक्षा व्यवस्था का प्रथम वास्तविक स्तर स्वीकार करना ही तर्कसंगत प्रतीत होता है। प्राथमिक शिक्षा को कभी–कभी प्रारम्भिक शिक्षा (Elementary Education) अथवा विद्यालयी शिक्षा (School Eduation) के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

किसी भी राष्ट्र का विकास उसकी शिक्षा व्यवस्था पर निर्भर करता है, कहा भी गया है कि जैसी शिक्षा वैसा राष्ट्र। अतएव निःसन्देह शिक्षा भी समस्या से अछूत नहीं। शिक्षा के क्षेत्र में भी कई समस्यायें आती है जो इसकी प्रक्रिया को बाधित करती हैं।

वर्तमान समय में शिक्षित बेरोजगारी बढ़ने तथा अन्य विकल्प न मिलने पर विवश होकर व्यक्ति अध्यापन व्यवसायिक करने लगे हैं। विवशतावश शिक्षक बन जाने पर भी उनके सामने कुछ ऐसे कारक उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे उनकी शिक्षण प्रभावशीलता प्रभावित होती है। उनकी योग्यता क्षमतानुसार उचित पद, सेवा सुरक्षा, वेतन, व्यवसायिक दशाएं प्राप्त साधन–सुविधाएं, वातावरण, संगठन का अभाव, सहयोगियों, प्रधानाचार्य, प्रबन्धकों के साथ उचित मानवीय सम्बन्धों के अभाव आदि के कारण शिक्षक कुंठित रहते है। परिणामस्वरूप वह अपने शिक्षण व्यवसाय के साथ चाहकर भी न्याय नहीं कर पाते है। अतः उचित पर्यावरण एवं सहयोगात्मक व्यवहार न मिलने से शिक्षकों में अनेक मनोवैज्ञानिक समस्यायें उत्पन्न हो जाती है। ऐसी परिस्थितियों में शिक्षक प्रभावपूर्ण शिक्षण करने में सक्षम नहीं हो पाते है। वे अपने कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का पालन उचित प्रकार से नहीं कर सकेंगे साथ ही शिक्षक विद्यार्थियों को उनके परिवार, समाज व देश के प्रति दायित्वों की जानकारी प्रदान करने में सक्षम नहीं हो सकेंगे, जिसका प्रभाव पूरे शिक्षण एवं राष्ट्र पर पड़ता है। इसलिए एक कुशल एवं प्रभावपूर्ण शिक्षक के लिए अपने व्यवसाय के प्रति संतुष्टि का होना अति आवश्यक है।

जिन विद्यालयों का वातावरण अच्छा होता है उन विद्यालयों के शिक्षक भी व्यवसायिक–सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं। ऐसे शिक्षक विद्यालय के वातावरण को सदैव अच्छा बनाये रखने का प्रयास करते हैं, क्योंकि उनके मनोबल समुन्नत रहते हैं। शिक्षकों को प्रधानाध्यापक से मानवीय व्यवहार की अनुभूति होती है, समय–समय पर प्रधानाध्यापक शिक्षकों को पृष्ठपोषण देते है, शिक्षकों की समस्याओं को जानकर निदान देने का प्रयास करते है, आवश्यकता पड़ने पर शिक्षकों हेतु विद्यालयी नियमों में लचीलापन भी रखते हैं। फलतः शिक्षक कक्षा में मन लगाकर शिक्षण करते हैं जिससे इनके द्वारा पढ़ाये गये छात्रों को अच्छी उपलब्धि मिलती है और शिक्षकों में व्यवसायिक–सन्तुष्टि बनी रहती है।

जिन विद्यालयों में शिक्षकों को विद्यालयी कार्यों में सहभाग के अवसर नहीं मिलते हैं विद्यालय के नियम व प्रशासन शिक्षकों की उन्नति के पक्ष में नहीं होते हैं, शिक्षकों का प्रधानाध्यापक व आपसी शिक्षकों के साथ अच्छा सहकारी सम्बन्ध नहीं होता है, शिक्षकों को व्यवसायिक सुरक्षा प्रदान नहीं की जाती है फलतः शिक्षक व्यवसायिक– सन्तुष्टि का अनुभव नहीं करते हैं।

किसी भी राष्ट्र की महानता उसकी शिक्षा पर निर्भर करती है। कहा भी गया है कि– ''जैसी शिक्षा, वैसा राष्ट्र''। प्राथमिक विद्यालयों की कार्य प्रणाली मु स्कूल के प्रकार, उनके भवन और कक्षा व्यवस्था, फर्नीचर, शिक्षण विधियाँ और प्रविधियाँ, पाठ्यक्रम व टेक्स्ट बुक, परीक्षा संचालन, उपलब्ध सरकारी अनुदान का वितरण तथा शिक्षा में नवाचार के साथ–साथ शिक्षकों की शिक्षण कार्य पर नियंत्रित होता है। शिक्षा संस्थाओं में विभिन्न कारणों से कार्य स्तर एवं दक्षता में गिरावट आती रही है, जैसा कि उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व शिक्षा निदेशक 'श्री बलवन्त सिंह स्याल' जी ने कहा– ''पिछले दशकों से शिक्षा संस्थाओं के क्षेत्रों का प्रचार अत्यन्त तीव्र गति से हो रहा है साथ ही साथ शैक्षिक स्तर में उतनी ही तेजी के साथ गिरावट आती जा रही है।''

अतः अध्ययनकर्त्ता द्वारा यह देखने का प्रयास किया गया है कि क्या शहरी एवं ग्रामीण में अध्यापनरत् शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि में अन्तर है या नहीं? क्योंकि शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि विद्यार्थियों की शिक्षा पर विशेष असर डालता है।

समस्या कथन–

''क्षेत्र के आधार पर प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन।''

उद्देश्य–

अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का अध्ययन किया गया है–

- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **व्यवसाय के रवैया** का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **काम करने की स्थिति के प्रति रवैया** का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **सत्ता के प्रति रवैया** का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **संस्था के प्रति रवैया** का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के सम्पूर्ण कार्य सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना–

अध्ययन में उद्देश्यों के आधार पर निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है–

- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **व्यवसाय के रवैया** में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **काम करने की स्थिति के प्रति रवैया** में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **सत्ता के प्रति रवैया** में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **संस्था के प्रति रवैया** में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के सम्पूर्ण कार्य सन्तुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध प्रविधि–

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। वाराणसी मण्डल के अन्तर्गत जौनपुर जनपद में स्थित सरकारी परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् शिक्षकों को जनसंख्या माना गया है। न्यादर्श के रूप में वाराणसी मण्डल के अन्तर्गत जौनपुर जनपद के अन्तर्गत शहरी एवं ग्रामीण सरकारी परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापनरत् 400 शिक्षकों का चयन यादृच्छिकी विधि से किया गया है। डॉ0 प्रमोद कुमार और डी0एन0 मुथा द्वारा **''कार्य संतुष्टि मापनी''** का प्रयोग किया गया है। अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण हेतु टी–अनुपात सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

1. प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा व्यवसाय के रवैया का तुलनात्मक अध्ययन–

H_{01} – प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **व्यवसाय के रवैया** में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी संख्या–1

प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा व्यवसाय के रवैया का मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, क्रान्तिक अनुपात मान

क्र. सं.	क्षेत्र	संख्या (N)	कार्य संतुष्टि		मानक त्रुटि (SE_m)	मध्यमानों का अन्तर (D)	क्रान्तिक अनुपात मान (C.R.)	सार्थकता स्तर
			मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)				
1.	शहरी	200	9.43	2.10	0.79	0.21	3.76	0.01 स्तर पर
2.	ग्रामीण	200	23.23	8.79				

निष्कर्ष: $H_1 = \mu_1 - \mu_2 \neq 0$, 0.01 स्तर पर स्वीकृत

$H_{01} = \mu_1 - \mu_2 = 0$, 0.01 स्तर पर अस्वीकृत

अवकलित CR का मान = 3.76

398 आवृत्ति अंश (*df*) पर 0.05 सार्थकता स्तर का सारणी मान–2.59

उपर्युक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि CR का परिगणित मान 3.76 है, जो कि क्रान्तिक अनुपात के द्विपुच्छीय परीक्षण के लिए 0.01 सार्थकता स्तर के सारणीय मान 2.59 से अधिक है। तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर भी CR का परिगणित मान सार्थक है। अतः शोध परिकल्पना (H_1) स्वीकृत की जाती है तथा शून्य परिकल्पना (H_{01}) अस्वीकृत की जाती है। इस प्रकार सारणी मान से स्पष्ट है कि प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **व्यवसाय के रवैया** में अन्तर होता है अर्थात् क्षेत्र के आधार पर कार्य संतुष्टि में अन्तर है।

2. प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा काम करने की स्थिति के प्रति रवैया का तुलनात्मक अध्ययन–

H_{02} – प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **काम करने की स्थिति के प्रति रवैया** में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी संख्या–2

प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा काम करने की स्थिति के प्रति रवैया का मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, क्रान्तिक अनुपात मान

क्र. सं.	क्षेत्र	संख्या (N)	कार्य संतुष्टि		मानक त्रुटि (SE_m)	मध्यमानों का अन्तर (D)	क्रान्तिक अनुपात मान (C.R.)	सार्थकता स्तर
			मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)				
1.	शहरी	200	14.26	3.23	1.17	0.33	3.55	0.01 स्तर पर
2.	ग्रामीण	200	13.09	3.45				

निष्कर्षः $H_1 = \mu_1 - \mu_2 \neq 0$, 0.01 स्तर पर स्वीकृत

$H_{01} = \mu_1 - \mu_2 = 0$, 0.01 स्तर पर अस्वीकृत

अवकलित CR का मान = 3.55

398 आवृत्ति अंश (*df*) पर 0.05 सार्थकता स्तर का सारणी मान–2.59

उपर्युक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि CR का परिगणित मान 3.55 है, जो कि क्रान्तिक अनुपात के द्विपुच्छीय परीक्षण के लिए 0.01 सार्थकता स्तर के सारणीय मान 2.59 से अधिक है। तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर भी CR का परिगणित मान सार्थक है। अतः शोध परिकल्पना (H_2) स्वीकृत की जाती है तथा शून्य परिकल्पना (H_{02}) अस्वीकृत की जाती है। इस प्रकार सारणी मान से स्पष्ट है कि प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **काम करने की स्थिति के प्रति रवैया** में अन्तर होता है अर्थात् क्षेत्र के आधार पर कार्य संतुष्टि में अन्तर है।

3. प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा सत्ता के प्रति रवैया का तुलनात्मक अध्ययन–

H_{03} – प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **सत्ता के प्रति रवैया** में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी संख्या–3

प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा सत्ता के प्रति रवैया का मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, क्रान्तिक अनुपात मान

क्र. सं.	क्षेत्र	संख्या (N)	कार्य संतुष्टि		मानक त्रुटि (SE_m)	मध्यमानों का अन्तर (D)	क्रान्तिक अनुपात मान (C.R.)	सार्थकता स्तर
			मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)				
1.	शहरी	200	9.48	2.41	0.97	0.24	4.04	0.01 स्तर पर
2.	ग्रामीण	200	8.51	2.41				

निष्कर्ष: $H_1 = \mu_1 - \mu_2 \neq 0$, 0.01 स्तर पर स्वीकृत

$H_{01} = \mu_1 - \mu_2 = 0$, 0.01 स्तर पर अस्वीकृत

अवकलित CR का मान = 4.04

398 आवृत्ति अंश (*df*) पर 0.05 सार्थकता स्तर का सारणी मान–2.59

उपर्युक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि CR का परिगणित मान 4.04 है, जो कि क्रान्तिक अनुपात के द्विपुच्छीय परीक्षण के लिए 0.01 सार्थकता स्तर के सारणीय मान 2.59 से अधिक है। तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर भी CR का परिगणित मान सार्थक है। अतः शोध परिकल्पना (H_3) स्वीकृत की जाती है तथा शून्य परिकल्पना (H_{03}) अस्वीकृत की जाती है। इस प्रकार सारणी मान से स्पष्ट है कि प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **सत्ता के प्रति रवैया** में अन्तर होता है अर्थात् क्षेत्र के आधार पर कार्य संतुष्टि में अन्तर है।

4. प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा संस्था के प्रति रवैया का तुलनात्मक अध्ययन–

H_{04} – प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **संस्था के प्रति रवैया** में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी संख्या–4

प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा संस्था के प्रति रवैया का मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, क्रान्तिक अनुपात मान

क्र. सं.	क्षेत्र	संख्या (N)	कार्य संतुष्टि		मानक त्रुटि (SE_m)	मध्यमानों का अन्तर (D)	क्रान्तिक अनुपात मान (C.R.)	सार्थकता स्तर
			मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)				
1.	शहरी	200	10.91	2.26	1.54	0.24	6.42	0.01 स्तर पर
2.	ग्रामीण	200	9.37	2.48				

निष्कर्ष: $H_1 = \mu_1 - \mu_2 \neq 0$, 0.01 स्तर पर स्वीकृत

$H_{01} = \mu_1 - \mu_2 = 0$, 0.01 स्तर पर अस्वीकृत

अवकलित CR का मान = 6.42

398 आवृत्ति अंश (*df*) पर 0.05 सार्थकता स्तर का सारणी मान–2.59

उपर्युक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि CR का परिगणित मान 6.42 है, जो कि क्रान्तिक अनुपात के द्विपुच्छीय परीक्षण के लिए 0.01 सार्थकता स्तर के सारणीय मान 2.59 से अधिक है। तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर भी CR का परिगणित मान सार्थक है। अतः शोध परिकल्पना (H_4) स्वीकृत की जाती है तथा शून्य परिकल्पना (H_{04}) अस्वीकृत की जाती है। इस प्रकार सारणी मान से स्पष्ट है कि प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **संस्था के प्रति रवैया** में अन्तर होता है अर्थात् क्षेत्र के आधार पर कार्य संतुष्टि में अन्तर है।

5. प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन–

H_{05} – प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के **कार्य सन्तुष्टि** में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी संख्या–5

प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि का मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, क्रान्तिक अनुपात मान

क्र. सं.	क्षेत्र	संख्या (N)	कार्य संतुष्टि		मानक त्रुटि (SE_m)	मध्यमानों का अन्तर (D)	क्रान्तिक अनुपात मान (C.R.)	सार्थकता स्तर
			मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)				
1.	शहरी	200	44.07	7.08	4.48	0.65	6.89	0.01 स्तर पर
2.	ग्रामीण	200	39.59	5.88				

निष्कर्षः $H_1 = \mu_1 - \mu_2 \neq 0$, 0.01 स्तर पर स्वीकृत

$H_{01} = \mu_1 - \mu_2 = 0$, 0.01 स्तर पर अस्वीकृत

अवकलित CR का मान = 6.89

398 आवृत्ति अंश (*df*) पर 0.05 सार्थकता स्तर का सारणी मान–2.59

उपर्युक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि CR का परिगणित मान 6.89 है, जो कि क्रान्तिक अनुपात के द्विपुच्छीय परीक्षण के लिए 0.01 सार्थकता स्तर के सारणीय मान 2.59 से अधिक है। तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर भी CR का परिगणित मान सार्थक है। अतः शोध परिकल्पना (H_5) स्वीकृत की जाती है तथा शून्य परिकल्पना (H_{05}) अस्वीकृत की जाती है। इस प्रकार सारणी मान से स्पष्ट है कि प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **संस्था के प्रति रवैया** में अन्तर होता है अर्थात् क्षेत्र के आधार पर कार्य संतुष्टि में अन्तर है।

निष्कर्ष–

अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **व्यवसाय के रवैया** में अन्तर है।
- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **काम करने की स्थिति के प्रति रवैया** में अन्तर है।
- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **सत्ता के प्रति रवैया** में अन्तर है।
- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के कार्य सन्तुष्टि की विमा **संस्था के प्रति रवैया** में अन्तर है।
- प्राथमिक स्तर पर नवनियुक्त शिक्षकों के सम्पूर्ण कार्य सन्तुष्टि में अन्तर है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शहरी क्षेत्र के शिक्षकों में व्यवसाय, काम करने की स्थिति, सत्ता एवं संस्था के प्रति रवैया तथा सम्पूर्ण कार्य संतुष्टि ग्रामीण शिक्षकों की अपेक्षा उच्च है।

सुझाव–

(क) अध्यापक प्रायः प्रधानाध्यापक से असन्तुष्ट रहते है एवं स्वतः सहयोग की पहल नही करते है।

(ख) अभिभावकों की अशिक्षा एवं जागरूकता का अभाव उन्हें नकारात्मक दृष्टिकोण का बना देता है जो बाद में शिक्षकों के लिए समस्या उत्पन्न करते है।

(ग) अराजक तत्व विद्यालय में नित नयी–नयी समस्यायें उत्पन्न करते है इससे शिक्षकों को विद्यालय कार्य में समस्या आती है।

(घ) छात्रों की अनुशासनहीनता का कारण उन्हें बिना श्रम के पास कर देना है। ऐसे बच्चे उद्दण्ड बनकर विद्यालय के लिए समस्या उत्पन्न करते है।

(ङ) सरकार द्वारा प्रदत्त सुविधाओं के वितरण में अभिभावक, उच्च अधिकारी व ग्राम प्रधान समस्या उत्पन्न करते है।

(च) शिक्षा अधिकारी का आलोचनात्मक एवं पक्षपातपूर्ण व्यवहार शिक्षकों के लिए बड़ी समस्या है।

(छ) शिक्षकों को कक्षा में बच्चों को पास करने में समस्या आती है। बच्चों की उपलब्धि बढ़ाने तथा समाजोपयोगी शिक्षा देने में शिक्षकों को कई समस्यायें आती है।

(ज) भ्रष्टाचार, अराजकता, अशिक्षा, बालगणना, जनगणना एवं अज्ञानता इत्यादि अन्य कारक भी शिक्षकों को समस्याग्रस्त करते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- गुप्ता, एस0पी0 (2005). सांख्यिकीय विधियाँ, इलाहाबाद; शारदा पुस्तक भवन।
- दुबे, एस0एन0 (2006). भारतीय शिक्षा की समसामयिक समस्याएँ, इलाहाबाद; शारदा पुस्तक भवन।
- भटनागर, ए0बी0 (2007). भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास, मेरठ; आर0 एल0 बुक डिपो।
- राय, पी0एन0 (2007). अनुसंधान विधियाँ, आगरा; अर्चना प्रिटिंग प्रेस।
- वाजपेयी, एल0बी0 (2004), भारतीय शिक्षा का विकास एवं समसामयिक प्रवृत्तियां आगरा : आलोक प्रकाशन।
- सिंह, अरूण कुमार (2005), *शिक्षा मनोविज्ञान,* पटना : भारती भवन।
- कुमारी, ललिखा, वाई. (2010). ए स्टडी ऑफ एडजेस्टमेन्ट, जॉब सेटिसफेक्शन एण्ड एडमिनिस्ट्रेटिव प्रॉब्लम्स ऑफ सेकेण्डरी स्कूल हेड मास्टर, शोध प्रबन्ध शिक्षाशास्त्र, आचार्य नागार्जुन विश्वविद्यालय, आन्ध्र प्रदेश।
- दहिया, नीतू (2011) ए स्टडी ऑफ एडजेसटमेन्ट ऑफ सेकेण्डरी स्कूल टीचर्स इन रिलेशन टू देयर जॉब स्ट्रेस, जॉब इन्वालमेन्ट एण्ड जॉब सेटिसफेक्शन, शोध प्रबन्ध (शिक्षाशास्त्र), शिक्षाशास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक।

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

History of Ancient Water Management in Narmada and Godavari Valleys with Special Reference to State of Maharashtra

Dr. Vivek Sengar
Assistant Professor, Department of History
Sri Varshney College, Aligarh

We have irrigation systems in the valleys of both rivers which date back to ancient times. In order to study water management in details, it was very important to select an area which connects valleys of both the rivers, Narmada and Godavari. History of geographical unit that is State of Maharashtra which lies exactly in between these two rivers reveals great diversity of water management systems. Therefore, Maharashtra is considered as a valid unit for the studyof water management which lies in between the valleys of said two rivers.

In Inamgaon, Tehsil - Shirur, District - Pune, State - Maharashtra, various excavations were carried out which provide Temple evidences of irrigation systems. This village is situated on the banks of River Bheema which is also known as Ghodnadi. The excavations at this ancient site unearthed earthen bunds with stone foundations. These reservoirs were connected to Ghodnadi using canals and were further connected to fields for irrigation.

Satwahana Dynasty[1] (230 B.C. – 230 A.D.) ruled over this region for almost 460 years. For Maharashtra this is considered as Golden Era of which evidences are the wells, reservoirs and the caves (Lenya) which the Satwahanas had constructed innumerable inscriptions bear testimony to this. The inscriptions describe construction of various types of water bodies like wells, Nirzaras, Sarovar and Tadag.

Satwahanas had built huge reservoir Rajatgad near Aurangabad which is known as HarsulachaTalav today. Because of this reservoir Aurangabad was earlier known as Rajatgad. There was a reservoir at the place of Amkhas Ground of today which was earlier a part of Rajatgad Reservoir. The inscriptions also mention about professionals in contemporary society, Jalayantri who were experts in establishing structures meant for irrigation.

Satwahanas had their capital at Paithan (Pratishthana) which is considered as one of the most sacred places on the banks of River Godavari. It was a great center of commerce for people in the country and for the foreigners also, since ancient times.

The Royal Family from Paithan, Achintya and Anjitaya had built many Ghats, Kunds, Canals, Ponds, Panhali in Maharashtra.

The caves that were carved by Satwahanas always accompanied by ponds carved in rocks known as Devtake or Kundas. The ponds are accompanied by statues of rivers Ganga, Yamuna, Sindhu, Saraswati and inscriptions carved on rocks give the details about rulers who had made arrangements to built or carve the storage tanks or ponds. For example there is one inscription carved in 8th year of rule of Shripukamav which mentions about a pond carved by his deputy, Gahpati Samba and the words are TalatKhanit meaning of which is pond is carved.

When we are discussing Maharashtra we cannot ignore Konkan. It was difficult to store water in reservoirs in some parts of Konkan. The streams are directly connected to small canals. Intricate network of canals in paddy fields, in Coconut, Areca nut plantations or in Mango Orchards is created which takes care of irrigation. The canals can run from 200 meters to 1500 meters from streams before they take the water to its final destination. This method of canal network in fields is traditionally known as Pat Sinchan. The water that percolates from adjacent Sahyadri Mountain Range is the main Source for this type of water management system. This water forms streams and these streams are checked using horizontal stone bunds followed by parallel canals at each level down the slope and then brought to fields for irrigation. North Konkan was different in methods of irrigation as many reservoirs were built in and around Thane, especially in Shahapur Tehsil.

After Satwahanas, Wakatak Dynasty[2] ruled over Maharashtra. The period of their reign was 250 A.D. to 550 A.D. This dynasty also promoted irrigation for the agriculture in the contemporary setup. Numerous reservoirs were constructed in the Kingdom by Wakatakas and we have many literary and physical evidences for the same. Many inscriptions and copper plates also support the above mentioned facts. Wakatak King Devsen mentioned in his inscriptions and on copper plates that he had created SudarshanSarovar at Vatsgulm(Washim). This dam is built on stream at Hisseboral[3], 10 Km away from Washim in Vidarbha. This reservoir SudarshanSarovar was built in 5th century A.D. We can find remnants of this reservoir and the stone boundaries of the same even today. King Prithvisingh II at Mahurzari created PrithaviSamudram. Words like Sarovar or Samudram were used for reservoirs in those times.

After Wakatakas, this area ruled by Chalukyas[4] who hailed from Badami. They also created many reservoirs. They had also created Varihas or Baravas. Not only this,

they allowed complete use of all the water of Baravas for irrigation. The local administrative units, Panchayats were entrusted with the responsibility of managing these well built wells known as Baravas. The income that was generated through these Baravas was utilized for the maintenance of the same, so, Chalukyas has established a self sufficient water management system which is worth replicating everywhere even today.

Rashtrakutas[5] also built many reservoirs and concentrated on irrigation. They had created many reservoirs in the areas close to Ellora, Dharur, Mannikhed and Latur. Aninscription belonging to King Krishnamegh III (939 A.D. - 967 A.D.) is about the reservoirs built by Kalmegha, one of his deputies. The reservoir is still in good shape and is known as Samudram. This Reservoir was built in Kandhar, near Nanded in Maharashtra. The inscription, deals with its construction and its contribution to water management systems in the town. It also describes 5 centers of water regulation which were meant to supply water to people, cattle and fields which derived water from Jagatungsamudram.

These mentions in inscriptions and archeological surveys have made it clear that we have a tradition of consistency in creating reservoirs, with intention of utilizing this precious resource, systematically, After Rashtrakutas, Yadavas also created wonderful reservoirs and wells (Baravas). The rulers had taken perfect care of their subjects as wherever they found that the rivers and streams are far away from settlements, they had built wells or reservoirs. Yadavas built many temples and the stones were extracted from nearby place leaving a big pit behind, which was converted into a reservoir. If it is built properly with steps on all sides, it would be called as a Barav. We can find many such well built Wells or Baravas in IndiaWaterwheels were also employed to fetch water from Baravas which would be used for gardens or for irrigation. We find many Baravas functional even today in Marathwada and in North Maharashtra.

There is one more unique method of irrigation which is known as PhadPaddhat (System) which also might have originated during the regime of Yadavas. Phad is a piece of land and care was taken that water reached every piece of land. For this stone bunds were built on streams, sub-rivers and rivers and water was channelized so that it reached every piece of land which was owned by different families. And on the basis of available water the crops were decided and quantum of seeds sown. This method is prevalent in Khandesh originated during Mauryan Dynasty's rule (300 B.C.). It was strengthened during medieval times. The rivers, Panzara, Girana, Mausam and Burai which flow through Nasik and Dhulia districts, flow eastwards first and then coverage with Tapi which flows westwards. Earlier they were all perennial rivers as they were supported by perennial streams flowing through the mountains of Sahyadri and therefore theirvalleys supported this wonderful system of irrigation PhadPaddhat which

helped in production of diverse types of crops like Rice, Cotton, Sugarcane and Banana starting with ancient times and continuing through out medieval times.

References:-

1. Satwahana Dynasty – Also referred to as thAndhras in Puranas.
2. Wakatak Dynasty – are contemporaneous with the Guptas in Northern India. Their state is believed to have extended from the southern edges of Malwa and Gujarat in the north to the Tungabhadra River in South as well as from the Arabian Sea in the west to Chattisgarh.
3. Hisseboral stone inscription which contains the date of year 380 of Sahaera. (correspondence to 457 / 458 CE)
4. ChalukyasDynasty – was a Classical Indian dynasty that ruled large part of southern and Central India between 6^{th} and the 12^{th} Centuries. K.A. NiklantSastri Page 59 Oxford University Press 2009
5. Rashtrakutas Dynasty – Rashtrakutas Dynasty ruling large parts of India Subcontinent between 6^{th} and 10 centuries. K.A. NiklantSastri Page 75 Oxford University Press 2009

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

ललित निबंधों की परंपरा में विद्यानिवास मिश्र का योगदान

किरन पाल
शोध छात्रा
राम अवध यादव गन्ना कृषक पी.जी. कॉलेज,
ताखा, शाहगंज, जौनपुर

ललित निबंध परंपरा के दैदीप्यमान शिखर पुरुष के रूप में विद्यानिवास मिश्र की प्रतिष्ठा हिंदी साहित्य जगत में अप्रमेय है । इनके निबंधों में लोकतात्त्विक तथा पर्यावरणीय दृष्टि सर्वथा नूतन विषय के रूप में प्रतिष्ठित है। एक मनीषी विद्वान होने के साथ–साथ सकारात्मक चिंतन के अग्र पुरुष के रूप में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रतिपादित परंपरा का श्रीवर्धन करने वाले पंडित विद्यानिवास मिश्र के निबंध अतुलनीय तथा अद्वितीय है। जिस प्रकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आत्मव्यंजक निबंधों के शिखर पुरुष के रूप में स्वीकार किए जाते हैं, उसी प्रकार डॉ विद्यानिवास मिश्र उनकी परंपरा को और अधिक विस्तार प्रदान करने वाले साहित्यकार हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की अनुपम लेखन शैली तथा व्यक्तित्व के विषय में अपने निबंध संग्रह 'शिरीष की याद आई' में मिश्र जी स्वयं उनके बारे में उद्घाटित करते हैं–"पं. हजारी प्रसाद भी शिरीष के फूल थे। बड़े कठिन तप में विकसित हुये, पर स्वभाव में ऐसी मृदुता पाई कि उनसे वचन या कर्म का उत्ताप सहा नहीं जाता था। शिरीष की तरह ही वह अवधूत स्वभाव के लेखक थे ।आजकल की भाषा में वे जुझारू या तेवरदार नहीं थे, एकदम मृणाल के भीतर के सूत की तरह कोमल स्निग्ध और उज्ज्वल। पंडित जी का लिखा निबंध याद आया और मन साझे की असंख्य स्मृतियों में खो गया।"[1]

इनके ललित निबंध साहित्य जगत की अनुपम निधि के रूप में लोकमानस में विचरण करते हैं, क्योंकि इनके निबंधों में लोक जीवन तथा लोक तत्व का जो चित्र प्रस्तुत हुआ है, कदाचित वह कहीं अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। यद्यपि ललित निबंध के क्षेत्र में अनेकों साहित्यकारों के गौरवान्वित करने वाले योगदान प्राप्त होते हैं, किंतु उन सब में विद्यानिवास मिश्र की विशिष्टता का निर्धारण किया जा सकता है। पंडित विद्यानिवास मिश्र ललित निबंध को एक नई ऊंचाई पर अवस्थित करते हुए उन्हें नई पहचान प्रदान किये। इनके निबंधों की उत्कृष्टता के विषय में इनके निबंध संग्रह 'तुम चंदन हम पानी' में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं–"तुम चंदन हम पानी' भाई विद्यानिवास जी के व्यक्तिगत निबंधों का बहुत उत्तम संग्रह है। इन निबंधों में उनके सरस व्यक्तित्व, व्यापक ज्ञान और चिंतन की छाप सर्वत्र जगी है। ठीक स्मरण नहीं है कि विद्यानिवास जी से मेरा परिचय कब हुआ था, परंतु इतना स्पष्ट याद है कि उन्हें में सदा से जानता आया हूं। उनके व्यक्तित्व का यह आकर्षक गुण इन निबंधों में भी पाया जाता है। पढ़ने वाले को ऐसा लगता है कि इन निबंधों में एक ऐसा आकर्षक व्यक्तित्व है जो उसका चिर परिचित है।"[2]

पंडित विद्यानिवास मिश्र सम्मान के साथ साहित्य जगत में 'गुरु जी' के नाम से पहचाने जाते हैं। संस्कृत का प्रकांड विद्वान होने के साथ–साथ इन्होंने लोक साहित्य का भी गंभीर अध्ययन किया था, जिससे इनके निबंधों में लालित्य कूट कूट कर भरा हुआ है। इनके लेखन में

शास्त्र संपदा तथा लोक संस्कृति एवं लोकाचार का सहज स्वाभाविक सम्मिलन दिखाई पड़ता है। डॉ. जयचंद्र राय इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं–"उनके लेखन में शास्त्र संपदा और लोक संस्कृति एवं लोकाचार आदि का सहज स्वाभाविक सम्मिलन हो गया है। दोनों का परंपरापेक्षी बिंब प्रतिबिंबात्मक अंकन पदे पदे होता चलता है। किसी साधारण वस्तु या प्रसंग को लेकर उसे सुदूर व्यापी ऐतिहासिक, पौराणिक, साहित्य संदर्भों के साथ प्रयुक्त करते हुए व्यापक दिवकाल प्रसरित यात्रा के उपरांत भी पाठक को उस सामान्य लोक भूमि पर उतार लाते हैं जो उसमें तात्कालिक वर्तमान और निकट भविष्य के जीवन की कर्मभूमि अथवा लीला भूमि है और जिस पर अपने सुख–दुख, आशा, आकांक्षा, आश्रुहास, आदि को लेकर अपना राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन जी रहा है। इस प्रकार उनके विचारों, भावों ,कल्पनाओं का एक छोर प्रस्तुत विषय से और दूसरा नाना क्षेत्रों से आने वाले अनेकानेक प्रस्तुत प्रसंगों से संबद्ध रहता है।"[3]

इनके व्यक्तित्व के कई आयाम दृष्टिगत होते हैं, किंतु उनके बीच कोई परकोटा उपस्थित नहीं होता। इसलिए उनके मध्य गमनागमन संभव हो पाता है। इसी बात को रेखांकित करते हुए डॉ जी एस चंदेल अपनी पुस्तक 'निबंधकार विद्यानिवास मिश्र' में उदधृत करते हैं–"पंडित विद्यानिवास के व्यक्तित्व के कई आयाम हैं परंतु उनके बीच में परकोटे नहीं हैं। एक दूसरे में आवन जावन हो सकता है। पंडित विद्यानिवास मिश्र, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, गुरुजी, न जाने कितने रूपों में जाने जाते हैं। विद्यानिवास मिश्र, पंडित विद्यानिवास मिश्र यानी संस्कृत के प्रकांड पंडित मुनिवर जी की स्नेहछाया में दीक्षा लेने वाले और स्वयं संस्कृत के प्रकांड पंडित गुरु जी यानी पंक्तिपावन ब्राह्मण विद्यानिवास मिश्र जो न जाने कितने ब्राम्हण और ब्राह्मण परिवारों के कुल गुरु हैं। डॉ. विद्यानिवास यानी ज्ञान विज्ञान, समाज संस्कृति, साहित्य कला की नवीनतम चेतना और तेजस्विता से पंडित प्रोफेसर और कुलपति विद्यानिवास जी।"[4]

पंडित विद्यानिवास मिश्र भारतीय संस्कृति तथा लोक साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान है। इन्होंने ललित निबंधों के अतिरिक्त साहित्य की कई अन्य विधाओं में भी अपना योगदान प्रदान किया है। कविता तो इन्हें अत्यंत प्रिय थी। इनका कविता प्रेमी मन अपने साथ–साथ दूसरों की लिखी कविताएं भी पसंद करता था। अपनी कविताओं के बारे में स्वयं घोषित करते हुए डॉ मिश्र कहते हैं–"मैं कवि नहीं हूँ, इसके लिए शपथ नहीं खाऊंगा, क्योंकि कवियों की संगत कुछ ऐसी रही है कि कभी–कभी छूत का शिकार हो ही गया हूं, पर यह सही है कि दूसरों की कविताएं मुझे इतनी अच्छी लगती है कि अपनी कविता छपाने की कभी इच्छा ही नहीं होती।"[5]

कवि के साथ–साथ आलोचक, चिंतक, संपादक तथा शिक्षक के रूप में भी इनका व्यक्तित्व अद्वितीय है। ये बहु भाषा विद भी है। विभिन्न भाषाओं के ज्ञान ने उनके सृजन फलक को और भी व्यापक स्वरूप प्रदान किया है। अपने परिवेश के प्रत्येक अणु को निरखते तथा परखते हैं और उस पर गहन मंथन भी करते हैं। लोकगीतों की मधुर स्वर लहरी उनके मन को आंदोलित करती है और उसके तत्वों के गहन अन्वेषण में तल्लीन हो जाते हैं। वस्तुतः साहित्य की दीक्षा तो उन्हें लोक भाषा में ग्रथित गीतों की माला से ही प्राप्त हुई है। इस तथ्य को अपनी रचना 'साहित्य का खुला आकाश' में स्वीकार करते हुए वह कहते हैं–"मेरी साहित्य की दीक्षा लोक भाषा में ग्रथित गीतों की माला से हुई है। मैंने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश काव्य का भरपूर पारायण किया है, अब भी करता हूं, पर उस रस में से जिस भाषा में अधिकतर लिखता हूं, उसकी जमीन भी उलटता पलटता रहता हूं।"[6]

एक प्रखर आलोचक की तरह उनकी आलोचना गहरे भाव बोध के साथ उपस्थित होती है जिसके लिए संवेदनात्मक ज्ञान तथा ज्ञानात्मक संवेदन आवश्यक होता है। आलोचना उनके लिए वाह्य स्तर पर अर्थज्ञान न होकर अंतरंग स्तर पर गहरा भाव बोध है। एक कुशल संपादक की तरह उन्होंने कई ग्रंथों का संपादन भी किया है जिसमें उनकी सफलता असंदिग्ध है। उनके द्वारा संपादित पुस्तकों की एक लंबी श्रृंखला विद्यमान है। उन्होंने इन ग्रंथों का न केवल संपादन किया है बल्कि इनके प्रमुख रचनाकारों का मूल्यांकन भी प्रस्तुत किया है। इन्होंने कई कोश कार्य भी सफलतापूर्वक संपादित किए हैं। वह सभी कोश हिंदी साहित्य जगत की अमूल्य निधि है। कुशल शोधकर्ता की तरह इन्होंने अपने लेखन में शोध परकता का समावेश किया है। कुशल शिक्षक के रूप में इन्होंने अपने शैक्षिक दायित्व का कुशलतापूर्वक निर्वहन किया। उनकी भाषा शैली खाटी भोजपुरी होने के कारण अत्यधिक लालित्यमय हो गई, जिसमें संस्कृत का प्रवाह यत्र तत्र देखा जाता है। अपने परिवारी जनों से वह प्रायः भोजपुरी में ही बातचीत किया करते थे। विभिन्न भाषाओं में पारंगत होने के साथ–साथ वह देश–विदेश की यात्रा के द्वारा विश्व साहित्य के बारे में महत्वपूर्ण ज्ञान अर्जित करते थे। इन सबके बावजूद उनके लेखन में भारतीयता स्पष्ट परिलक्षित होती थी। हिंदी साहित्य में उनका योगदान अधिकतया निबंध के रूप में प्राप्त होता है, उसमें भी खासकर ललित निबंध के क्षेत्र में पंडित विद्यानिवास मिश्र अग्रगण्य है। चर्चा के इस क्रम पर अब हम उनके निबंध साहित्य पर एक प्रकाश प्रक्षेपित करने का प्रयास करेंगे, जिससे उनके भीतर निहित तत्वों का दिग्दर्शन हो सके।

पंडित विद्यानिवास मिश्र के अब तक लगभग चौतीस– पैंतीस से भी अधिक निबंध संग्रह प्राप्त हो चुके हैं। डॉ. विद्या निवास मिश्र का निबन्ध–साहित्य विस्तृत फलक पर विद्यमान है। उनके निबन्धों में व्यक्ति और समाज का व्यापक निरूपण हुआ है। उनके निबंधो में व्यक्त समाज और संस्कृति का निरुपण करने के पूर्व उनसे परिचित होना अधिक समीचीन होगा। मिश्रजी के अब तक प्रकाशित निबन्ध संग्रह इस प्रकार हैं।

1. छितवन की छाँह, (1953),
2. कदम की फूली डाल, (1956),
3. तुम चंदन हम पानी, (1957)
4. आँगन का पँछी और बनजारा मन, (1962),
5. मैने सिल पहूचाई, (1966),
6. भोर का आवाहन, (1968),
7. हिन्दी की शब्द संपदा, (1970),
8. बसन्त आ गया पर कोई उत्कण्ठा नहीं, (1972),
9. मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, (1974),
10. कँटीले तारों के आर–पार, (1974),
11. मेरे निबन्धः मेरे पसन्द के, (1974),
12. परम्परा बन्धन नहीं, (1976),
13. कौन तू फुलवा बीननि हारी, (1980),

14. भ्रमरानन्द के पत्र, (1981),
15. अस्मिता के लिए, (1981),
16. तमाल के झरोखे से (1981),
17. निज मुख मुकुर (1981)
18. अंगद की नियति, (1984),
19. अग्निरथ, (1985),
20. लागौ रंग हरी श्याम रसायन, (1985),
21. गाँव का मन, (1985),
22 . महाभारत का काव्यार्थ (1985)
23. शेफाली झर रही हैं, (1987),
24. नैरन्तर्य और चुनौती, (1988),
25. भारतीय परंपरा (1989)
26. भाव पुरुष श्री कृष्ण (1989)
27. सोहम्, (1991)
28. जीवन अलभ्य है, जीवन सौभाग्य है, (1991)
29. देश, धर्म और साहित्य, (1992)
30. नदी, नारी, और संस्कृति, (1993)
31. पीपल के बहाने, (1994),
32. भारतीयता की पहचान, (1994)
33. फागुन दूई रे दिना, (1994)
34. बूँद मिले सागर में, (1994),
35. शिरीष की याद आयी, (1995)
36. भारतीय चिंतन धारा, (1995)
37. संचारिणी, (1996)
38. यात्राओं की यात्रा, (1996)
39. साहित्य का खुला आकाश, (1996)
40. सपने कहां गए (1998)
41. तंत्र कला और आस्वाद (1998)
42. जसुदा के नंदन (2000)

43. व्यक्ति व्यंजना (2000)

44. लोक और लोक का स्वर (2000)

45. गिर रहा है आज पानी (2001)

46. हिंदी और हम (2001)

47. स्वरूप विमर्श (2001)

48. ब्रह्मानंद का पचड़ा (2002)

49. चिड़िया रैन बसेरा (2002)

6.1. छितवन की छाँह (1953) :–

विद्यानिवास मिश्र के प्रथम निबंध संग्रह के रूप में 'छितवन की छाँह' का उल्लेख किया जा सकता है। यह निबंध संग्रह सन 1953 में प्रकाशित हुआ। यद्यपि इस निबंध संग्रह का पहला निबंध 'छितवन की छांह' सन 1948 में प्रदीप नामक पत्रिका में भी छप चुका था। सत्रह निबंधों की मल्लिका में आबद्ध यह निबंध संग्रह ललित निबंध के क्षेत्र में एक प्रतिमान स्थापित करता दिखाई देता है। इसमें भाषा भाव का टटकापन है तो संस्कृति के साथ गहरा जुड़ाव भी विद्यमान है। इसमें मानवीय संवेदना का भी सुंदर चित्रण है। स्वयं प्रकाशक इस निबंध संग्रह के विषय में टिप्पणी करते हुए लिखता है–"इस पहले संग्रह में भाषा भाव का टटकापन तो है ही, अपनी संस्कृति के साथ गहरा जुड़ाव भी है और एक मानवीय संवेदन भी है जो निबंध साहित्य में नए मोड़ की परिचायक है।"[7]

इस संग्रह के प्रमुख निबंधों में 'छितवन की छाँह', 'हरसिंगार', 'गऊचोरी', 'सांझभई' , 'बसंतन आवे', 'जमुना के तीरे तीरे', 'चंद्रमा मनसो जातः', 'प्यारे हरिश्चंद्र की कहानी रहि जाएगी', 'टिकोरा', 'दिया टिमटिमा रहा है', 'होरहा' ,'आहो आहो संझा गोसाईंन', 'घने नीम तरु तले', 'साची कहौं ब्रजराज तुम्हे रतिराज किंधौ रितुराज कियो है', 'धनवा पियर भइले', 'सखा धर्ममय अस रथ जाके', 'तांडवं देवि भूयादभीष्ट्यै च हृष्ट्यै च नः' आदि हैं।

'छितवन की छाँह' निबंध में छितवन को पार्थिव जीवन के प्रतीक के रूप में पेश किया गया है, जिसमें निबंधकार स्वयं के जीवन से संबंधित घटनाओं को भी चित्रित करता है। लेखक यह भी मानता है की आज तक किसी ने भी छितवन पर एक दृष्टिपात तक नहीं किया। वह पूरी तरह से उपेक्षित है। 'हरसिंगार' निबंध में सत्य तथा सात्विक प्रेम का उद्‌घाटन है, जिसमें एक विरहिणी कामिनी स्त्री अपने पति प्रियतम के न आने से वियोग जनित अवस्था में स्थित है तथा उसके अंतस्थल में उठ रहे विचार हरसिंगार के फूल गिरने के साथ ही शांत हो जाते हैं, इसी का वर्णन है। 'गऊचोरी' में दबंगों द्वारा की जा रही दो मुँही बातों का पर्दाफाश हुआ है। क्षेत्रीय गांवों में प्रचलित पशु चोरी तथा उससे परेशान सामान्य जनता के दुख दर्द को चित्रित किया गया है। पशु चोरी के आधार पर ही भूमि चोरी, राजनीतिक चोरी तथा साहित्यिक चोरी पर व्यंग्य कसा गया है। 'साँझभई' निबंध में लोगों के भीतर से मिट रही मानवता का चित्रण किया गया है। 'बसंतन आवे' निबंध का प्रारंभ एक लोकगीत के माध्यम से हुआ है। इस लोकगीत में उस कामिनी का वर्णन है जो अपने पति को अपने पास उपस्थित न पाकर अत्यधिक दुखी होती है

और चतुर्दिक सुगंध फैलाने वाला बसंत भी उसे दाहक प्रतीत होता है। उसे संपूर्ण सृष्टि जलती हुई ही दिखाई पड़ती है। 'जमुना के तीरे तीरे' निबंध में कर्म के महत्व को प्रतिपादित किया गया है तथा उसके अत्यधिक कँटीला होने के बाद भी उसके त्याग को निषेध किया गया है। इन निबंधों में प्राकृतिक वर्णन के माध्यम से मानव मन में बसी उदासी तथा मानवीय मूल्यों को स्पष्ट किया गया है। 'चंद्रमा मनसो जातः' निबंध में मन को चंद्रमा का पिता तथा आंख को सूर्य का पिता प्रख्यापित किया गया है। चंद्रमा का विभिन्न नक्षत्रों के साथ संबंध स्थापित करने का अद्‌भुत प्रयास इसकी विशिष्ट ज्योतिष ज्ञान का परिचायक है। 'साची कहौ ब्रजराज तुम्हें रतिराज किधौं रितुराज कियो है' में ऋतुराज बसंत को यौवन की मस्ती का प्रतीक प्रख्यापित करते हुए कामुकता का चित्रण है। इसमें विभिन्न कवि कल्पद्रुमों यथा कालिदास ,बाण आदि द्वारा की गयी वसंत वर्णना को भी प्रस्तुत किया गया है। 'प्यारे हरिश्चंद्र की कहानी रहि जाएगी' में भारतेंदु हरिश्चंद्र के जीवन का व्याख्यापन हुआ है। 'धनवा पियर भइले' निबंध संग्रह में लोकगीतों का लालित्य तथा सौंधी मिट्टी की सुगंध के साथ–साथ उनकी मोहकता अनुभूत की जा सकती है। "सखा धर्ममय अस रथ जाके' में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम द्वारा सीता के निर्वासन का प्रसंग उद्धृत किया गया है । इस सम्पूर्ण निबंध के केंद्रीय तत्व के रूप में श्री राम की महत्ता प्रख्यापित है, जिसके द्वारा वे लोकनायक राम बने। 'दिया टिमटिमा रहा है' में दीपावली के अवसर पर आर्थिक रूप से विपन्न घरों में टिमटिमाते हुए दीपकों का उल्लेख है जिनमें तेल नहीं है। यह निबंध भारतीय ग्रामीण परिवेश में व्याप्त आर्थिक विषमता का भी उद्‌घाटन करता दिखाई पड़ता है। यद्यपि गांव में रहने वाले सरल तथा निष्कपट हृदय के लोगों को भी औद्योगिक क्रांति ने प्रभावित किया है, किंतु फिर भी उनके नैतिक मूल्यों में अब भी कोई अधिक गिरावट नहीं है। 'ताण्डवं देवि भूयाद्‌भीष्टयै च हृष्टयै च नः' में भूत भावन भगवान शिव की लीलाओं का वर्णन है, जिसमें उनके तांडव का उल्लेख है जो विनाश लीला का परिचायक है। इसमें भगवान शिव की क्षमाशील प्रवृत्ति तथा उनके मन का फक्कड़पन दर्शाया गया है। 'टिकोरा' निबंध में संवेदनशीलता का परिचय देते हुए असामाजिक प्रवृत्ति पर क्षोभ प्रकट किया गया है। 'होरहा' निबंध में फ़ाग के समय के चित्र उपस्थित है। 'आहो आहो संझा गोसाईंन' में लोकगीतों के माध्यम से लेखक की लोकरंजक भावना उद्धृत है। लोकगीतों के माध्यम से इसमें लोक कल्याण की भावना का प्रस्फुटन है। 'घने नीम तरु तले' निबंध में लेखक ने नीम के वृक्ष को जीवन की कटुता के रूप में दर्शाया है तथा उसे कभी भी अपने स्वयं के जीवन में स्वीकार न करने का संकल्प किया है। संपूर्ण विश्व को ही एक नीम के वृक्ष के रूप में दर्शाते हुए लेखक ने उसके प्रति तिरस्कार का भाव उपस्थित किया है।

'कदम की फूली डाल' विद्यानिवास मिश्र जी का एक अन्य प्रमुख निबंध संग्रह है, जिसका प्रकाशन 1956 ईस्वी में हुआ। कुल 22 निबंधों से आबद्ध यह संग्रह अपने आप में उत्कृष्ट है। इसमें संकलित निबंधों की चर्चा अन्य संग्रह में भी की गई है। इसमें संग्रहित निबंधों के बारे में स्वयं डॉक्टर विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं –"प्रणय या मैत्री की जिस भूमि में छतनार छितवन का बिरवा रोपा था, वह भूमि आज रेत रेत हो गई है। ... उन्हीं भावुक क्षणों की प्रतिक्रियाएं ही इनमें अधिक हैं जो अर्धरात्रि के नीरव में मानसिक उद्वेलन मंथन की विवशताओं के परिणाम हैं।"[8]

यह निबंध संग्रह तीन भागों में विभाजित है । प्रथम खंड– यात्रा खंड, दूसरा खंड– चिंतन खंड तथा तीसरा खंड– स्वप्न खंड के नाम से है। प्रथम खंड, यात्रा खंड में कुल 9 निबंध

संग्रहीत हैं। 'मुकुट मेखला नूपुर', 'राष्ट्रपति की छाया ', 'अमरकंटक की सालती स्मृति', 'रुपहला धुआं', 'कलचुरिओ की राजधानी गुर्गी', 'रेवा से रींवा', 'होइहैं शिला सब चंद्रमुखी', 'बेतवा के तीर पर', 'विंध्य की धरता धरती का वरदान' आदि।

चिन्तन खण्ड मैं भी 9 निबंध उदधृत है। इस खंड के निबन्धों में "भारतेन्दु युग का आभार", "कला में दैनिक आग्रह", "साहित्य और इतिहास", "दिग्भ्रम क्यों?" "रससिद्धांत और दान", "नये मापदण्ड की मांग", "कृष्णकाव्य और भारतेन्दु", "मेघदूत का "सन्देश", "लोकसाहित्य की भूमिका"आदि हैं।

स्वप्न खण्ड के अंतर्गत कुल चार निबंध संकलित किये गए हैं जो इस प्रकार हैं– "अनेन किन छिंतराम", "चिरैया एक बोलेले", "ढेरे–धेरे मुरली बजाउ", "कदम को फूली डोल"। यदि हम इन खंडों में संकलित निबंधों की विशेषताओं को अवलोकित करें तो प्रथम भाग के निबंध सौंदर्य दर्शन तथा पर्यटन से संबंधित दिखाई पड़ते हैं। मिश्र जी जब विंध्य प्रदेश के सूचना विभाग में सेवारत थे, उस समय उन्होंने जिन जिन दर्शनीय स्थानों का भ्रमण किया था उन सभी स्थानों का यात्रा विवरण इन निबंधों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। द्वितीय भाग में ऐसे निबंध सम्मिलित हैं जिनके द्वारा आधुनिक जिज्ञासाओं का समाधान संभव हो पाता है, क्योंकि इनमें समकालीन समस्याओं को उजागर किया गया है। तृतीय भाग के निबंध स्वानुभूति का अंकन करते दिखाई पड़ते हैं।इन निबंधों की विशेषता इनमें चित्रित संस्कृतिक चेतना है। इनमें साहित्य, प्रकृति तथा अंतर्मन के सौंदर्य के साथ–साथ मानवीय मूल्यों की संवेदना की पड़ताल की गई है। डॉ. विभूराम मिश्र भी इसी तथ्य का समर्थन करते हैं। उनके अनुसार–"ये निबंध लेखक की अध्ययनशीलता और सांस्कृति चेतना – संपन्नता के प्रमाण हैं। निबन्धों में साहित्य, प्रकृति और मानव मन के सौन्दर्य की परख की गई हैं।"[9]

विद्यानिवास मिश्र के श्रेष्ठ निबंध संग्रहों में इस निबंध संग्रह को शामिल किया गया है, जिसमें 24 निबंधों का संकलन है । इन निबंधों में भारतीय संस्कृति के प्रतीक चिन्हों का जैसे विवरण सा दिया गया हो। भारतीय संस्कृति के मूल्य तथा मान्यताओं को भी इन निबंधों में भावभूमि प्रदान की गई है। सत्य धर्म, जीवन धर्म, दान धर्म, जैसे मानवीय मूल्य इन निबंधो को उत्कृष्टता के चरम पर अवस्थित करते हैं। ये निबंध जातीय अस्मिता की पहचान के साथ–साथ मन की अतल गहराइयों में उतर कर शिवत्व का बोध कराते हैं। इनकी उत्कृष्टता का व्याख्यापन करते हुए श्री नारायण चतुर्वेदी लिखते हैं–"ये निबंध उच्च कोटि के ही नहीं हैं, यह भारत की आत्मा के दर्पण हैं। अन्य आधुनिक निबंधों ने मुझे इतना आकर्षित और प्रभावित नहीं किया जितना कि इन निबंधों ने। मेरा निश्चय मत है कि उनका स्थाई मूल्य है, और आज से 100 वर्ष बाद भी वे उतने ही ताजे और पठनीय रहेंगे, और उतने ही शिक्षाप्रद और उपयोगी भी, जितने आज हैं। इन निबंधों ने हिंदी साहित्य में पंडित विद्यानिवास मिश्र का स्थाई स्थान निश्चित कर दिया है।"[10]

संदर्भ :

1. *डॉ रामचंद्र तिवारी : हिंदी निबंध और निबंधकार; पृष्ठ –129 ,द्वितीय संस्करण –2013 (विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी)*

2. *डॉ रामचंद्र तिवारी : हिंदी निबंध और निबंधकार; पृष्ठ –129 ,द्वितीय संस्करण –2013 (विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी)*

3. *डॉ निशी भदौरिया : निबंधकार विद्यानिवास मिश्र; पृष्ठ– 18–19, प्रथम संस्करण –2014 (रोली प्रकाशन कानपुर)*

4. *डॉ निशी भदौरिया : निबंधकार विद्यानिवास मिश्र; पृष्ठ– 11, प्रथम संस्करण –2014 (रोली प्रकाशन कानपुर)*

5. *डॉ श्याम सुंदर पांडेयः विद्यानिवास मिश्र का निबंध साहित्यः संदर्भ और अभिव्यक्ति; पृष्ठ –56, संस्करण– 2007 (ज्ञान प्रकाशन कानपुर)*

6. *डॉ श्याम सुंदर पांडेयः विद्यानिवास मिश्र का निबंध साहित्यः संदर्भ और अभिव्यक्ति; पृष्ठ –56, संस्करण– 2007 (ज्ञान प्रकाशन कानपुर)*

7. *डॉ दिलीप देशमुख : विद्यानिवास मिश्र का निबंधालोक ; पृष्ठ– 60 ,प्रथम संस्करण – 2006 (विद्या प्रकाशन कानपुर)*

8. *डॉ श्याम सुंदर पांडेयः विद्यानिवास मिश्र का निबंध साहित्यः संदर्भ और अभिव्यक्ति; पृष्ठ –67, संस्करण– 2007 (ज्ञान प्रकाशन कानपुर)*

9. *डॉ दिलीप देशमुख : विद्यानिवास मिश्र का निबंधालोक ; पृष्ठ– 61 ,प्रथम संस्करण – 2006 (विद्या प्रकाशन कानपुर)*

10. *डॉ निशी भदौरिया : निबंधकार विद्यानिवास मिश्र; पृष्ठ– 20, प्रथम संस्करण –2014 (रोली प्रकाशन कानपुर)*

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

हिन्दी लोकसाहित्य में भोजपुरी साहित्य का अवदान

डॉ0 सुरेन्द्र पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर, कूबा पी0जी0 कालेज, दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़
सम्पादक- World Translation एवं International Literary Quest
प्रधान सम्पादक- Shodh

आज हम 21वीं सदी की दहलीज पर खड़े हैं, जहाँ पर संस्कार अपना अस्तित्व खोते जा रहे हैं, जहाँ भावनाओं की कोई कीमत नहीं, जहाँ परम्पराएँ अब बेड़ियाँ बनकर रह गयी हों, जहाँ रस्मों को निभाना भी अब बोझ–सा प्रतीत होता है, जहाँ बड़े–छोटे के बीच र्क मिट गया हो, जहाँ रिश्तों की गरिमा और पारदर्शिता खत्म होने के कगार पर हो, वहाँ लोकसाहित्य या लोकगीत की बात करना भी कुछ लोगों को बड़ा हास्यास्पद सा प्रतीत होगा। जिस प्रकार मनुष्य अपने परछाई से पीछा नहीं छुड़ा सकता, उसी तरह से लोक साहित्य की विधाएँ– (1) लोकगीत (Folk lyrics), (2) लोकगाथा (Folk Ballads), (3) लोककथा (Folk Tales), (4) लोकनाटक (Folk Drama), (5) प्रकीर्ण साहित्य (लोकोक्ति) (Folk sayings) भी हमारे जीवन की परछाई है, जिनसे कोई भाग नहीं सकता। यह मानव शरीर के अंग के जैसे हैं। किसी एक अंग को अलग करने से शरीर अपूर्ण दिखाई देता है, उसी तरह से लोक साहित्य की विधाओं को किसी एक विधा अलग होने से हिन्दी साहित्य उसी तरह दिखाई पड़ता है।

'लोक' शब्द संस्कृति की 'लोक' धातु में 'घञ्' प्रत्यय के लगने से बना है, जिसके अनेक अर्थ होते हैं, जैसे– त्रिलोक, चौदहलोक, समस्त विश्व, मानस जाति, सामान्य जनता या लोग, गाँव के साधारण अनपढ़ अथवा अशिक्षित लोग इत्यादि। अस्तु 'लोक' शब्द उक्त इन सभी अर्थों में साहित्य और शास्त्रों में व्यवहृत होता आया है। धर्मों में जहाँ 'लोक' शब्द का प्रयोग 'स्वर्गलोक', 'नर्कलोक' आदि से है, वही राजनीतिशास्त्र में 'लोकतंत्र' या 'लोक' शब्द जनता के अर्थ का द्योतन करता है। 'लोक' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है– देखने वाला। लोचन, अवलोकन, विलोकन आदि शब्द इसी अर्थ की सृष्टि करते हैं। कभी–कभी तो अंग्रेजी का स्वबा शब्द भी जिसका अर्थ 'देखना' है इससे सम्बन्धित लगता है परन्तु ऐसा नहीं है।

'लोक' शब्द अंग्रेजी के फोक (Folk) शब्द का समानार्थी है। Folk शब्द एंग्लोसेक्शन शब्द 'Folc' का विकसित रूप है। जर्मन में यह 'Volk' हो गया। मतकमत ने लोकसंगीत (Volk slide), लोक आत्मा (Volk ssela) और लोक विश्वास (Volk glade) आदि शब्दों का प्रयोग 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में किया। उनका प्रसिद्ध लोकगीत संग्रह "Stimmender volker" 1778–79 में प्रकाशित हुआ परन्तु लोकजीवन के व्यवस्थित अनुशीलन के रूप में यह विज्ञान बाद में ही आरम्भ हुआ। इससे पहले Popular activities लोकप्रिय शब्द का प्रयोग हुआ।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में 'लोक' शब्द का प्रयोग क्रमशः दिव्य और पार्थिव के अर्थ में किया गया है किन्तु 'लोक' का एक विशिष्ट अर्थ 'वेद विरोधी' भी है। ऋग्वेद में 'लोक' के लिए 'जन' शब्द का भी प्रयोग मिलता है। पुराणों में सात लोकों की चर्चा की गयी है– भू–लोक, भुव–र्लोक, स्वः र्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक या ब्रह्मलोक। (अग्निपुराण)

''हम लोक–साहित्य शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'फोरलोर' और 'फोक लिटरेचर' शब्द के अर्थ में अधिक करते हैं और अपने पुराने आचार्यों द्वारा प्रयुक्त साधारण जनता में प्रचलित व्यावहारिक ज्ञान और आचार के अर्थ में कम। 19वीं शताब्दी के मध्यभाग तक यूरोप में लोकसाहित्य को पुरातत्व का ही अंग माना जाता था। उसका आरम्भ मानवविज्ञान के साधन के रूप में हुआ था, और उसी के साथ वह दीर्घकाल तक जुड़ा रहा। 'फोक लोर' शब्द का प्रथम व्यवहार डब्ल्यू0जे0 थॅम्स ने किया था।''[1]

'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है।''[2]

''हमारे यहाँ लोककथाओं, लोकगीतों तथा लोकप्रथाओं का अध्ययन 19वीं शती के उत्तरार्द्ध में संभवतः इसाई मिशनरियों ने आरंभ किया। ये मिशनरी यूरोप के उन देशों से आए थे, जहाँ औद्योगिक उत्थान, मध्वर्ग का उदय तथा राष्ट्रीयता की जागृति बहुत पहले ही हो चुकी थी और इसलिए उनके यहाँ लोक साहित्य का अध्ययन बहुत पहले ही आरंभ हो चुका था।''[3]

हिन्दी की बोलियों में भोजपुरी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यद्यपि इसका साहित्य अभी इतना समृद्ध नहीं है लेकिन यदि इस भाषा को बोलने वालों की संख्या पर दृष्टि डाली जाय तो भारतवर्ष की समृद्ध भाषाओं जैसे– हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी आदि बोलने वालों से कहीं अधिक है। भोजपुरी में जो साहित्य उपलब्ध होता है उसे तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है– 1. संत साहित्य, 2. लोक साहित्य, 3. आधुनिक साहित्य।

भोजपुरी साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करना आसान नहीं है। इसका बड़ा कारण है कि इसका लिखित रूप बहुत कम उपलब्ध है। भोजपुरी साहित्य की मौलिक परम्परा लोकगीत, लोककलाओं, लोकगद्य के रूप में आज भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। चौरासी सिद्धों ने अपनी कविता में जिस भाषा का प्रयोग किया है, उसे निश्चित रूप से भोजपुरी कहना उचित नहीं होगा, क्योंकि उस पर मागधी अपभ्रंश से प्रसूत सभी भाषाओं एवं बोलियों का समानाधिकार है, किन्तु इन सिद्धों के बाद संत कवियों एवं तुलसी, जायसी आदि। अवधी के रचनाकारों में भी भोजपुरी संज्ञा शब्दों एवं कहीं–कहीं क्रियापदों तक का भी प्रयोग किया है। इस रचनाकारों में कबीर का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। कबीर के अनेक पद आज भी भोजपुरी में उपलब्ध है–

''कौन ठगवा नगरिया लूटल हो।

चंदन काठ कै बनल खटोलना। तापर दुलहिन सूतल हौ।।''

× × ×

''तोरा हीरा हिराइलबा किंचड़े में।

कोई ढूँढ़े पूरब कोई ढूँढ़े पश्चिम, कोई ढूँढ़े पानी पथरे में।'''

इन सन्तों की अगली कड़ी में धरमदास, शिवनारायण, धरनीदास, लक्ष्मी सखी आदि सन्त प्रमुख हैं। भोजपुरी के आधुनिक कवि में बिसराम, तेगअली, बाबू रामकृष्ण वर्मा, पं0 दूधनाथ उपाध्याय, बाबू अम्बिका प्रसाद, रघुवीर शरण, भिखारी ठाकुर, मनोरंजन प्रसाद सिन्हा, रामविचार पाण्डेय, प्रसिद्ध नारायण सिंह, पं0 महेन्द्र शास्त्री, श्यामबिहारी तिवारी, कविवर चंचरीक, स्वामी जगन्नाथ जी, अशान्त, बलभद्र, बावला रामजियावन दास, रामेश्वर सिंह कश्यप उर्फ लोहा सिंह आदि अनेक रचनाकारों की लम्बी सूची है। भोजपुरी गद्य में राहुल सांकृत्यायन, श्री अवधबिहारी

'सुमन', भिखारी ठाकुर, गोरखनाथ चौबे का नाम महत्वपूर्ण है, इन गद्य लोक रचनाकारों ने नाटक, कहानी का विशेष सृजन किया है जो भोजपुरी साहित्य को समृद्ध करता है।

रघुवीर शरण की 'बटोहिया' में भारत की अखण्डता का चित्रण और भारत की प्राचीन संस्कृति की झाँकी मिलती है। मनोरंजन प्रसाद सिन्हा की 'फिरंगिया' रचना में देश की दुर्दशा का चित्रण तथा 'जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड' में अंग्रेजी क्रूरता, नीचता का उल्लेख है। इसी प्रकार भिखारी ठाकुर की 'विदेशिया' में 'जुलुमी बयरिया' शब्दों द्वारा अंग्रेजों के जुल्म की ओर ही संकेत है। चतुरी चाचा की 'हिमालय ना झुकी कबहूँ' में भारत की अपराजेयता तथा चीनियों की दुष्टता का वर्णन देखने को मिलता है। इसी शृंखला में रामेश्वर सिंह 'कश्यप' का 'लोहासिंह' नाटक एवं दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह कृत 'बाबू कुंअर सिंह' प्रसिद्ध है। बिहार के 'विदेशिया' लोकनाट्य में अनमेल विवाह आर्थिक परिस्थितियों के कारण पति का स्त्री को छोड़कर परदेश चले जाने की विवशता का चित्रण है। भोजपुरी का एक श्रमगीत का उदा0–

''बाभ्ना के अगीया से हुमवा होला।

डोमवा के अगीया से बैकुण्ठ जाला।।''

भोजपुरी एक भाषा नहीं है यह Construction है। भोजपुरी Natural है, Artificial नहीं। भोजपुरी को भारतीय पटल पर महिमामण्डित करने का काम महुआ चैनल को जाता है। आज भोजपुरी अंतरराष्ट्रीय भाषा बनकर उभरी है।

संदर्भ सूची :

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी– लोकसाहित्य का अध्ययन, जनपद में (हिन्दी जनपदीय परिषद् का त्रैमासिक मुखपत्र, वर्ष्ज्ञ– 01 के अंक 01 में, काशी वैशाख संवत् 2010 को), पृ0 66
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी– जनपद, पृ0 65, वर्ष–01, अंक–01
3. नामवर सिंह– हिन्दी साहित्य के इतिहास में लोक साहित्य की भूमिका, जनपद, अंक–1, पृ0 61

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

आचार्य रामचंद्र शुक्ल : एक सृजनशील व्यक्तित्व

डॉ0 विकास कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, (हिन्दी विभाग), श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश
सम्पादक- International Literary Quest एवं World Translation तथा Shodh)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के उन्नायकों में अग्रगण्य माने जाते हैं। उनकी साहित्य साधना तथा भाषा–साधना अनुकरणीय है। भारतीय आचार्यों की परम्परा में वे इस शताब्दी के आचार्य हैं, उनके कार्यों का मूल्यांकन उनकी जीवनी को जाने बिना नहीं किया जा सकता। किसी व्यक्ति के विचार और उसके विश्वास उसकी व्यक्तिगत जीवनी से सम्बद्ध रहते हैं। हम आचार्य शुक्ल को उनके कार्यों के, उनकी रचनाओं के आधार पर जानते रहेंगे। किन्तु हम उनको नहीं जान पायेंगे, जिनके कारण आचार्य शुक्ल, आचार्य शुक्ल बने हैं। अर्थात् किसी भी जीवनी के आधार पर हमारा परिचय उन लोगों से होता है, जिनके आधार पर व्यक्ति–विशेष का निर्माण होता है। महापुरुष को तो लोग याद रखते हैं किन्तु महापुरुष के निर्माण में अनेक व्यक्तियों का सहयोग होता है। इस सहयोग के अभाव में वह महापुरुष हो ही नहीं सकता था और इसमें भी घर का सहयोग के तथा परिवार का सहयोग सबसे अधिक आवश्यक है।

पारिवारिक परिचय

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्म अगौना गाँव में सन् 1884 में हुआ। इनके पिता का नाम चन्द्रबली शुक्ल था। अगौना गाँव, अवध प्रदेश का गाँव है। यहाँ की बोली ठेठ अवधी है। यह सरयू पार फैजाबाद जिले के टांडा नामक कस्बे के निकट है। अगौना से अयोध्या 16–17 कोस है। यह गाँव शुक्ल जी का मूल गाँव है। उनका शैशवकाल इसी गाँव में बीता। यहाँ से वे अपने पिता के साथ राठ पहुँचे और फिर मिर्जापुर आये। मिर्जापुर पहुँचे उस समय उनकी अवस्था 9 वर्ष की थी। इस समय से 24 वर्ष की अवस्था तक वे मिर्जापुर में रहे।

शुक्ल जी का शैशव अगौना में बीता। शिक्षा का आरम्भ राठ में हुआ और 24 वर्ष तक मिर्जापुर में शिक्षा पूरी हुई। मिर्जापुर के संस्कार शुक्ल जी में अन्त तक बने रहे। शुक्ल जी के पिता पं0 चन्द्रबली शुक्ल मिर्जापुर के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वे कानूनगो थे। उनकी माता का स्वर्गवास उस समय हुआ, जब शुक्ल जी 9 वर्ष के थे। 1895 ई0 में उनके पिता ने दूसरा विवाह किया। शुक्ल जी की माता की मृत्यु राठ में हुई थी। अपनी माता के दाह–संस्कार की स्मृति शुक्ल जी को अन्त तक बनी रही। इस सम्बन्ध में उनके भतीजे श्री चंद्रशेखर शुक्ल ने लिखा है–

'अपनी माता और 'दीया' तालाब पर उनके अग्नि–संस्कार के दृश्य की स्मृति उन्हें बराबर बनी रही। परिणत वय में भी उनकी चर्चा छिड़ जाने पर शुक्ल जी की आँखें डबडबा आती थीं। सारा दृश्य आँखों में नाच उठता था। हृदय के वेग की प्रबलता से आँसू की दो–चार बूँदें टपक पड़ती थीं। ऐसे ही अवसरों पर उनके हृदय की कोमलता और विशालता की थाह लगती थी।[1]

शिक्षा

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की शिक्षा मिर्जापुर में हुई। यहाँ रमई पट्टे मुहल्ले के ऐंग्लो–संस्कृत जुबली स्थल से उन्होंने 1898 ई0 में 14 वर्ष की अवस्था में उर्दू के साथ अँगरेजी लेकर मिडिल पास किया। इसके बाद वे लन्दन मिशन स्कूल में पढ़ने लगे। इस स्कूल से उन्होंने 1901 ई0 में स्कूल फाइनल की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद उन्होंने कायस्थ पाठशाला प्रयाग में इंटरमीडिएट के लिये अपन नाम लिखाया, किन्तु पारिवारिक कठिनाइयों के कारण कहिये या घरेलू आर्थिक स्थिति के कारण कहिये, उनको इंटरमीडिएट पूर्ण करनेसे पूर्व लौटना पड़ा। बाद में 1902 ई0 में उन्होंने लीडरशिप की परीक्षा देनी चाही। उसके लिये उन्होंने तैयारी भी की थी। किन्तु सफलता नहीं मिली। उन्हें अपने परिवार के साथ अगौना जाना पड़ा। लीडरशिप की परीक्षा दी, किन्तु अल्प तैयारी के कारण और भाग–दौड़ के कारण वे उत्तीर्ण नहीं हो सके। इसके बाद तो उनका नियमित कॉलेज का अध्ययन बन्द हो गया। स्कूल फाइनल होने के बाद से ही उन्हें पारिवारिक कठिनाइयों से सीधा सामना करना पड़ा। 1901 ई0 के बाद से उन्हें जीविका के लिए काम करना पड़ा। 1901 से 1908 के बीच का काल इस संघर्ष में बीता है। 1908 ई0 में वे हिन्दी 'शब्दसागर' के सहायक सम्पादक बनकर काशी आ गये थे। संक्षेप में शुक्ल जी की शिक्षा घर पर अधिक और कॉलेज में कम हुई। कॉलेज में उन्होंने नाममात्र के लिये प्रवेश किया था।

अध्ययन

यद्यपि शुक्ल जी की शिक्षा, शिक्षा–संस्थाओं में पूरी तरह और उनकी इच्छा के अनुसार न हो सकी तथापि अध्ययन में उनकी अभिरुचि आरम्भ से थी। स्वाध्याय के बल पर शुक्ल जी आगे बढ़ते रहे। मिर्जापुर में ही स्कूली–जीवन में उन्होंने अध्ययन की नियमित अध्ययन की आदत डाल ली थी, उनके इस स्वभाव के सम्बन्ध में लिखा है– ''शुक्ल जी के अध्ययन का ढंग भी निराला था। तख्त या टेबल–कुर्सी रहने पर भी वे सदा अपनी चारपाई पर ही पढ़ा करते थे। याद करने वाले विषय सवेरे और स्कूल के अन्य विषय रात में भोजन के पहले पढ़ते थे। मिर्जापुर पहुँचने पर रात में नौ से साढ़े नौ बजे के बीच भोजन कर लेना उनका नियम था। स्कूल के विषयों के बाद घर के सब लोगों के खा–पीकर सो जाने पर प्रायः 10 बजे से उनका विशेष अध्ययन प्रारंभ होता था जो बहुधा एक बजे रात तक और कभी–कभी उसके बाद भी तक चला करता था। इस प्रकार रात में अधिक देर तक पढ़ने के कारण वे सवेरे कुछ देर से उठते थे।[2]

स्कूली जीवन में उन्होंने उर्दू और अँगरेजी दोनों भाषायें सीखीं। मिडिल स्कूल के हेडमास्टर बाबू रामस्वरूप राय अँगरेजी भाषा पर अधिकार प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित किया। अपने घर से उन्होंने अँगरेजी की पुस्तकें भी शुक्ल जी को दी। मिडिल स्कूल की तरह लंदन मिशन स्कूल के प्रिंसिपल मिस्टर एफ0एफ0 लॉगमेन भी शुक्ल जी से बहुत प्रसन्न रहते थे। इस स्कूल में शुक्ल जी को बरुआ साहब से भी प्रोत्साहन मिला। दोनों ही शुक्ल जी को अँगरेजी से प्रसन्न थे। इनके प्रोत्साहन स्वरूप शुक्ल जी ने 16 वर्ष की अवस्था में एडिसन के 'ऐसे ऑन इमेजिनेशन' का हिन्दी अनुवाद कर डाला था। आचर्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने अध्ययन के सम्बन्ध में स्वयं लिखा है–

'ज्यों–ज्यों मैं सयाना होता गया त्यों–त्यों हिन्दी के पुराने साहित्य का भेद भी समझ पाने लगा और नये की ओर झुकाव बढ़ता गया। नवीन साहित्य का प्रथम परिचय नाटकों और उपन्यासों के रूप में था, जो मुझे घर पर ही कुछ न कुछ मिल जाया करते थे। बात यह थी कि 'भारत जीवन' के स्वर्गीय बाबू रामकृष्ण वर्मा मेरे पिता जी के क्वींस कॉलेज के सहपाठियों में थे। इससे 'भारत जीवन' प्रेस की पुस्तकें मेरे यहाँ आया करती थीं। अब मेरे पिता जी उन पुस्तकों

को छिपाकर रखने लगे। उन्हें डर था कि कहीं मेरा चित्त स्कूल की पढ़ाई से हट न जाय। मैं बिगड़ न जाऊँ। उन दिनों पं0 केदारनाथ पाठक ने एक अच्छा हिन्दी पुस्तकालय मिर्जापुर में खोला था। मैं वहाँ से लाकर पुस्तकें पढ़ा करता था। अतः हिन्दी के आधुनिक साहित्य का स्वरूप अधिक विस्तृत होकर मन में बैठता गया। नाटक, उपन्यास के अतिरिक्त विविध विषयों की पुस्तकें और छोटे–बड़े लेख भी साहित्य की नई उड़ान के एक प्रधान अंग दिखाई पड़े। स्वर्गीय पं0 बालकृष्ण भट्ट का 'हिन्दी प्रदीप' गिरता–पड़ता चला जाता था। चौधरी साहब की 'आनन्द–कादम्बिनी' भी कभी–कभी निकल पड़ती थी। कुछ दिनों में काशी की 'नागरी प्रचारिणी सभा' की धूम सुनाई पड़ने लगी। एक ओर तो वह नागरी लिपि और हिन्दी भाषा के प्रवेश और अधिकार के लिये आन्दोलन चलाती थी, दूसरी ओर हिन्दी–साहित्य की पुष्टि और समृद्धि के लिये अनेक प्रकार के आयोजन करती थी। जिसमें नवीन–नवीन विषयों की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता था।[3]

आचार्य शुक्ल के पिताजी व्यावहारिक दृष्टि से उर्दू–अँगरेजी पढ़ने के पक्ष में थे। उनका विचार था कि हिन्दी पढ़ने से उन्नति नहीं हो सकती। वैसे वे व्यक्तिगत रूप में हिन्दी कविता में रुचि रखते थे। आर्यसमाज का उन पर प्रभाव था। हिन्दी की बहुत–सी पुस्तकें घर पर रहती थीं। आचर्य शुक्ल ने कविता का प्रेम अपने पिता से भी प्राप्त किया। घर पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक भी पढ़े जाते थे। अपने पिता के साहित्य प्रेम के सम्बन्ध में शुक्ल जी ने लिखा है–

'वह भी एक समय था जब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सम्बन्ध में एक अपूर्व मधुर भावना लिये सन् 1891 में आठ–नौ वर्ष की अवस्था में मैं मिर्जापुर आया। मेरे पिताजी, जो हिन्दी कविता के बड़े प्रेमी, थे, प्रायः रात को 'रामचरित–मानस', 'रामचन्द्रिका' या भारतेन्दु जी के नाटक बड़े चित्ताकर्षक ढंग से पढ़ा करते थे। बहुत दिनों तक तो 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक के नायक हरिश्चन्द्र और कवि हरिश्चन्द्र में मेरी बाल–वृद्धि कोई भेद न कर पाई थी। हरिश्चन्द्र शब्द से दोनों की मिली–जुली अस्पष्ट भावना एक अद्‌भुत माधुर्य का संचार करती थी। मिर्जापुर आने पर धीरे–धीरे यह स्पष्ट हुआ है कि कवि हरिश्चन्द्र तो काशी के रहने वाले थे और कुछ वर्ष पहले तक वर्तमान थे। कुछ दिनों में किसी से सुना कि हरिश्चन्द्र के एक मित्र यहीं रहते हैं और हिन्दी के एक प्रसिद्ध कवि हैं, उनका नाम है उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन।'[4]

अपने पिता की तरह अपनी दादी से भी आचार्य शुक्ल ने साहित्यिक संस्कारों का अर्जन किया। उनकी दादी ने उन्हें मातृ–स्नेह दिया। माता की मृत्यु के बाद घर में उन्हें स्नेह अपनी दादी से ही प्राप्त हुआ। अपनी दादी को वे 'दूबू' कहा करते थे। अपनी दादी का चित्र खींचते हुये आचार्य शुक्ल ने लिखा है– 'कभी–कभी दूबू मुझे अपनी गोद में लेकर दोपहर में तन्मय होकर मानस का पाठ करती थी। उस समय अपने ऊपर टपके हुये उनके प्रेमाश्रु–बिन्दुओं को मैं हाथों से पोछता जाता था और ध्यानस्थ होकर टकटकी लगाकर उनका मुँह ताका करता था, उनकी आत्म–विस्मृति की यह दशा आज भी मेरी आँखों के सामने है।[5]

आचार्य शुक्ल काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में काम करते हुये बीच में 1924 ई0 में अलबर चले गये। इस समय उन्होंने विश्वविद्यालय से एक वर्ष की छुट्टी ली जो स्वीकृत हो गई थी। अलवर के महाराज जयसिंह को एक हिन्दी सचिव की आवश्यकता थी। इन्टरव्यू हुआ और उसमें वे सफल हो गये। अलबर में रहने पर उन्हें वहाँ का राजसी वातावरण पसन्द नहीं आया। व्यक्तिगत रूप में उन्हें बहुत–सी बातें अरुचिकर प्रतीत हुई। दासता का दृश्य देखकर वे घबरा गये। जनवरी 1925 ई0 में अलबर के महाराज विश्वविद्यालय में दीक्षाप्त भाषण देने काशी आये।

शुक्ल जी भी उन्हीं के साथ काशी आ गये और आ गये तो फिर अलबर नहीं लौटे। महाराजा ने बहुत कहा किन्तु वे नहीं गये।

प्रकृति प्रेम का संस्कार

आचार्य शुक्ल को प्रकृति से बड़ा प्रेम था। उनके साहित्य के अध्ययन से इस बात का ज्ञान हो जाता है। सच्चाई यह है कि इस सम्बन्ध में उनके संस्कार मिर्जापुर के हैं और इसमें भी विशेष रूप से उन्हें ये संस्कार अपने पिता से प्राप्त हुए हैं। उनके पिता मिर्जापुर के कानूनगो थे और घोड़ा रखते थे। जब सदर कानूनगो हो गये तो घोड़े रखने लगे। घोड़ों के साथ–साथ पशु–पक्षियों को पालने का भी उन्हें शौक था। मिर्जापुर में जिस इलाके में वे रहते थे, वह रमई पट्टी कहलाता है। यह भाग शहर से बाहर है। फल–फूलों का उन्हें बड़ा शौक था। बाग लगा रखा था। चन्द्रशेखर शुक्ल ने लिखा है– 'पं0 चंद्रबली शुक्ल को देहाती जीवन बहुत पसन्द था। शहर के पों–पों और धू–धक्कड़ से उन्हें नफरत थी। मिर्जापुर में उन्होंने अपने मकान के सामने एक छोटा–सा बागीचा लगा रखा था और उसके सामने एक बीघा खेत लेकर मौसम की चीजें बुआया करते थे। बगीचे में अनेक फलों और क्यारियों और थाले बने थे। चलने के लिये रौस और बैठने–उठने तथा सोने के लिये दिव्य स्थान बने थे,. उन्हें आकाश–शयन का अच्छा अभ्यास था। वर्षा में वृष्टिपर्यन्त ही वे घर में सोते थे। वर्ष में केवल अगहन से शिवरात्रि तक वे कमरे में सोया करते थे। बाकी साढ़े आठ महीने बाहर मैदान में ही सोते रहते थे। फल–फूलों का उन्हें ऐसा शौक था कि नगर में अन्यत्र अप्राप्य फल और फूल उनके उस छोटे से बाग में मिल जाते थे।''[6]

रचनायें

शुक्ल जी की रचनाओं पर विचार करते समय यह बात ध्यान में रखनी आवश्यक है कि उन्होंने रचनाओं के प्रकाशन के लिये अपनी ओर से विशेष प्रयास नहीं किया। अपने संकोची स्वभाव के कारण ऐसा करना उनकी प्रकृति के विरूद्ध था। उनकी भलमनसाहत का लाभ उनकी रचनाओं को प्रकाशित करने वालों ने उठाया है। जैसे नौकरी के लिये शुक्ल जी ने चिन्ता नहीं की, वैसे ही अपनी रचनाओं के प्रकाशन की उन्होंने चिन्ता नहीं की। शुक्ल जी ने निरन्तर ज्ञान की साधना की है और इस साधना को उन्होंने आवश्यकतानुसार लिपिबद्ध किया। वे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी तथा हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध रहने के कारण उन्हें ऐसी रचनायें लिखनी पड़ीं जिनकी आवश्यकतायें, इन संस्थाओं को थी। शुक्ल जी का बहुत–सा लेखन संस्थाओं की माँग के अनुरूप है और उन्हें उन माँगों की पूर्ति के लिये निरन्तर श्रम करना पड़ा है। जो काम शुक्ल जी ने स्वीकार किया उसका निर्वाह ईमानदारी से किया। उनकी प्रामाणिकता तथा प्रतिभा का प्रभाव यह हुआ कि आवश्यकताओं से (माँग के फलस्वरूप) प्रेरित होकर लिखी गई रचनायें भी अच्छी बन गईं और उनके प्रकाशन के बाद उनकी कीमत बढ़ती गई। बाद में उन रचनाओं का मूल्य बढ़ा।

शुक्ल जी ने अपनी रचनाओं का बार–बार संशोधन किया। उन्हें ठीक किया और तब छपवाया है। एक ही रचना बार–बार छपी है और उनके छपने के कारण अलग–अलग रहे हैं। इस तरह जब किसी रचना के दूसरी बार छपने का कारण आया तो उन्होंने आवश्यकतानुसार रचना का संस्कार किया। उन्होंने कवितायें लिखीं, रचनाओं का सम्पादन किया, निबन्ध लिखे, समीक्षायें लिखीं, हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा और अनुवाद कार्य भी किया। उनकी रचनाओं का परिचय नीचे दिया जा रहा है–

प्रथम रचना

आचार्य शुक्ल की प्रथम प्रकाशित रचना 'भारत और वसंत' है। नाटकीय संवाद के रूप में यह रचना लिखी गई है। इसका प्रकाशन 1896–97 में मिर्जापुर से निकलने वाले पत्र 'आनंद कादम्बिनी' में हुआ है। इसका सम्पादन चौधरी बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' किया करते थे। जिस समय यह रचना प्रकाशित हुई उस समय शुक्ल जी आठवीं कक्षा में पढ़ते थे और उनकी अवस्था उस समय तेरह वर्ष की थी। बाद में नियमित रूप से 'आनन्द कादम्बिनी' में लिखने लगे थे।

सरस्वती में प्रकाशित प्रथम रचना

सरस्वती का प्रकाशन 1900 ई0 में आरम्भ होता है। प्रथम वर्ष यह पत्रिका बाबू राधाकृष्णादास, बाबू कार्तिक प्रसाद, बाबू जगन्नाथदास, पं0 किशोरीलाल गोस्वामी तथा बाबू श्यामसुन्दरदास के संयुक्त संपादकत्व में निकली। अक्टूबर 1901 में इसी पत्रिका में शुक्ल जी की, 'मनोहर छटा' कविता इसमें प्रकाशित हुई। इस समय में सरस्वती का सम्पादन बाबू श्यामसुन्दरदास कर रहे थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी बाद में जनवरी 1903 में इस पत्रिका के सम्पादक हुये। आनन्द कादम्बिनी में शुक्ल जी की प्रकाशित रचनाओं को देखकर द्विवेदी जी बहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने चौधरी साहब को (मिर्जापुर) पत्र लिखा कि रामचन्द्र शुक्ल से सरस्वती के लिये रचनायें भिजवाएँ। बाद में शुक्ल जी की रचनायें सरस्वती में छपती रही हैं।

कवितायें

यद्यपि शुक्ल जी कवि के रूप में ख्यात नहीं हैं, तथापि साहित्य के क्षेत्र में उनका आगमन कविता के द्वारा ही हुआ है। उनकी कवितायें विविध पत्र–पत्रिकाओं में छपी हैं। जिन पत्रिकाओं में उनकी कवितायें छपी हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं– (1) आनन्द कादम्बिनी, (2) सरस्वती, (3) लक्ष्मी, (4) माधुरी, (5) बाल प्रभाकर, (6) बाल हितैषी, (7) नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका, (8) सुधा लता, (9) इनदु। इन सब पत्रिकाओं में प्रकाशित कृतियों का सम्पादन 'मधुस्रोत' के अन्तर्गत किया गया है। इसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा काशी से सम्वत् 2028 में प्रथमतः हुआ है। इस संग्रह के आरम्भ में शुक्ल जी का निबन्ध 'कविता क्या है?' निबन्ध भी छपा है।

गद्य रचनायें

शुक्ल जी प्रधान रूप से गद्यकार हैं। गद्य में भी उनकी रचनाओं का विभाजन किया जा सकता है। प्रधान रूप से वे निबन्धकार तथा समीक्षक के नाते प्रसिद्ध हैं। अन्य गद्य रचनायें भी प्रकाशित हुई हैं।

निबन्ध

निबन्धों में मनोविकारों से सम्बन्धित लिखे गये निबन्ध सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। ये संख्या में दस है और प्रथमतः ये 1912 ई0 से 1918 तक नागरी प्रचारिणी पत्रिका में क्रमशः प्रकाशित होते रहे हैं। बाद में 1930 ई0 में 'विचार–वीथी' नाम की पुस्तक में एकत्रित रूप में प्रकाशित हुये। ये ही निबन्ध फिर 1939 ई0 में 'चिन्तामणि भाग 1' में सम्मिलित किये गये।

समीक्षा

समीक्षा की दृष्टि से शुक्ल जी की निम्नलिखित तीन पुस्तकें प्रसिद्ध हैं– (1) गोस्वामी तुलसीदास, (2) सूरदास तथा (3) जायसी ग्रंथावली।

इनमें वस्तुतः समीक्षा के रूप में लिखी हुई पुस्तक प्रथम ही है। दूसरी पुस्तक सूरदास के सम्बन्ध में लिये हुये उनके लेखों का सम्पादन है। 'सूरदास' पुस्तक का प्रकाशन उनकी मृत्यु के बाद हुआ और उसका सम्पादन आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने किया है। तीसरी पुस्तक 'जायसी ग्रंथावली' है। इसकी भूमिका समीक्षा का अंश है। वस्तुतः इसे सम्पादित पुस्तक मानना चाहिये। यह बात दूसरी है कि सम्पादित पुस्तक की भूमिका समीक्षा में परिणत है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास

यह पुस्तक प्रथमतः हिन्दी शब्दसागर की भूमिका के रूप में लिखी गई। इसका प्रकाशन बाद में स्वतंत्र पुस्तक के रूप में हुआ। इसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से हुआ है। शुक्ल जी यह पुस्तक बहुत प्रसिद्ध हुई है। हिन्दी शब्दसागर की प्रस्तावना के रूप में इसका प्रकाशन जनवरी 1929 ई0 में हुआ और स्वतंत्र पुस्तक के रूप में इसका प्रथम प्रकाशन शीघ्र ही उसी वर्ष हुआ। 1940 ई0 में शुक्ल जी ने इसको प्रवर्द्धित तथा संशोधित किया है।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका का सम्पादन

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका का सम्पादन लगभग 7 वर्ष तक किया। जब वे सम्पादन करते थे उस समय नागरी प्रचारिणी पत्रिका मासिक पत्रिका थी। प्रति मास उसका प्रकाशन होता था। उस समय शुक्ल जी बहुत परिश्रम करते थे। पत्रिका की सामग्री के अतिरिक्त ये हिन्दी की सामयिक समस्याओं पर विचार करते और तदनुसार टिप्पणियाँ लिखा करते थे। शुक्ल जी ने सम्पादन का यह कार्य प्रथमतः संवत् 1966 से वंवत् 1971 तक और बाद में संवत् 1975 से 1976 तक किया है। इस समय में नागरी प्रचारिणी पत्रिका में उनकी जो रचनाएँ प्रकाशित हुईं, उनकी सूची यहाँ दी जा रही है–

1. महाराज कनिष्क (15 सितम्बर, 1909 ई0)
2. बुद्धदेव की हड्डियाँ (15 अक्टूबर, 1909 ई0)
3. हेली का पुच्छलतारा (वही)
4. उर्दू राष्ट्रभाषा (15 दिसम्बर, 1909 ई0)
5. भाषा की उन्नति (15 जतनवरी, 1910 ई0)
6. हमारा ढंग (वही)
7. जापानी खोज (15 फरवरी, 1910 ई0)
8. भारतीय शिल्पकला (वही)
9. उर्दू साहित्य सम्मेलन (15 मार्च, 1910 ई0)
10. भीटा खण्डहर (वही)
11. मान्य भाषा (वही)
12. हिन्दी साहित्य सम्मेलन (15 अप्रैल–15 मई 1910 ई0)
13. 'पैसा' अखबार का आक्षेप (वही)
14. बगाल में उर्दू (15 जून, 1910 ई0)
15. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी (वही)
16. प्राचीन भारत का एक शक राजा (अंग्रेजी से अनूदित 15 जुलाई, 1910 ई0)
17. एक लिपि विस्तार कांफ्रेंस (जनवरी, 1911 ई0)
18. हरिश्चन्द्र समीक्षा (अप्रैल, 1911 ई0)

19. हिन्दी में लिंग नियम (मई, 1911 ई0)
20. सृष्टि विस्तार पर प्राचीन मत (जनवरी, 1912 ई0)
21. ईथर की भँवर और संसार की उत्पत्ति (मार्च, 1912 ई0)
22. निद्रा रहस्य (जुलाई, 1912 ई0)
23. प्राण तत्त्व (सितम्बर, 1912 ई0)
24. आकाश का नीला रंग (आषाढ़–श्रावण 1976 संवत्)
25. भारत में हूण (अंग्रेजी से अनूदित, आश्विन–कार्तिक 1976 संवत्)

इन सब रचनाओं की सूची सुधा शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'आचार्य शुक्ल' में दी है।[7]

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. रामचंद्र शुक्ल– चन्द्रशेखर शुक्ल, पृ0 35
2. वही, पृ0 79
3. आलोचक रामचन्द्र शुक्ल, सम्पादक– डॉ0 गुलाबराय, डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक, (द्वितीय संस्करण), पृ0 4
4. वही, द्वितीय संस्करण, 1962 ई0, पृ0 3
5. रामचन्द्र शुक्ल– चन्द्रशेखर शुक्ल, पृ0 28
6. वही, पृ0 33
7. आचार्य शुक्ल, सुधा शुक्ल, पृ0 58

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

Naxalism : Challenges and Solution

Dr. Vivek Sengar
Assistant Professor, Department of History
Sri Varshney College, Aligarh

The terms Naxalites is used to refer to militant. far-left radical Communist groups operating in India. The Naxal name comes from the village Naxalbari in West Bengal. The Naxal are considered far left redical communists, supportive of Maoist political sentiment and ideology. State which have Naxalism movement are Andhra Pradesh, Bihar, Chhattisgarh, Jharkhand, Kerla, Madhyapradesh, Maharashtra, Orissa, Tamilnadu, Uttar Pradesh & West Bengal. Naxalites are active in approx. 40% of India's geographical Area. They Control large portion of remote and densely forested areas and concentrated in an area called 'Red Corridor'. This area is also the travel belt where the tension between economic development and aboriginal land right in most apparent.

Though all Naxal groups are bound by a common ideology they tend to act and react in different ways and affect a kind of population which lead to varied opinions. On July 5, 2011 the Hon'ble Supreme Court of India declare the militia as illegal and unconstitutional. Naxal believe that power flows from the barrel of gun and their aim in to create a classless society.

The term Naxalism was first coined in 1967. When in West Bengal a section of C.P.M. lead by Charu Majumdar, Kanu Sanyal, Ram Prabhav Singh, Jangal Santhal and J.P. Inspector initiated a violent uprising. On the May 18, 1967, the Siliguri Kishan Sabha of which Jangal Santhal was the president, declared their readiness to adopt armed struggle to redistribute land to landless. A Large number of youth student attracted to the ideology, which spread through Majumdar's writings particularity the Historic EightDocuments' which formed the basis of Naxilite ideology. In 1967 Naxilite the organized the All India coordination committee of Communist revolutionaries (AICCCR). In 1969. The AICCCR gave birth to communist Party of India (Marxist-Leninist) {CPI(ML)}. The movement started in West Bengal in the early seventies but has since spread to the rural areas in central and eastern India. In 2006 India's intelligence agency the Research and Analysis Wing (RAW) estimated 20,000 armed Cadre Naxalite were operating in addition to 50,000 regular Cadre. Inspired by the doctrines of Mao Zedong, Naxalites work to overthrow the government and upper classes by violence. The Indian Ministry of Home Affairs describes the objectives of Naxalites as destroying "state legitimacy....with the ultimate object of attaining political power by violent means". They are considered as a terrorist organization under the Unlawful Activities (Prevention) Act of India (1967). The

Ministry of Home Affairs notes that Naxalites attach themselves to civil society and front organizations on issues such as displacement, land reforms and acquisition where they can increase their mass support.

Naxalites have been attacking police establishments and infrastructures such as public transportation, causing insecurity and instability to the area. From the period 2006-2010 alone, there were nearly 9,000 incidents with Naxalites with over 3,000 civilians killed. Last year in May 2013 an ambush at Dist. SukmaChhattisgarh approx. One thousand Naxal had attacked on a Carvan of Congress personals and killed many of them. Ex. Cabinate Minister Mr. Shukla and Mahendra Karma were killed.

The Home Minister P Chidambaram has declared that the security forces need to be more assertive against the Maoists. However, this is only one part of the solution. In Feb 2009 Central Govt. announced a new nationwide initiative to called the 'Integrated Action Plan' (IAP) aimed at dealing with the Naxalite problem in all affected states.

Causes of the Spread of Naxalism:

The cause spread Naxalism in India are structural. Economic, political and cultural dimensions are closely linked. The first is the economic situation which is exploited by Naxalites and their extreme left ideology. The spread of Naxalism is an indication of the sense of desperation and alienation that is sweeping over of large sections of our nation who have been not only systematically marginalized but cruelly exploited and dispossessed in their last homelands...the central Indian adiwasis have been described as “the original autochthonous people of India” meaning that their presence in India pre-dated the Dravidians, the Aryans and whoever else settled in this country... these are the real swadeshi products of India, in whose presence all others are foreigner. These are ancient people with moral rights and claims thousands of years old. They were here first and should come first in our regard... Unfortunately like indigenous people all over the world, the India's adivasis too have been savaged and ravaged by later people claiming to be more ‘civilized.

At the national level 45.86 percent of all adivasis live below the poverty line which means that almost half if India's original inhabitants go to bed every night starving. Several anthropometric studies have revealed that successive generations of adivasis are actually becoming smaller unlike all other people in India who benefit from better and increasingly nutritiousdiets...

Second, the alienation that is being exploited by the Maoists has social, communal and regional dimension. The battle can also be described between India's most neglected people and the nation's most powerful industrial businesses. The adivasis make up about 8.4 percent of the population and live in severe poverty. They live in remote areas where government administration is weak and there is a lack of government services. These indigenous peoplehave the lowest literacy rates in the country and highest rates of infant mortality.

Given this socio-economic alienation, it is easy to see how the Naxalite's ideology is popular among the rural poor and indigenous tribes, and why the adivasis view the guerrillas as their "saviours". The adivasis do not feel like they have any political power to voice their grievances legitimately, and therefore the alternative of subversive, illegal groups seem attractive.

Naxalite movement as the biggest threat

Former Director-General of the National Security Guard and C.R.P.F. Mr. Subramaniyam notes that Naxalism exists in these tribal areas because of the dissatisfaction of the people against the government and big businesses, the terrain is suitable for guerrilla tactics, and there is no existence of a proper and effective local administration mechanism. In these areas, the conditions are conducive to warfare and extremist ideologies. Even if Naxalites are simply exploiting the adivasis' situation for their own ends, their popularity indicates the power of the root causes to create such an environment for insecurity and violence.

The Naxalite threat is the biggest security problem for India's future as its effects are multi-layered. The Maoist movement highlights India's interior weaknesses, which makes India also vulnerable to external threats. As part of globalization, threats such as the Naxalite movement can no longer be viewed as simply internal as it also affects external security.

The security dangers are aptly described by a former Pakistani Director-General of the Inter-Services Intelligence and his description of India's foreign affairs. The Director-General equated India being busy with internal security problems to having two extra Divisions in the Pakistan Army for free. A nation cannot effectively withstand threats coming from outside itscountry if there is instability inside it. Furthermore, globalization has encouraged the emergence of non-state terrorist actors as well as international interference in each other's affairs. India has been one of the victims of international and state sponsored terrorism fuelled by fundamentalist ideologies. The Pakistani support for terrorist acts within India and the Jammu and Kashmir proxy war is an example of when it is critical that national security forces focus solely on eliminating external threats. Naxal group in India also have the symbiotic relationship with the communist party of Nepal.

Solutions

The complexity of the causes of the Naxalite problem as its implications both for internal and external security reflect a solution that is multi-dimensional and calls for a synergy between the central governments and the states. In order to comprehensively dissolve the Naxalite threat, the government has to address its root causes. Socio-economic alienation and the dissatisfaction with the widening economic and political inequality will not be solved by military force alone, which seems to be the main instrument employed by the government. The problem calls for a three-pronged solution: social and economic development, multi-lateral dialogue and military force.

Socio-economic development

As the Naxalites are fuelled by discontent from the marginalized and the poor, a larger percentage of the national budget must be allocated to addressing the needs of these regions. More of the national expenditure needs to be focused on developing these poorer regions through initiatives regarding health, education, social welfare and rural and urban development. Government service delivery should be improved in these tribal areas. Both state and government must ensure that things such as statutory minimum wages, access to land and water sources initiatives are implemented. Incoming up with strategies for national economic growth, the government must always bear in mind the possible effects of fast growth for all socio-economic groups in a country as large and diverse as India. If the social needs of these marginalized people are addressed, there will be no discontent to fuel the Naxalite's movements.

Dialogue

The Government should initiate sincere dialogue with these marginalized groups, the Naxalites and state leaders. The popularity of Naxalites with the adivasis is a reflection of the fact that the government has been unaware or "unapologetically indifferent to their plight". By communicating and starting a dialogue between these stakeholders, these groups will feel that they being listened to. By opening dialogue, the government can give opportunity for the rebels to join the mainstream by showing them that solutions can be created together with the government, by being part of the political system in a legitimate way. They no longer need to resort to violence to get the state's attention. For example, the former director-general of AP concluded that as a result of the ceasefire and dialogue with Maoists in 2004, the violence in the state decreased by 80-90 percent in the region. As David Pilling noted, the challenge for India's leaders will be to allow the necessary development in these poverty-stricken areas while acknowledging the rights of a neglected indigenous group.

Military

Currently, the main instrument employed by the government to address the Naxalite threat is the increasing use of the military. While some military force is still needed to combat against the Maoist guerrillas, it should not be the only solution. By only addressing the issue by brute force, government risks alienating civilians who are caught in the middle. Coercion of the state will only encourage people to rally against it.

Governance

The growing Naxalite insurgency also reflects a flaw in the federal structure. Because law and order is seen as a state responsibility, the central government is unable to be implementing a coherent national strategy to address the threat. The government has the overall responsibility of mobilizing development, but it cannot do so without the support of the states. The central government and the states need to cooperate together to solve the internal security threats and coordinate the implementation of this multidimensional approach. Both organizations must complement and support each

other's initiatives and strategies. Poverty, lack of land reforms, caste discrimination and oppression and denial of access to justice push the Dalits closer to the Naxals. The concentration of Dalit populations in the Naxalite affected areas in India is quite high.

Conclusion

To conclude, the Naxalite problem reflects underlying issues in the Indian social, economic and political institutions which threaten to expose India to even more danger from outside forces. While the Naxalite movement is mainly an internal threat, with globalization, external and internal security threats are inextricably linked. The complex and multi-faceted approach to solving the Naxalite issue also reflects the fact that this is the biggest menace to India's security in the future.

In conclusion I want to say that the government has proposed a threepronged strategy to combat Naxalism

1. Gain confidence of local people by taking up more welfare relatedactivities.

2. Build up infrastructure in naxal-affected areas and generateemployment.

3. Launch joint security operations with neighboring states to eliminateleft wing extremists.

Reference Books :

1. Robert W. Stern - Changing India-Bourgeois revolution on thesubcontinent-Cambridge University Press 1999.
2. Ram Chandra Guha – India after Nehru-Penguin Books 2010.
3. Rahul Pandita-Hello Bastar – The untold Story of India's MaoistMovement-Westland/Tranquebar Press 2011.
4. India Today and Outlook Magazines.
5. Various Newspapers.

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

स्तनपान शिशु का पहला टीका

पूर्णिमा कुमारी
शोध छात्रा
मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

शिशु के लिए माता का दूध अमृत तुल्य है। इसे प्राकृति ने केवल शिशु के लिए ही बनाया है। मां के दूध में वे सभी आवश्यक पौष्टिक तत्व मौजूद रहते हैं जो शिशु को वृद्धि विकास एवं पोषण के लिए निहायत जरूरी होते हैं। नवजात शिशु के लिए माता का दूध ईश्वर का वरदान है। जिसकी तुलना कभी भी किसी भी खाध वस्तु से नहीं की जा सकती है। माता का दूध हरेक शिशु का जन्मसिद्ध अधिकार है। इससे शिशु को कदापि वंचित नहीं करना चाहिए। 6 माह तक तो शिशु को आवश्य ही स्तनपान करवाना चाहिए। स्तनपान शिशु का पहला टीका होता है। जो शिशुओं को अनेक बीमारियों से लड़ने में शक्ति प्रदान करता है।

विशेषज्ञों के अनुसार शिशुओं के लिए मां का दूध प्राकृतिक इम्युनिटी बूस्टर के सामान सर्वोत्तम आहार है। साथ ही स्तनपान करना शिशु का मौलिक अधिकार भी है। मां का पहला पीला गाढ़ा दूध पौष्टिकता से भरपूर होता है। इसमें रोग प्रतिरोधक शक्ति होती है जो शिशुओं को जीवन भर रोगों से बचाती है, इस दूध यानी कोलेस्ट्रॉल को पहला टीका भी कहा जाता है। वही जो बच्चे मां के दूध से वंचित रहे, वे अलग-अलग बीमारियों से ग्रसित रहते हैं।

नवजात शिशु के पाचन अंग अत्यंत ही अपरिक्तव दशा में होते हैं। जो केवल माता के दूध को ही सरलता व सुगमता से पचा पाते हैं। हमें ईश्वरीय वरदान समझना चाहिए। जिसे भगवान ने केवल शिशु के लिए ही बनाया है। माता का दूध सभी प्रकार के जीवाणुओं और विषाणुओं एवं रोगाणुओं से सुरक्षित रखता है। तथा शिशु के लिए सदैव गुणकारी एवं लाभकारी होता है। माता के दूध पर पलने वाले शिशु को कब्ज की शिकायत नहीं रहता। यह ताजा, कीटाणु रहित, सदा उपलब्ध रहने वाला दूध परिष्कृति की कोई गुंजाइश नहीं है, मिलावट रहित गुर्दिय विलेय कम (Rehal Solute) स्वच्छ एवं सभी गुणों से भरपूर रहता है। अत: जहां तक संभव हो शिशु को स्तनपान अवश्य करना चाहिए।

स्तनपान बच्चों को जीवन में अच्छी शुरुआत प्रदान करता है। यह पोषण का सबसे अच्छा स्रोत है जो जीवन भर लाभ देने के साथ बच्चे के मानसिक विकास में भी सहायक है यह मां के साथ अपनत्व की भावना का विकास करता है। अगस्त माह के पहले सप्ताह में विश्व स्तनपान सप्ताह मनाया जाता है।

जन्म में एक घंटे के भीतर स्तनपान की शुरुआत करने तथा पहले छह महीने में बच्चे को सिर्फ मां का दूध देना बच्चे के लिए फायदेमंद होता है। छह महीने के बाद पूर्ण आहार शुरू करने और दो साल या उससे अधिक उम्र तक लगातार स्तनपान करने से संक्रमण के खिलाफ एक शक्तिशाली कवच तैयार बच्चों के लिए मस्तिष्क का विकास होता है, जो बच्चे ढंग से स्तनपान नहीं करते हैं, उनमें दस्त

और अन्य संक्रमणों का खतरा अधिक होता है ऐसे बच्चों को कुपोषण से पीड़ित होने और शिशुकाल में मृत्यु का खतरा बढ़ जाता है।

मां का दूध विटामिन, खनिज और अन्य पोषक तत्वों से भरपूर होता है। बच्चे के जन्म के तुरंत बाद प्राप्त होने वाला मां का गाढ़ा पीला दूध जिसे कोलेस्ट्रम भी कहा जाता है, नवजात शिशु के लिए आदर्श पोषण है, पोषक तत्वों एवं एंटीबॉडी से भरपूर, यह दूध बच्चे के लिए पहले टिके का काम करता है, यह बीमारियों के जोखिम को कम करता है, जिसमें कान के संक्रमण अस्थमा श्वसन संक्रमण दस्त उल्टी, बचपन का मोटापा और शिशुओं की अचानक मृत्यु सिंड्रोम भी शामिल है, स्तनपान बच्चे की बौद्धिक क्षमता में भी तीन से चार अंक तक की वृद्धि करता है।

बच्चे के जन्म के बाद स्तनपान माताओं को पूर्व, शारीरिक आकार प्राप्त करने में मददगार होता है साथ ही स्तन कैंसर, गर्भशाय कैंसर तथा टाइप- 2 मधुमेह के जोखिम को कम करता है। यह बच्चे के जन्म के अंतर को बनाए रखता है। अध्ययन से पता चलता है कि स्तनपान में निवेश किया गया प्रत्येक डॉलर अनुमानित तौर पर 35 डॉलर का आर्थिक लाभ प्रदान करता है, स्तनपान सभी रूपो में कुपोषण को रोकने में मदद करता है, मां का दूध प्राकृतिक नवीकरणीय और टिकाऊ संसाधन है, जो न तो कचरा पैदा करता है और ना ही प्रदूषण, नवजात शिशु का जीवित रहना, प्रारंभिक स्तनपान और जन्म के तुरंत बाद मां के साथ त्वचा से त्वचा के संपर्क पर निर्भर करता है, यह मां की ऑक्सीटोसिन के स्तर को भी बढ़ाता है। जो मां के दूध को बढ़ाने में मदद करता है। एनएफएचएस -5 (2019-21) तथा एनएफएचएस -4 (2015-16) के आंकड़ों का विश्लेषण करें तो बिहार पांच साल से कम उम्र के बच्चों में कुपोषण की दर को कम करने में सफल रहा है। इस आयु वर्ग के बच्चों में बौनापन में लगभग 22 प्रतिशत की तथा शुरुआत में लगभग 12 प्रतिशत की कमी आई है। छह महीने से कम उम्र के बच्चों में विशेष स्तनपान दर में भी सुधार हुआ है। एनएफएचएस -4 में यह 65 प्रतिशत था, जो बढ़कर 76 प्रतिशत हो गया है। 2015-16 में 62 प्रतिशत की तुलना में अब लगभग 76 प्रतिशत संस्थागत प्रसव होता है। हालांकि कुछ प्रसव स्वास्थ्य केंद्रों में कराया जाता है, लेकिन पांच में से केवल एक बच्चे को ही घंटे भर के भीतर मां का दूध मिल जाता है।

छह महीने में शिशु के पोषक तत्वों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पुरथक खाध पदार्थ की आवश्यकता होती है, लेकिन बिहार में 6 - 8 महीने के 61 प्रतिशत बच्चों को ठोस । अर्थ ठोस, भोजन और मां का दूध नहीं मिलता है, ज्ञान और जानकारी की कमी पारंपरिक प्रथाएं तथा देखभाल सुविधाओं के अभाव के चलते जन्म के बाद प्रारंभिक स्तनपान का पर्याप्त चलन नहीं हो पाया, शुरुआती दिनों में कई माताएं स्तनपान के तरीके सीखने के लिए भी संघर्ष करती है, सफल स्तनपान अभ्यास को बढ़ावा देने के लिए उचित परिवेश और विशेषज्ञ निर्देश की आवश्यकता होती है, बच्चों को जीवन में सर्वोच्च संभव शुरुआत देने के लिए माताओं को अपने परिवारों स्वास्थ्य पेशेवरों, नियोक्ताओ और सरकार से सहयोग व प्रोत्साहन की आवश्यकता होती है। स्वास्थ्य पेशेवरों जैसे कि परामर्शदाता, नर्स तथा डॉक्टर माताओं एवं बच्चों स्तनपान कराने में मदद कर सकते हैं। महिलाओं को सटीक जानकारी, परामर्श, घरों में एक चिकित्सा केंद्रों तथा कार्यस्थल पर सहयोग प्रदान करने की जरुरत है, ताकि वे आत्म विश्वास के साथ कहीं भी बच्चों को स्तनपान करा सके, हमें एक स्वस्थ वातावरण को बढ़ावा देना चाहिए तथा घर एवं कार्यस्थल दोनों जगहों पर उनकी सहायता करनी चाहिए। स्तनपान एक मां के

द्वारा खुद को अपने बच्चे को और दुनिया को दिया जाने वाला एक सर्वोत्तम उपहार है, इसकी तुलना बच्चों को ही दी जानी वाली किसी भी दूसरी सुविधा और उपहार से नहीं की जा सकती है, क्योंकि यह अनमोल है।

जिला स्वास्थ्य समिति के आंकड़ों के अनुसार पटना के शहरी क्षेत्र की तुलना में ग्रामीण महिलाएं बच्चों को स्तनपान ज्यादा करा रही है। 2017-18 के आंकड़ों के अनुसार मसौढ़ी, विक्रम, बख्तियारपुर, पंडारक, बाढ़ और बिहटा प्रखंड की महिलाएं स्तनपान कराने में 95 से 100 प्रतिशत लक्ष्य हासिल की है। पंडारक में 1044 बच्चों के जन्म 1013 ऐसी महिलाएं हैं, जो पहले घंटे में अपने शिशुओं को स्तनपान कराई है, कमोवेश यही स्थिति अन्य प्रखंडों का है, समिति की रिपोर्ट के अनुसार 91 से 98 प्रतिशत बच्चे को पहले घंटे में स्तनपान कराने वाले प्रखंडों की संख्या 7 है। जबकि शहरी क्षेत्र 71 प्रतिशत ही महिलाएं बच्चों को पहले घंटे में दूध पिला रही है। हम यह कह सकते हैं कि पटना के शहरी क्षेत्र में कम और गांव में स्तनपान ज्यादा महिलाएं करा रही है।

स्तनपान से शिशु में सुरक्षा का भाव (Felling of Security) आता है तथा माता में भी एक प्रकार की संतुष्टि आती है जिससे मां-बच्चों में प्रेम का संचार होता है। जब माता शिशु को गोद में लेकर प्रेम पूर्वक स्तनपान करवाती है तो न केवल इस में शिशु का पेट ही भरता है अथवा पोषण ही होता है, बल्कि उसका हृदय तृप्त, मस्तिक प्रफुल्लित मन में तृप्ति एवं रोग-रोग में प्यार का संचार होता है। फलत: उसका अंग-अंग पुष्ट होता है। जब मां शिशु को अपने गोद में लेकर स्तनपान करवाती है। तो उसके हृदय में शिशु के प्रति प्यार दुलार एवं ममत्व उमड़ता है। वह भीतर ही भीतर वत्सहृय प्रेम से पुचकारती है। सिर पर हाथ फेरती है तो शिशु की नजरें भी स्वत: ही मां की और नली जाती है। इससे शिशु को मानसिक तृप्ति, सुख, संतोष, खुशी एवं उल्लास होता है। उसका कोमल हृदय संतुष्ट एवं मस्तिक उत्तफुल्ल हो जाता है। फलत: ऐसा बालक आगे चलकर सुयोग कर्मठ, निष्ठावान, परिश्रमी एवं सुसंस्कारित नागरिक बनता है। जिससे परिवार, समाज, देश एवं विश्व को लाभ पहुंचाता है। इसलिए माता का दूध सभी प्रकार से बालक के लिए फायदेमंद है।

परंतु कुछ विशेष परिस्थितियों में जब माता अत्यधिक कमजोर एवं निर्मल है अथवा भयंकर रक्त अल्पता से पीड़ित है अथवा संक्रामक रोगों से ग्रस्त है तब उस परिस्थिति में शिशु को स्तनपान नहीं करवाना चाहिए। जब मां लम्बी बीमारी जैसे:- टाइफाइड (Thphoid) तपेदिक (T.B) पोलियो(Jaundice) कैंसर(cancer) मलेरिया (malaria) डायरिया (diarrhea) गुर्दे की बीमारी (Renal Disease) मुच्छी रोग (Epilepsy) पागलपन (Dementia) या से तीव्र ज्वर से पीड़ित है। तब शिशु को स्तानपान नहीं करना चाहिए। यद शिशु जन्म के बाद माता पुन: गर्भधारण करती है या बाहर नौकरी करने पुरा दिन जाना पड़ता है तो ऐस परिस्थिति भी वह स्थान पर नहीं करवा शक्ति है परंतु याद माता स्वस्थ है हर हाल में शिशु का शिशु को स्तानपन करवाना ही चाहिए।

माता के दूध के उत्पादन की मात्रा के खान-पान, व्यायाम, अराम तथा मानसिक तनाव से मुक्ति पर निर्भर करती है। कोलेस्ट्रम (colostrm) में इमुनोग्लोबुलिन (Immumglobulins) की मात्रा दूध की अपेक्षा अधिक होती है। जो शिशु को विभिन्न सूक्ष्म, जीवाणुओं- विषाणुओं के संक्रमण से रोकता है तथा रोगों से रक्षा करता है। इसमें रोगों से लड़ने की शक्ति होती है। अत: प्रसव के पश्चात माता के

स्तन से निकलने वाले इस पीले पदार्थ की आवश्य ही शिशु को पिलाना चाहिए। लोगों को भ्रांति कि प्रारंभ के दिनों में स्तन से निकलने वाला स्त्राव को शिशु को नहीं पिलाना चाहिए। क्योंकि यह सुपाच्चा नहीं है और शिशु इसे नहीं पचा सकेगा। परंतु आज वैज्ञानिक शोधों से यह प्रमाणित हो गया है कि कोलोस्ट्रम में अद्भुत रोग प्रतिरोधक क्षमता विधमान रहता है। जिसके पीने से शिशु में रोग -प्रतिरोधक क्षमता बढ़ता है। साथ- ही- साथ यह कई पाचक एन्जाइम्स का निर्माण करता है। दस दिनों के बाद यह गाढ़ा पीला स्त्राव धीरे-धीरे पूर्णत: दूध में परिवर्तित हो जाता है ।

संदर्भ सूची:-

(1) आहार विज्ञान एवं पोषण- लेखक डॉ वृंदा सिंह, पृष्ठ संख्या 504,505,506
(2) बाल, मनोविज्ञान बाल विकास:- लेखक- डॉ0 डी एन श्रीवास्तव, डॉ प्रीति वर्मा, पृष्ठ संख्या- 141
(3) दैनिक जागरण 6 सितंबर 2019
(4) शोक मीमांसा 2018 , पृष्ठ संख्या- 160
(5) आहार एवं पोषण- लेखक वर्मा एवं पांडे पृष्ठ संख्या-205
(6) इंटरनेट- गूगल
(7) प्रभात खबर सितंबर 2018 ।

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

बच्चो के शारीरिक विकास में आहार की भूमिका

वैदेही कुमारी
शोध छात्रा
गृह विज्ञान विभाग
तिलका माँझी विश्वविद्यालय, भागलपुर

बच्चो के विकास में शारीरिक विकास सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि शरीर ही सभी क्षमताओ और योग्यताओं का आधार होता है। मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार की क्षमताएँ, शरीर के विकास से अटूट रूप से संबंधित है। इसलिए व्यक्तित्व के विकास के लिए बच्चों के शरीर के विकास को जानकारी जरूरी है। सामान्य शारीरिक विकास पर ही, सामान्य मानसिक और व्यवहार संबंधित विकास निर्भर करता है। सामान्य शारीरिक स्वास्थ्य के बने रहने परसमय–समय पर निर्धारित क्षमताएँ और व्यवहार में भी परिवर्तन आता जाता है। शारीरिक विकास निश्चित प्रतिमान होता है। हर बच्चे में प्रतिमान समान नही होते है।परन्तु फिर भी हरेक बच्चों के विकास का एक निश्चित नमूना होता है। जिस पर विकास अपने स्वभाविक रूप से चलता रहता है। और आगे की ओर बढ़ता जाता है। विकास के लिये उस विभिन्न सोपनो से गुजरना पड़ता है। बच्चे का शारीरिक विकास से प्राप्त करता है। जिस पर उसके तनमन का भावी विकास और अभिवृद्धि की सम्भावनाएं निहित है। परिपक्वता के दौरान शरीर में जो भी परिवर्तन होते है। वे सब प्रकृतिक अभिवृद्धि होते है और स्वस्थ जन अभिवृद्धि वातावरण से प्रभावित होती है। विकास की गति लड़के–लड़कियों में अन्तर होती है।

बच्चों के शारीरिक विकास में आहार की अहम भूमिका होती है। संतुलित आहार देने से बच्चों का शारीरिक विकास सही होता है। वही आवश्यक पोषक तत्वों की कमी से विकास में अवरोध पैदा होता है। इसके लिए बच्चों की संतुलित आहार देना चाहिए। संतुलित आहार लेने से शरीर को सभी आवश्यक पोषक तत्वों की प्राप्ति होती है। इससे बच्चों का संपूर्ण विकास होता है। साथ ही बच्चे का दिमाग भी तेज होता है। अगर बच्चों को सही मात्रा में पोषक तत्व ना दिया जाये तो उसका शारीरिक विकास प्रभावित होगा।

बच्चों को यदि अयुक्त मात्रा और उपयुक्त प्रकार का आहार उसकी शारीरिक आवश्यकता अनुसार मिलता रहे तो उसकी विवृद्धि सामान्य ढंग से चलती रहती है। जब विवृद्धि की गति तीव्र होती है। तो बच्चों को अधिक मात्रा में और अधिक पोषक आहार की आवश्यकता होती है, अध्ययनों में यह देखा गया है कि यदि बालक की आहार सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूर्ति नही होती है तो शारीरिक विकास में बाधाएं उत्पन्न हो जाती है। दोषपूर्ण और कम आहार के कारण बालन की लम्बाई अवरुद्ध हो सकती है। उसका शारीरिक ढाँचा छोटा रह जलता है। कुछ अध्ययनों में यह भी देखा गया है कि यदि बालक की उपयुक्त पोषण तत्वों से युक्त आहार प्राप्त नहीं होता हो तो उसमें अनेक असामान्य लक्षण उत्पन्न हो जाते है। वह चिड़चिड़ा (Irritable) हो

सकता है।वह अपने कर्तव्य के प्रति लापरवाह हो सकता है। वह खेल में कम रुचि ले सकता है और यह भी हो सकता है कि उनका सामाजिक समायोजन बिगड़ जाता है।

शिशु का जन्मपूर्व शारीरिक विकास पूरी तरह से माँ पर निर्भर करता है। परन्तु जन्म के उपरान्त उससे शारीरिक विकास पर जैविकिय कारणों का प्रभाव पड़ता है। जैविकिया इम प्रकार हैं।

(1) अन्तःस्तवी ग्रन्थियाँ (जैसे– अवटुका परावटुका, पीयुषिका, अधिवृक्क हिंग, अग्नयाशय बालग्रंथि)।

(2) आहार एवं पोषण।

(3) बच्चे के स्वास्थ।

शरीर की ग्रंथियों की सामान्य क्रियाशील नवजात शिशु के विकास को उत्तरोतर आगे बढ़ाने के लिए जरुरी है। तीनों जेविकिय कारणों में से सबसे ज्यादा प्रभावित बच्चों के शारीरिक विकास पर करते हैं। वे है बच्चे का आहार एक पोषण। शिशु का आहार अच्छा रहता हो ही बच्चे के शारीरिक विकास की गति तीव्र होती है शैशवावस्था में स्वास्थ्य की देखभाल का भी बहुत अधिक महत्व है। रोग, बिमारी से बचाव भी इसीके अन्तर्गत आता है। बच्चों को समय पर टीके लगाना, इसी की देख रेख में शामिल है। नींद विश्राम, स्वच्छता, सफाई, खुली हवा, धूप, प्रकाश, उचित वस्तु आदि भी इसके अन्तर्गत आते है। शिशु के शारीरिक विकास पर उसके सभी अन्य पक्षीय विकास निर्भर करते हैं। यह बात स्वत इसके महत्व पर प्रकाश डालती है।

गर्भवती माता का गर्भावस्था के प्रारंभिक और आखिरी दिनों में लिया हुआ पौष्टिक आहार बच्चे के विकास को प्रभावित करता है। यदि मां गर्भावस्था के दौरान संतुलित, पौष्टिक आहार लेती है। उसका बच्चा भी स्वस्थ होगा। दूसरी ओर, यदि गर्भवति माँ का आहार उपयुक्त नहीं होता है। या वह धूम्रपान, मदिरापान या मादक द्रव्यों की आदि है तब उसके बच्चे के शारीरिक विकास पर कुप्रभाव पड़ता है।

यदि नवजात शिशु के बाह्य अँगों के विकास को देखा जाये हो पता चलता है कि जन्मोपरान्त प्रथम वर्ष में कंकालीय विकास बड़ी तेजी से होता है। इसके अन्तर्गत की वृद्धि, संख्या, रचना तथा आकार में अन्तर आता है। शिशु की अस्थियां कोमल और लचीला होती है। नवजात शिशु के शरीर में 270 अस्थियां होती है। 3 से 4 वर्ष में ये 350 हो जाती है। अब ये कुछ करी भी हो जाती है। किशोरावस्था के आसपास जब शरीर परिपक्वता प्राप्त करता है। तब बहुत– सी हड्डियाँ आपस में जुड़ जाती है और अब कुल संख्या 206 हो जाती है। नवजात शिशु जब लगभग 18 माह का होता है तब उसकी कपाल की अस्थियां आपस जुड़ जाती है। जन्म समय शिशु की औसत लंबाई 22 इंच होती है। इसके भी वृद्धि शुरू हो जाती है।

4 माह में लगभग 24 इंच, 8 माह में 26–28 इंच तथा 01 वर्ष मे 28–30 इंच हो जाती है। 2 वर्ष में 40 इंच तथा 12 वर्ष में 55 इंच हो जाती है। शिशु का वजन जन्म के समय औसत रूप से 7 पौंड (अर्थात 305 किलोग्राम) होता है। एक सप्ताह मे वजन कुछ कम होता है। जन्म के बाद पहले पांच महीनों में वजन में तेजी से वृद्धि होती है। 4 माह में वजन 14 पौड

अर्थात जन्म से दुगुना हो जाता है। 8 माह 16–19 पौड तथा 01 वर्ष में 21 पौंड अर्थात, जन्म से तीन गुना हो जाता है। 6 वर्ष की आयु पहुंचते–पहुंचते जन्म से पाँच गुना अधिक अर्थात 35–40 पौंड हो जाता है। 12 वर्ष में 85 से 90 पौंड हो जाता है। बच्चे का वजन उनकी लम्बाई और मोटाई से भी प्रभावति होता है। दाँतों के विकास की प्रक्रिया गर्भकाल के पांच महीने से शुरू हो जाती है। औसत छठें माह के आस–पास दाँत निकालना आरम्भ हो जाता है। ऊपरी दाँतों की अपेक्षा, निचले दाँतों पहले निकलते हैं। इन्हें दूध के दाँत कहते है। ये संख्या में 20 होते है। 6 वर्ष की अवस्था तक अस्थाई दाँत गिरने लगते है तथा 14 वर्ष की आयु तक 28 स्थाई दाँत निकल आते हैं। अन्तिम 4 दाँत 17 से 25 वर्ष की आयु के बीच निकलती है।

शिशु के सही आहार पर ही लिए शिशु के वजन, लम्बाई, चौडाई, दाँत निकालनी सब आहार पर ही निर्भर करता है। यदि शिशु की सही आहार सभी समय पर ना मिले तो शारीरिक विकास प्रभावित होता है।

शिशु के शरीर का अनुपात वयस्क शरीर से भिन्न होता है। उसके शरीर के भी अवयव एक साथ परिपक्व नहीं पाते है। कुछ जल्दी बढ़ते है। कुछ देर से तैयार होते है। लगभग 17–18 वर्ष की आयु तक सभी शारीरिक अवयव एक निश्चित अनुपात में, परिपक्व हो जाते हैं। जन्म के समय सभी अवयव आकार में छोटे रचना की में कोमल तथा नरम होते है। इसमें धीरे–धीरे ही वृद्धि और विकास होता है। नवजात शिशु का सिर सम्पूर्ण शरीर की तुलना मे ज्यादा बड़ा रहता है। प्रथम दो वर्ष मे सिर का विकास तेजी से होता है। 15–16 वर्ष तक यह पूर्ण विकसित होता है। प्रौढ़ावस्था तक पहुँच कर यह जन्म से तिनगुना हो जाता है। नवजात का चेहरा सिर को देखने के बाद कुछ चौड़ा हो जाता है। नासिका के कटिलेज में विकास होता है। जिसकी वह सुडौल लगने लगती है। 13–14 वर्ष तक नाक का पूर्ण विकास हो जाता है। किशोरावस्था में माथा चौड़ा और चपटा हो जाता है। ओठ भरे और उभरे हो जाते है। धड़ का विकास, सिर की अपेक्षा धीमी गति से होता है। 6 वर्ष की अवस्था तक घड़, जन्म से दोगुणा हो जाता है। नवजात का पक्ष गोलाकार, गर्दन छोटी कंधे ऊंचे रहते है। किशोरावास्था आने तक धड़ की लम्बाई जन्म से तिगुनी हो जाती है। अब वक्ष चौड़ा गर्दन लम्बी और कंधे झुके होते हैं। नवजात शिशुके हाथ–पैर कोमल होते हैं। अंगुलियाँ, पतली छोटी और बड़ी ही नरम होती है। जन्म के समय बच्चे की टाँगे, बाहों की तुलना में बहुत छोटी होती है और मुड़ी रहती है। लम्बाई में बढ़ने के साथ–साथ वे सीधी होती जाती है। 2 वर्ष तक टांगों का विकास, हाथों की अपेक्षा बीमा होता है। 8 से 16 वर्ष की आयु में बाँहों का विकास धीमा हो जाता है। साथ ही टाँगों का विकास तीव्रता पकड़ता है। किशोरावस्था में पैर की लम्बाई, जन्म से चौगुनी हो जाती है। टांगों और अन्य अंगो की लम्बाई बढ़ने के साथ–साथ पेशियों का विकाश भी तेजी से होने लगता है।

नवजात के शरीर में आन्तरिक अंगों का बनना विकसित होना और सक्रिय हो जाना, जन्म के पूर्व ही हो जाता है। तांत्रिका तंत्र का निर्माण तो जन्म के पूर्व ही हो जाता है। तथा जन्म के समय तक सभी तंत्रिका कोशों का निर्माण हो चुका रहता है। जन्म के बाद इनमें विकास होता है। जन्म के 3 वर्ष से वर्ष में मस्तिष्क स्थित उच्च केन्द्रों द्वारा संचालित होते हैं। जन्म के बाद विकास कुछ धीमा पड़ जाता है।

16 वर्ष की आयु तक मस्तिक विकास की गति पुनः बढ जाती है। जन्म के समय मस्तिष्क का भार 350 ग्राम होता और परिपक्व होते–होते यह 1260 से 1400 ग्राम हो जाता है। शिशु का अमाशय नालिका के समान आकार का और स्थिति में तिरछा रहता है। फलस्वरूप कुछ ग्रहण करने के बाद शीघ्र खाली हो जाती है। इसके बाद उसमे वृद्धि होनी शुरू हो जाती है। बच्चों की आंते छोटी और कोमल होती है। उनसे पाचक रस कम मात्रा में निकालते है। आयु के साथ पाचक रसों के निर्माण में वृद्धि होती है। नवजात शिशु के फेफडे छोटे होते है। अतः वह जल्दी जल्दी साँस लेता है। आयु के साथ–साथ इनका आकार बढने लगता है। किशोरावस्था तक साँस लेने की क्रिया कुछ धीमी, साँस कुछ गहरी और नियमित हो जाती है। 17 से 18 वर्ष तक श्वसन अंग पूरी तरह से विकसित हो जाते हैं। श्वसन क्रिया प्रति मिनट 35 बार होती है। नवजात शिशु का हृदय छोटा होता है। धमनियाँ अपेक्षाकृत बड़ी होती है। अतः शैशवास्था में रक्त चाप कम रहता है। हृदय को, छोटा रहने के कारण, व्रत की जल्दी–जल्दी पम्प करना पड़ता है जिससे नाड़ी की गति तेज होती है। जन्म के समय नाडी की गति 136 से 140 रहती है। 3 वर्ष में 100 से 120 प्रतिशत 6 वर्ष मे 90 से 100 तथा 7 से 14 वर्ष में 85 व 90 तथा 15 से 21 वर्ष की आयु में 60 से 70 हो जाती है। आयु बढ़ने के साथ हदय के आकार में वृद्धि होती है। धमकियों की चौड़ाई के अनुपात में कभी होने के कारण रक्तचाप कुछ बढ़ जाता है और नाड़ी की गति कम होने लगती है। किशोरावास्था में हदय पेशियाँ आकार और संख्या में बढ़ जाती है और अधिक शक्तिशाली हो जाती है। शुरू में हृदय की धड़कन में अस्थिरता रहती है। परन्तु धीरे–धीरे स्थिरता आती जाती है। जन्म के समय पेशी तन्तु अविकसित रहते है। वैसे इनका निर्माण जन्म से ही शुरू हो जाता है। जन्म के बाद इन्ही तन्तुओं का विकास होता है। पेशियों के विकसित होने के साथ–साथ भीतरी अंगों के वजन में वृद्धि होती है। शैशवकाल की पेशियों बड़ी कोमल होती है और हड्डियों के साथ चिपकी रहती है। इनमें ठोस अंश कम रहता है। आयु बढ़ने के साथ–साथ इनका ठोस अंश बढ़ता जाता है और इसी वजह से पेशियां सुद्धा होती जाती है। उनमें शक्ति आने के साथ–साथ बच्चे के अंगों की क्रियाशीलता भी बढ़ती जाती है। नवी तन्तु भी बढ़ते है। प्रारम्भ में यह तेजी से बढ़ते है। परन्तु चार वर्ष के बाद कुछ–कुछ घटने लगते है। आयु बढ़ने पर तन्तु की मात्रा अनुवंशिकता और आहार दोनों पर निर्भर करती है।

लेकिन आहार शारीरिक विकास में अधिक महवपूर्ण है। किशोरावास्था के दौरान लिए गए आहार जिसका स्वास्थ्य पर शारीरिक विकास पर क्षमता पर आजीवन अतर रहता है। बच्चों के शारीरिक विकास में आहार की अहम भूमिका होती है। संतुलित आहार देने से बच्चों का विकास सही से होता है वहीं आवश्यक पोषक तत्व की कमी से शारीरिक विकास में अवरोध पैदा होता है। इसके लिए बच्चो को संतुलित पोष्टिक आहार है। संतुलित आहार लेने से शरीर को सभी आवश्यक पोषक तत्वो की प्राप्ति होती है। इससे बच्चे का संपूर्ण विकास होता है। साथ ही बच्चे का दिमाग भी तेज होता है। अगर आप बच्चे के संतुलित आहार सही समय ना दिया जाये तो इसका असर जीवन भर शारीरिक विकास पर पड़ता है। भोजन मनुष्य की भूख को शान्त करता है। शारीरिक प्रक्रिया के उपरान्त व्यक्ति को भूख का अनुभव होता है। हमारा पाचन तन्त्र मस्तिक तक यह संदेश भेजता है। कि हमे शारीरिक कार्यों हेतु आहार लेने की आवश्यकता है। मस्तिक इस संदेश की पहचान भूख के रूप में कर लेता है। तदोपरान्त हमारे शरीर में भूख का तीव्र अनुभव होता है।

संतुलित आहार अनेक रोगो और संक्रमण को रोकने में सहायक होता है। इसमें मौजूद पोषक तत्व रोगों से लड़ने की शक्ति प्रदान करते हैं। यह मनुष्य के शारीरिक, मानसिक क्षमताओं और स्मरण शक्ति में भी वृद्धि करता है। संतुलित आहार आयु और लम्बाई के मुताबिक उचित शारीकि विकास को बनाए रखने में काफी सहायक होता है।

संदर्भ सूची :

(1) गृह विज्ञान (बिहार विधालय परीक्षा समिति) +2 ले० अंजु चौहान, पृ० स० 3, 4

(2) बाल मनोविज्ञान, बाल विकास ले० डॉ०डी० एन० श्रीवास्तव एवं डॉ० प्रीति वर्मा, पृ० स0– 159, 160,161

(3) शोध मीमांसा, शोध पत्रिका (2018) पृ० स०–162

(4) त्रिपथगा शोधा पत्रिका, पृ०स०– 84, 85, 86, 87

(5) गृह लक्ष्मी मासिक पत्रिका (2014) पृ० स०– 20

(6) नौटियाल, डॉ० जयप्रकाश (2007) बाल विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ० स० 105

(7) मातृकला एवं बाल विकास, ले० वर्मा एवं पान्डेय, पृ० स०– 25,26

(8) मेरी सहेली, मासिक पत्रिका, पृ० स० 10, 11,

(9) इंटरनेट (गूगल)

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

सामाजिक चेतना वाले दो आरम्भिक उपन्यासकार

प्रो0 अशोक सिंह

कुलपति, संत गहिरा गुरु विश्वविद्यालय, सरगुजा, अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़

हिन्दी उपन्यासों की मौलिक रचना होने से पूर्व हिन्दी मे बांग्ला उपन्यासो के अनुवादों को लोकप्रियता मिल चुकी थी। 1871 से पूर्व बांग्ला में सामाजिक और ऐतिहासिक दोनो प्रकार के अच्छे उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे। हिन्दी में कुछ तिलस्मी व ऐयारी उपन्यास लिखे गये। ऐयारी उपन्यास लिखने वाले देवकीनंन्दन खत्री (1861–1913) का नाम प्रमुख है। ये प्रेमचन्द्र युग के मुख्य उपन्यासकार है इनके उपन्यासो की धूम सर्वसाधारण में रही।

1. चन्द्रकान्ता – 1890–91
2. नरेन्द्र मोहिनी – 1893
3. वीरेन्द्र वीर – 1895
4. कुसुम कुमारी – 1899
5. चन्द्रकान्ता संतति – 1899 (चौबीस भाग)
6. काजर की कोठरी – 1902
7. अनूठी बेगम – 1905
8. गुप्त गोदना – 1906
9. भूतनाथ – 1906 (प्रथम छःह भाग) शेष भाग इनके पुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री ने पूरा किया।

तिलस्म का अर्थ : अद्‌भुत आश्चर्य जनक कल्पना।

ऐयार का अर्थ : चालाक, वेग से चलने वाला, दूर तक दौडने वाला।

ऐसे उपन्यास जिसमे इन सब घटनाओं का वर्णन होता है उसे ऐयारी व तिलस्मी उपन्यास कहते है। ये उपन्यास जनता मे खूब प्रचलित हुए। इसमे रहस्य रोमांच प्रिय सस्ती कल्पना का पुट मिलता है। प्रायः कोई सुन्दरी राजकुमारी किसी रहस्यमयी तिलस्मी इमारत मे कैद हो जाती थी, उसका प्रेमी राजकुमार अपने हरफनमौला ऐयार की सहायता से तिलस्म तोड़कर उसका उद्धार करता था। तिलस्मी चन्द्रकान्ता की ऐसी घूम मची कि इसको पढ़ने के लिए न जाने कितने ऊर्दू जानने वाले को हिन्दी सीखना पड़ा। इससे सामान्य जनता में हिन्दी की लोकप्रियता बढ़ी और उपन्यास का पाठक वर्ग तैयार हो गया।

ऐसे उपन्यासों का मूल आधार फारसी कृति तिलस्म होशरूबा है। शिल्प और भाषा की दृष्टि से इन्होंने सुघटित एवं सही कथानकों की रचना की थी। पाठक की कुतूहल वृति इतनी रहती थी कि उपन्यास के जादू मे बधा रहता था। उपन्यास लेखक और पाठक की प्रवृत्ति कुतूहल, रहस्य, रोमांच के माध्यम से मनोरंजन करने की रही है। नयी–नयी चौकाने वाली

घटनाओं की सृष्टि करके कथा मे रोचकता लायी जाती थी। रहस्यमयी अद्‌भुत घटनाओं को श्रृंखलावद्ध करके एक अपरिचित संसार मे पाठको को भटकाते रहना इनका लक्ष्य रहा है। इसमे लेखक का कौशल इस बात मे रहता है कि वह पाठको की जिज्ञासा वृत्ति को जगाये रखे। खत्री जी इसमे पर्याप्त सफल रहे। पाठक आगे की घटना को जानने के लिए इतना बेचैन रहता है कि उसका मन कही नही लगता है। लेखक एक प्रकरण को ऐसे बिन्दु पर अधूरा छोड़ता है कि पाठक आगे क्या हुआ जानने के लिए बेचैन हो जाता है। इसी बीच दूसरी कथा का प्रकरण प्रारम्भ कर देता है। बाद में अमानवीय और अलौकिक घटनाएं नहीं है। ये उपन्यास ऐतिहासिक नही है फिर भी ऐतिहासिक वातावरण उत्पन्न किया गया है। इनकी भाषा मे साधारण हिन्दी का प्रयोग किया गया है। संस्कृत, अरबी, फारसी शब्दावली से बचा गया है। इसमे किस्सागोई शैली/दास्तान शैली अपनाई गयी है। इसलिए पात्रों के चरित्र पूर्व निर्धारित है। पाठकों को पात्रों, घटनाओं एवं दृश्यों का वर्णन स्वयं लेखक ही देता है। कल्पना का प्रयोग किया गया है। पात्रों के नाम उनके गुण के अनुरूप रखे गये हैं। लेखक ने यथा नाम तथा गुण का ध्यान रखा है। जैसे,

वीरेन्द्र सिंह – वीरता एवं पराक्रम।

चन्द्रकान्ता – चन्द्रमा के समान सुन्दर।

तेज सिंह – अपने नाम के अनुरूप तेज।

चपला – चपल एवं तेज थी।

क्रूर सिंह – क्रूर हृदय का था।

इन्होंने सामाजिक यथार्थ व समस्याओं को लेकर गम्भीर उपन्यास नहीं लिखा। लगता है जीवन के यथार्थ को कला में ढालने का वातावरण नहीं था। सामाजिक जीवन के यथार्थ का वर्णन छायावादयुगीन कथा साहित्य में मिलता है। जिसकी पृष्ठभूमि सामाजिक उपन्यासों में मिलती है। सामाजिक उपन्यासों में सुधारवादी जीवन दृष्टि मिलती है। ये सब उपन्यास पाठकों की कुतूहल वृत्ति को उत्पन्न कर उसे मनोरंजन के माध्यम से सन्तुष्ट करने वाले थे या तो उपदेशात्मक बातें प्रकट कर के वर्णनीय समस्या की जटिलताओं में उतरे बिना सीधे–सीधे पाठकों को उपदेश देने का काम करते थे।

तत्कालीन परतंन्त्र समाज में उपन्यास पढ़ने–पढ़ाने की कल्पना करना कठिन था। भारत की जनता भूख एवं समस्याओं से त्रस्त थी। वह हमेशा अपनी पीड़ा से परेशान रहती थी, उपन्यास या साहित्य पढने मे किसी का मन नहीं लगता था। ऐसी बातों को खत्री जी जानते थे, तिलस्मी व अद्‌भुत घटना को विषयवस्तु न बनाते तो इतना बड़ा पाठक वर्ग मिलता ही नही। और जब पाठक ही नही रहेगा तो उपन्यास या साहित्य का क्या मतलब है ? इन ऐयारी तिलस्मी उपन्यासों द्वारा आगे के रचनाकारों के लिए पाठक वर्ग तो आसानी से मिल गया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की तरह देवकीनन्दन खत्री जनता को पहले पढ़ना सिखा रहे थे। उसमें रूचि उत्पन्न करने का काम यही उपन्यास ही किये। हरिश्चन्द्र जी भी जानते थे कि इस अशिक्षित जनता को नाटक के माध्यम से ही कोई बात बताई जा सकती है इसलिए उन्होने श्रव्य–दृश्य माध्यम का सहारा लिया।

इसी पृष्ठभूमि में हिन्दी जगत के मूर्धन्य उपन्यासकार का अवतरण 1880ई0 में वाराणसी के लमही में हुआ। ये सामान्य आर्थिक पृष्ठभूमि के थे। पिता डाक विभाग में साधारण लिपिक थे। इनकी माता प्रायः अस्वस्थ रहती थी। नौकरी ही परिवार की जीविका का साधन था। गाँव में

रहने के बावजूद भी इनके पास कृषि भूमि न थी। पाँच वर्ष की अवस्था में माता तथा चौदह वर्ष की अवस्था में पिता का प्यार इनसे छिन गया। जीवन निर्वाह कठिन था। स्नातक तक शिक्षा ग्रहण कर ये अध्यापन का कार्य करने लगे तत्पश्चात् ये प्रोन्नत होकर विद्यालय उप निरीक्षक हो गये। इनकी प्रथम रचना 'जमाना' नामक ऊर्दू पत्र में 'अनमोल रत्न' नाम से छपी। ये लेख उपन्यास, कहानियां आदि लिखते रहे। इन्होंने 'हंस' पत्रिका के सम्पादन के साथ–साथ साहित्यिक आन्दोलन को भी बढ़ाने का कार्य किया। प्रगतिशील लेखक संघ के सभापति चुने गये। इनके रचना संसार का मुख्य विषय जीवन संघर्ष है। सामान्य जनता का दुःख दर्द इन्होंने लिखा, वही इनके लेखन का मुख्य विषय बन गया। इन्होंने समाज के साथ व्यक्ति के एकीकृत होने के प्रश्न को भी महत्व दिया। ऊर्दू के होते हुए हिन्दी में आकर ग्रामीण जीवन से सहज सम्पर्क के कारण इन्होने सामान्य बोल–चाल की भाषा में रचना किया। इनका कथा साहित्य उस समय के अन्य लेखकों के कथा साहित्य में अग्रणीय है। इनके कथा में वैविध्य और जीवन चेतना का आधिक्य रहता है। मुंशी प्रेमचन्द्र जी ने उपन्यास व कहानी विधा को अभूतपूर्व व्यापकता एवं गम्भीरता प्रदान की। व्यापकता का मतलब समाज के सभी श्रेणियों के पात्र लिये गये। गम्भीरता का मतलब कथानक का अन्त करने को कोई जल्दी नहीं थी।

राष्ट्रीय आन्दोलन में मोहनदास करमचन्द गांधी से महात्मा गांधी बने वही साहित्यिक पृष्ठभूमि पर धनपत राय (नवाब राय) से मुंशी प्रेमचन्द्र का अवतरण लगभग साथ–साथ हुआ। युग विशेष का साहित्य जहां पूर्ववर्ती साहित्य से जुड़ा होता है, वहीं सामयिक वातावरण और रचना प्रवृत्तियों का भी उस पर प्रभाव पड़ता है।

राजनीतिक दृष्टि से इसी युग में महात्मा गांधी का नेतृत्व जनता को सत्य अहिंसा और अंग्रेजी शासन के प्रति असहयोग आन्दोलन के माध्यम से स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रेरणा व शक्ति प्रदान कर रहा था। अग्रेजों की दमन नीति और कटु व्यवहार से यहाँ की जनता का मनोबल कम नहीं हुआ। सामाजिक परिवर्तनशीलता के कारण पश्चिमी सभ्यता तथा संस्कृति के प्रभाव स्वरूप इस युग के सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन आ गया था। युवा मन परम्परागत रीति–रिवाज को तोड़कर पश्चिमी राष्ट्रों के स्वतन्त्र नागरिकों के समान जीवन–यापन के लिए ललायित था। सामाजिक राजनीतिक परिवर्तनों की जैसी स्पष्ट छाप छायावादी युग के गद्य साहित्य में लक्षित होती है, वैसी काव्य साहित्य में नहीं होती। वस्तुतः आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से हिन्दी गद्य का व्याकरण सम्मत, परिमार्जित रूप प्रायः स्थिर हो चुका था। फलस्वरूप समकालीन परिवेश के सन्दर्भ में विभिन्न गद्य विधाओं का यथार्थोन्मुख विकास परिष्कार स्वाभाविक था। कथा साहित्य में इनका आना एक क्रान्ति के रूप में था। 'सेवासदन' के 1918 मे प्रकाशित होने से पूर्णतः कल्पना प्रधान कथानक से छुट्टी मिल गयी। कथानक सामाजिक विषयों से जुड़ गया तथा तत्कालीन जीवन को वाणी प्रदान किया। जीवन जगत में जिन्दा रह कर इन्होंने उसका उल्लेख किया।

'हिन्दी साहित्य का यह रूप उपन्यास जन्मना निम्न श्रेणी का होने पर भी कितना महत्वाकांक्षी था यह इसी से पता चलता है कि जब वह मनोरंजन का साधन बनकर लोकप्रिय हो रहा था तभी वह सामाजिक जीवन के सत्य का वाहक बन सकने के लिए प्रयास कर रहा था, यद्यपि उसे पूर्णतः कृत कार्य होने के लिए तब तक प्रतिक्षा करनी पड़ी जब तक प्रेमचन्द्र ने उनका अछूतोद्धार नही कर दिया।'[1]

प्रेमचन्द्र जी के उपन्यास छायावादी युग की परिस्थितियों में लिखे गये थे लेकिन इनके पूर्व दो कोटि के उपन्यास लिखे जा चुके थे। प्रथम कोटि के अन्तर्गत अजीबो–गरीब घटनाओं के

द्वारा कुतूहल और चमत्कार की सृष्टि रहती थी, इसमें देवकीनन्दन खत्री, गोपाल राय गहमरी, हरिकृष्ण जौहर आदि थे। द्वितीय कोटि के अन्तर्गत आर्य समाज और उसके समकक्ष अन्य सामाजिक आन्दोलन से प्रभावित समाज सुधार का प्रचार होता था। अभी तक उपन्यास जीवन की सही अभिव्यक्ति का साधन नही बन पाया था। इसमें गौरी दत्त, श्रद्धाराम फुल्लौरी, श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, मेहता लज्जाराम शर्मा, ब्रजनन्दन सहाय आदि थे। किशोरीलाल गोस्वामी की स्थिति बीच की थी। उनका झुकाव मनोरंजन का था लेकिन भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र अपने समकालीनों से भिन्न थे उन्होंने उपन्यास को जीवन की अभिव्यक्ति के साधन के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। प्रेमचन्द्र जी के लिए यही सब पृष्ठभूमि के रूप में था।

प्रेमचन्द जी ने 1918 से पूर्व ऊर्दू में कई उपन्यास लिखे इनमें इन्होंने उपन्यास को मनोरंजन से उपर उठाकर जीवन से सीधे सम्पर्क में लाने का प्रयास किया था। सामाजिक संस्थाओं एवं संगठनों से प्रेरणा के साथ–साथ अपनी विशिष्ट जीवन दृष्टि के कारण इनके उपन्यास और भी प्रभावकारी हो गये। उनके प्रारम्भिक उपन्यास तो ऊर्दू में लिखे गये।

1. प्रेमा अर्थात दो सखियों का विवाह–1907
   (हम सूर्खा और हम सवाब का रूपान्तर)
2. असरारे मआविद उर्फ देव स्थान रहस्य
3. किसना
4. रूठी रानी
5. जलवाए ईसार

आरम्भिक दौर में ये अपने उपन्यास पहले ऊर्दू में लिखते थे फिर उसे हिन्दी में रूपान्तर करते थे।

1. बाजारे हुस्न–सेवा सदन 1918
2. गोशाए आफिमत– प्रेमाश्रय 1922
3. चौगाने हस्ती– रंगभूमि 1925

इन्होंने अपने कुछ उपन्यासों को रूपान्तरित व परिष्कृत किया। जलवाए ईसार का रूपान्तरण 1921 में **'वरदान'** के रूप में किया गया। हम सूर्खा व हम सवाब का पूर्व प्रकाशन प्रेमा अर्थात दो सखियों का विवाह को परिष्कृत करके 'प्रतिज्ञा' शीर्षक से सन् 1929ई0 प्रकाशित कराया। लगता है शुरू में प्रेमचन्द्र भी अपने लिए एक निश्चित व सही भाषा की तलाश नहीं कर पाये थे। इसी कारण शुरू के उपन्यास किसी प्रतिभाशाली लेखक के प्राथमिक प्रयास की तरह है। **'सेवासदन'** (1918) उनकी प्रथम प्रौढ़ कृति माना जाता है। उनके हिन्दी उपन्यास हिन्दी के लिए नये है। **'अपनी रचना यात्रा में प्रेमचन्द अपने अनुभव से सीखने वाले लेखक है। 'गोदान' (1936) के सन्दर्भ में जिस आश्रमवादी और सदनवादी समाधान पद्धति से उनकी मुक्ति की बात कही जाती रही है, 'गोदान' में वह किसी छलांग के रूप में उपस्थित नहीं है। प्रेमचन्द्र के यहाँ यह प्रकिया 'गबन' से ही शुरू हो जाती है, 'कर्मभूमि' में उसका विकास होता है और 'गोदान' में वह पूर्णतः प्राप्त करती है।'**[2] 'कायाकल्प' (1926) हिन्दी मे लिखित इनका प्रथम उपन्यास है।

निर्मला – 1927

गबन – 1931

कर्मभूमि – 1933

गोदान – 1936

1926 के बाद इन्होने ऊर्दू का सहारा लेना छोड दिया। हिन्दी उपन्यास मे उनकी देन बहुमुखी है। उन्होने केवल उपन्यास ही नही बल्कि पूरे कथा साहित्य को मनोरंजन के जगत से ऊपर उठाकर जीवन के सार्थक रूप मे जोड़ने का प्रयास किया है। चारो ओर फैले हुए जीवन और अनेक सामयिक समस्याओ ने उन्हे उपन्यास लेखन के लिए प्रेरित किया। ये समस्याएं निम्नलिखित है–

1. पराधीनता
2. जमीदारों, पूजीवपतियों एवं सरकारी कर्मचारियो के द्वारा किसानो का शोषण।
3. निर्धनता
4. अशिक्षा
5. अंधविश्वास
6. दहेज की कुप्रथा
7. घर और समाज मे नारी की स्थिति
8. वेश्याओं की घुटन भरी स्थिति
9. वृद्ध/अनमेल विवाह
10. विधवा समस्या
11. अग्रेजों द्वारा व अन्य आक्रान्ताओं द्वारा फैलाए गये साम्प्रदायिक वैमनस्य
12. अस्पृश्ता
13. मध्यवर्ग की कुण्ठाएं
14. फिजूल खर्ची व दिखावा

प्रेमचन्द्र जी ने एक एक कर इन समस्याओं और जीवन के अनेक पहलुओं को अपने उपन्यासों में स्थान दिया। कई समस्याओं का एक साथ चित्रण किया गया है जैसे–

सेवासदनः– विवाह से जुड़ी समस्या, तिलक दहेज की प्रथा, कुलीनता का प्रश्न, विवाह के बाद घर मे पत्नी का स्थान, समाज में वैश्याओं की स्थिति, साम्प्रदायिकता, अन्तर्जातीय विवाद तथाकथित पाखण्डी कर्मकाण्डो, समाज सुधारकों के क्रियाकलाप, नारी पराधीनता, सुमन द्वारा नारी पराधीनता के प्रति विद्रोह किया जाता है।

निर्मलाः– दहेज प्रथा, वृद्ध विवाह से होने वाला पारिवारिक विघटन, मध्यवर्गी कुण्ठा।

प्रेमाश्रमः– अपने युग की कृषि व कृषक जीवन की समस्या को उठाने का प्रयास, कृषकों का भूमि से कैसा भावात्मक लगाव होता है, बताया गया है। समाज के गरीबों किसानों पर ही ब्रिटिश

साम्राज्यवाद बड़े व्यापारियों, शोषणवादी शक्तियों आदि सबका भार था। रंगभूमिः–ग्रामीणों की स्थिति का चित्रण, अन्तर्जातीय विवाह समाज में हरिजन दलित की स्थिति व उनकी समस्या का चित्रण।

कर्मभूमिः– इसमें किसानों द्वारा लगान बन्दी के आन्दोलन के साथ–साथ दलितों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है। अछूत आन्दोलन का चित्र पाठक के सामने स्पष्ट किया है। दलितों के प्रति अमानुषिक व्यवहार की तीव्र भर्त्सना की गयी है।

कायाकल्पः– साम्प्रदायिक समस्या

प्रतिज्ञाः– अन्तर्जातीय विवाह की समस्या, विधवा विवाह की समस्या।

गबनः– मध्यवर्ग की कुण्ठा मध्यवर्ग की फिजूलखर्ची अपने दिखावा व प्रदर्शन में हैरान रहने की स्थिति। **गोदानः–**कृषक जीवन को अन्य उपन्यासों में दिखाया गया है लेकिन इसमें तो उसकी पूरी महागाथा ही है। ग्रामीण जीवन का इतना सच्चा व्यापक और प्रभावशाली चित्रण अन्य जगह नहीं है। छोटे किसानों व छोटे–मोटे जमीदारों की हालत क्रमशः बिगड़ रही है वह निरन्तर अवसान की तरफ बढ़ने को विवश है गोदान के जमींदार राय साहब की स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं है।

इस प्रकार सामाजिक समस्याओं का वास्तविक यथार्थवादी चित्रण किया गया है।

सन्दर्भ सूची :

1. साहित्य तत्व और आलोचना : आचार्य नलिन विलोचन शर्मा, अनुपम प्रकाशन पटना 4 प्रथम संस्करण 1995 पृष्ठ–100
2. हिन्दी उपन्यास का विकास : मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण 2008 पृष्ठ 48

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

दूधनाथ सिंह के कथा साहित्य में सामाजिक व्यवस्था और परिवेश

नूतन सिंह
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
नागरिक पी0जी0 कॉलेज, जंघई, जौनपुर

प्राचीन भारतीयों के सामाजिक जीवन की सबसे मुख्य संस्था वर्ण व्यवस्था है। इसी की भित्ति पर हिन्दू समाज का भवन खड़ा है, जो अत्यन्त प्राचीन काल से अनन्त बाधाओं का सामना करते हुए भी अब तक न टूट सका। यथार्थ में वर्ण व्यवस्था एवं आश्रम व्यवस्था भारतीय संस्कृति का प्रमुख तत्व तथा भारतीय समाज का आधार है।

जाति व्यवस्था भारत में बहुत प्राचीन है। भारतीय मनीषियों ने अपने चिन्तन मनन द्वारा समाज के सुचारू संचालन के लिए इस वैज्ञानिक व्यवस्था का सूत्रपात किया था, किन्तु अब इस व्यवस्था ने जाति–प्रथा का रूप ग्रहण कर लिया है। यह जाति प्रथा अनेक शताब्दियों से भारतीय समाज और संस्कृति के आधार में रही है। मध्यकाल में भी हिन्दू जाति व्यवस्था पर आधारित था। विवेच्य रचनाकार के समय में भारतीय समाज में परिवर्तनों के कारण जाति प्रथा के परम्परात्मक प्रतिमान परिवर्तित हो रहे हैं और नये प्रतिमानों का निर्माण हो रहा है। समाज के अन्तर्गत जनता, उसके सुख–दुःख, दलितों और नारियों की दुर्दशा के प्रति करुणा और संवेदना, पुरुष–वर्चस्व के तले नारियों की शताब्दियों से दमित अस्मिता और समाज के विभिन्न क्रिया–कलापों में रूढ़िवादी विचारों के लोगों द्वारा गत्यवरोध उत्पन्न करने जैसी समस्याएं जो इस आधुनिक काल में देखी जाती हैं, ठीक उन्हीं का अंकन पुराण कथा के पर्दे पर किया गया है।

थॉमस हॉब्स समाज को एक नियन्त्रक की संज्ञा देते हैं, जिसे मानव ने खुद ही अपने लिए नियुक्त किया है– ''मानव समाज के अपने ही विरुद्ध स्वभाव के परिणाम से बचने के लिए मनुष्य जो साधन अपनाता है उसे समाज कहते हैं।''[1]

साहित्य और समाज का सम्बन्ध चिरकाल से बना हुआ है, किन्तु ऐसा कदापि नहीं है कि साहित्य केवल लिखित रूप तक ही सीमित है। साहित्य का क्षेत्र इतना व्यापक है कि युग–युग से चले आ रहे ेकगीत, लोक–मुहावरे, लोकोक्तियाँ, लोक–नाटक आदि भी साहित्य का मूल्य अंग बन गए हैं। साहित्य और मानव के सम्बन्ध में यह कथन समीचीन होगा कि साहित्य मानव के जन्म के साथ ही उससे जुड़ा रहता है। व्यक्ति समाज की सबसे छोटी इकाई है और इसी कारण वह समाज का आधार है। समाज ही व्यक्ति को जीना सिखाता है और समाज का अस्तित्व भी व्यक्ति से ही है। 'व्यक्ति' तभी तक 'व्यक्ति' कहलाने का अधिकारी बन पाता है, जब तक कि वह पूरी तरह से सामाजिक हों अर्थात् समाज और सामाजिक नियमों के अनुसार व्यवहार करे। वह मानव जो समाज में नहीं रह सकता या जिसकी कोई निजी आवश्यकता नहीं है और जो अपने को स्वतःपूर्ण ही समझता है या तो वह ही पशु है या फिर कोई देवता। मनुष्य और उसके सजातीय मनुष्यों का समूह ही समाज है। वस्तुतः समाज एक संस्था है जो अन्य सभी संस्थाओं का मूल है।

प्रत्येक सजक लेखक अपने उत्तरदायित्वों का बखूबी निर्वाह करने के लिए अपनी रचनाओं में अपने समय के प्रमुख सामाजिक सरोकारों को घटनाओं, स्थितियों और पात्रों के माध्यम से वाणी प्रदान किया करता है। दूधनाथ सिंह ने भी अपने उपन्यासों में अपने समय के भारतीय समाज के विभिन्न पक्षों का प्रकाशन किया है उनके द्वारा रचित साहित्य में उनके काल के सामाजिक सरोकारों की प्रतिध्वनियाँ बिखरी हुई मिल जाती है। दूधनाथ सिंह प्रगतिशील रचनाकार रहे हैं। उनके उपन्यासों में भी समाज की तत्कालीन समस्याओं का लेखा–जोखा मिल जाता है। केवल सूक्ष्म दृष्टि से उनके लेखकीय हस्तक्षेपों और प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपों में पात्रों के किये गये रेखांकनों का निरीक्षण और अन्वेषण करने की साहित्यिक और शोध परक चेष्टा की अपेक्षा हुआ करती है।

'निष्कासन' उपन्यास में लेखक लड़कियों के शारीरिक शोषण को व्यक्त करता दिखाई पड़ता है– ''हम तो अपनी दुनिया, अपने समाज के बारे में जानते हैं, जिसका मतलब सारा देश है। इसी में से इन बच्चियों के सम्मोहन का बजबजाता संसार मुँह बाये खुलता है। इसी में से उत्पीड़न, आत्मबध, गुंडई, वेश्यावृत्ति जबड़े खोलकर खड़े हो जाते हैं और इसी के इंतजार में भेड़िये और भड़वे तक रहते हैं। ये भेड़िये और भड़वे दोनों हमारी कहानी की मैम के दरबारी हैं और इसी मुकाम पर वह छोटी बहन फँसी हुई, अनचाहे श्रृंगार के साथ किचेन में अटपटे ढंग से खड़ी है।''[2]

'निष्कासन' उपन्यास में भाग दो के आरम्भ में ही लेखक कहता है, ''जब यह सब हो रहा है, तब पिछली शताब्दी का अवसान है। शताब्दी जो, दमन, त्रास और विचारों की बड़बोली और विफल स्वप्नों के इन्द्रजालिक चीत्कार और एक शाली ले–लपक के नारकीय उत्सवस्त्र में लिथड़ी हुई है, जिसमें दुस्साहसों का अद्‌भुत विलास है, जिसमें आदमी के दिमाक का द्रुतगामी चमत्कार है। जिसमें सच और झूठ की चमक–दमक साथ–साथ हर कदम पर ताल देती हुई चलती है। जिसमें असहायता बार–बार अंगारे की तरह फूट कर लपक मारती है।'' इस कथन को केवल इसलिए प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि यहाँ वर्तमान काल की भौतिकतावादी दोड़–धूप और चकाचौंध का एक जीवन्त चित्र प्रस्तुत करने का एक सशक्त प्रयास किया गया है।

रचनाकार दूधनाथ सिंह द्वारा इस 'निष्कासन' उपन्यास में कथा की नायिका लड़की को हर तरफ से निराश दिखाया जाता है। वह अपने लिए न्याय की माँग लगा–लगा कर टूट एवं बिखर चुकी है। उसके लिए किसी के पास फुर्सत नहीं सबके पास अपने बड़े–बड़े काम है। लेखक कहता है कि– ''क्या इस देश में अब कोई दरवाजा नहीं खटखटाया जा सकता ? क्या बचने का केवल एक ही रास्ता है– केंचुए की तरह आगे–पीछे, दायें–बायें घिसटना? क्या यह हमारे देश का एक सर्वमान्य सामान्य नैतिक नियम बन गया है ? हर कोई, हर दूसरे से इस बात को छिपाता है। क्या आपको मारने के पहले सारे आरोप और सारे सवाल पर्दे के भीतर उस शाही शामियाने से नहीं आते जहाँ से यह तय है कि जवाब कुछ भी हो, अन्ततः तुम्हें मरना ही है।''[3]

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'' से स्पष्ट है कि भारतीय समाज में नारियों का स्थान उच्च था। प्राचीन काल में उन्हें देवी के रूप में स्वीकार किया जाता था, किन्तु मध्यकाल में स्त्रियों की दशा ठीक न थी किन्तु आज की नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ने का निरन्तर प्रयास कर रही है। इसी संदर्भ में चर्चा करती हुई ज्ञानी देवी जी लिखती हैं–

''स्त्री पुरुष के सम्बन्धों के बदलाव का एक मुख्य कारण स्त्री का जीवकोपार्जन में सक्रिय रूप से भाग लेना है। मध्यवर्ग की अनेक पढ़ी–लिखी नारियाँ नौकरी करती हैं, कहीं घर की गरीबी से जूझने के लिए, कहीं अपनी पढ़ाई चरितार्थ करने के लिए और जीवन–स्तर ऊँचा उठाने के लिए। नौकरी की अपनी परेशानियाँ, दिन–भर की व्यस्तता और थकान उन्हें परिवार में वह रोल अदा नहीं करने देतीं, जो एक नौकरी–विहीन नारी करती है और करती आई है। वे आगे लिखती हैं कि– दाम्पत्य–सम्बन्धों के विघटन के कारणों में पुरुष का अहं भी सबसे आगे है। पुरुष अपने बड़प्पन में स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को सहन नहीं कर सकता। आज की स्त्री आत्म–सजग ही नहीं, आत्म–निर्भर स्वतंत्र प्राणी है। एक महिला लेखिका ने नारी जाति की अस्तित्व और अस्मिता की समस्या का मनोविश्लेषण करने का सही प्रयास किया है और उनके इस मत से किसी को भी असहमति नहीं हो सकती है।''[4]

रचनाकार दूधनाथ सिंह की कहानियों में खण्डित पारिवारिक सम्बन्धों के अनेक उदाहरण विद्यमान है। इस दृष्टि से इनकी 'रक्तपात' और 'आइसबर्ग' कहानियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

'रक्तपात' कहानी में कहानी का नायक संजय जो वर्षों बाद अपने घर में आता है और उसे लगता है कि वह अपने घर में ही मेहमान की तरह है।

'रक्तपात' कहानी का कथानायक संजय इस तरह का अनुभव करता है– ''उसे लगता है कि अपने ही घर में वह एक अतिथि है और अपने परिचित कोनों, घरों की दीवारों, ताकों, सीढ़ियों को नहीं छू सकता है। हर कहीं एक बाध्यता है एक न जाने कैसी विवश खिन्नता। वह उठकर टहलने लगा।''[5]

'रक्तपात' कहानी में कथानायक संजय अपनी बूढ़ी माँ के पास बैठा होता है, तब ये शब्द दृष्टव्य है– ''सीढ़ियों पर धमक सुन पड़ी। पत्नी थपथपाती हुई ऊपर आ रही थी। वह उठकर बैठ गया। ऊपर आते ही उसकी नजर पड़ गई– बोली, वहाँ क्यों बैठ हो ?

''कुछ नहीं ऐसे ही'' ..... वे निकट चली आई।

''क्या खुसुर–फुसुर चल रही थी ? बुढ़िया बड़ी चार सौ बीस है।''

इसी तरह 'आइसवर्ग' कहानी का नायक विनय अपने घर में अकेला रहता है। विनय अकेलेपन से उठा कर ही वह अपने चचेरे सगे भाइयों तथा अपनी बहन को अपने पास बुलाता है, तो उन सबकी बातों को सुनकर वह कुछ ऐसा महसूस करता है, जैसे कि उसने इन सबको बुलाकर कोई गलती की हो। वह अकारण ही उनकी असुविधा का कारण बना हो। इसी प्रसंग में कहानी के और शब्द निम्नवत् हैं।

''विनय के मन में फिर वेसी ही निराशा ने घर कर लिया। उसे लगा कि सभी अपने आने का अहसान जा रहे हैं और असुविधा महसूस कर रहे हैं। यह विचार मन में आते ही उसके दिल को अंदर ही अंदर गहरी ठेस सी लगी। क्या सच में अब वह सब कुछ लौट नहीं सकता ? क्या सच में उसने अपराध किया है ? क्या मात्र उसका 'अकेलापन' ही उसका अपना है।''[6]

'आइसबर्ग' कहानी की सार्थकता यहाँ देखी जा सकती है, क्योंकि रचनाकार ने उसे अकेलेपन और आत्मीय लोगों के व्यवहारगत ठण्डेपन का ही सशक्त प्रतीक बनाया है, जिसमें आत्मीय और घनिष्ठ व्यवहारों की उष्मा या तपिश नाम मात्र को भी नहीं रह गई है।

कहानी के नायक विनय 'आइसबर्ग' कहानी में अपने परिजनों से बहुत दूर चला गया है, वह अपनी बहन बेबी से पत्र व्यवहार करता है उसकी बहन घर के बारे में पत्र के माध्यम से बताती है, जिसका उस पर कोई असर नहीं होता है। उसके पत्र में किसी हम उम्र दुनिया की सकून भरी धीमी आवाज थी, जो कुछ उसके बाहर घट रहा था। बेबी के पत्र उसकी ही सूचना देते थे। उन सूचनाओं के बारे में उसे यकायक पहले विश्वास नहीं होता था। इससे आगे कहानी के ये शब्द कहानीकार के मन्तव्य स्पष्ट कर देते हैं।

''अरे यह हो गया! अब यह भी हो गया! चित्रा मायके वालों से भी झगड़ के चली गई। उसने इस्तीफा दे दिया, वह कलकत्ते में नौकरी कर रही है, ...जगत के लड़के की साल गिरह ळै। लेकिन कुछ दिनों के बाद वह हर नई सूचना से अश्वस्त हो जाता है– ठीक है, यह भी हो गया! चलो, माँ भी चल बसी। दादी को गठिया सेछुटकारा तो मिल गया। इसी तरह जब बेबी ने जीजा जी के एक्सीडेंट वाली बात लिख, तो भी वह खत रखकर गुस्ल के लिए चला गया था। बनारस पहुँचने पर भ्झी उसके मुँह से सान्त्वना का एक शब्द नहीं निकला था। रात को केवल उसने इतना ही कहा था बेबी, तुम्हें 'रामकृष्ण बचनामृत' से कुछ सुनाऊ ? लेता आया हूँ। बहन इस रामकृष्ण वचनामृत के लेते आने पर आश्चर्य से उसका मुँह ताकती रह गई थी। यहाँ कहानीकार ने हर दिन कामकाज में निरन्तर होने वाली मौतों के बाद मानव के यन्त्रवत् कार्य या व्यवहार करने की त्रासदी का मार्मिक चित्रण किया है।''[7]

भारतीय नारी का मध्यकाल में अवनति का कारण उसके घर की चारदीवारी थी। वह पुरुष के हाथ की कठपुतली बन गयी, जिस कारण वह पुरुष को तन–मन–धन से प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगी। फलतः नारी आश्रिता, दासी एवं सम्भोग की वस्तु मानी जाने लगी, परन्तु आपकी नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के कंधे–से–कंधा मिलाकर आगे बढ़ने का निरन्तर प्रयास कर रही है। डॉ0 प्रमिला कपूर 'कामकाजी भारतीय नारी' नामक पुस्तक में स्त्री की इसी समस्या के बारे में लिखती हैं–

''इसमें कोई सन्देह नहीं कि पत्नी और माँ की पारम्परिक भूमिका में नौकरी वाली भूमिका जुड़ जाने से अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं।''[8] आधुनिक काल में विश्वभर में शिक्षा और संस्कृति के प्रचार–प्रसार से नारी के लिए अपेन जीवन में आत्मनिर्भरता लाने और आर्थिक दृष्टि से पुरुषों के आश्रित न रहकर पूरी तरह से स्वतंत्र होने की भावना में अत्यन्त वृद्धि देखने को मिल रही है।

यद्यपि नारी की स्वातंत्र्य–चेतना को लेकर चिन्तकों और समाजसेवियों में दो तरह की परस्पर विरोधी विचारधारा से प्रचलित हे, तथापि आज की नारी पहले के कालों से कहीं अधिक आत्म संतुष्ट नजर आ रही है। यह और बात है कि भारत से बाहर के अन्य देशों में नारी जितनी अधिक स्वतंत्र है, उतनी भारत देश में आज भी नहीं हो पायी है। इसी संदर्भ में कहानीकार और समीक्षक डॉ0 सुशील कुमार फुल्ल का यह कथन विचारणीय ही कहा जायेगा–

''नारी की स्थिति में परिष्कार की बात तो अनेक मंचों से यदा–कदा उठती रहती है, परन्तु यह सब जानते हैं कि उसकी वास्तविक दशा एवं दिशा फिलहाल बहुत उत्साहवर्द्धक नहीं है। मैदानी क्षेत्रों में महिलाएं पढ़ लिखकर नौकरी करना पसन्द करती हैं तथा आर्थिक स्वतंत्रता के कारण अपेक्षाकृत अधिक स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर हैं।''[9]

विवेच्य रचनाकार दूधनाथ सिंह की कहानियों में नारी–उत्पीड़न और उसके विद्रोह प्रकाशन के उदाहरण सर्वत्र विद्यमान हैं। इस दृष्टि से उनकी माई का शोकगीत और हुँडार जैसी कहानियाँ काफी महत्वपूर्ण है। 'माई का शोक गीत' कहानी में कथा पात्र गंगा माई गांधी जी की

चेली है। वह घर–घर में वस्तुओं का प्रचार करती है। वह एक अत्यन्त साधारण और कम पढ़ी लिखी देहाती औरत है। कहानी में यह अपनी सखी कनियाँ को उसके पति के अत्याचारों से नहीं बचा पाती है। गंगा माई महात्मा जी का अलख जगाते हुए कनियाँ के घर पहुँचती है और भारत माता को छुड़ाने की बात करती है। तभी कनियाँ कहती है– ''पहिले हमको छुड़ाओं न सखी! हम भी तो काल–कोठरी में बन्द है। हमारी भी तो कुर्ती फट गयी है। हम भी तो बेपर्द हो गये हैं। इहाँ भी तो एक दो राच्छस पहरा दे रहा है।''[10]

मोसाफिर सिंह जो कहानी का कथापात्र एवं कनियाँ का पति है अपनी पत्नी को रोज मारता–पीटता है। गंगा माई यह सब औरतों को बता रही होती है, तभी औरतों के झुण्ड में से एक औरत पूँछती है कि वह मोसाफिर सिंह अपनी पत्नी को रोज क्यों मारता है ? उस समय कहानी के ही शब्द में–

''बाबू साहब सोचते है कि उनकी औरत क्यों रो रही है ? वह तो उसे रेाज ही या जब मन चाहा लथेड़–लथेड़ कर मारते ही रहते हैं। जैसे वे बबूल की दातून कूँचते हैं और बीच–बीच में थूकते जाते हैं, उसी तरह कनियाँ को लथेड़ते हैं और थूकते जाते हैं।''[11] इसी कहानी की एक अन्य मुख्य पात्रा बूढ़ी माई भी अपनी प्रौढ़ा सखी कनियाँ की भी पति द्वारा बुरी तरह बार–बार पिटाई होने का कारण पूछने पर बताती हैं– ''मोसाफिर सिंह दो हाजू है। अधेड़ बरपक्का, मोंछाइल और हमारी कनियाँ गोरी–चटक जवान तो मोसाफिर सिंह को बार–बार गुस्सा आता है कि कनियाँ जवान क्यों है, सुन्दर क्यों है। सो थुर–थुर के हमारी सखी कनियाँ को बुढ़वा रहे हैं। अरे, ई, नहीं होता तो अपनी चीज–बसत है, सँम्हाल कर रखे और ये भी औरते कहती है कि मोसाफिर सिंह के कोनो बेस–बरख नहीं हुआ, इसकी भी खिसिआई है।''[12] माई का शोकगीत कहानी में बलदेव की पत्नी नारियों की सभा में गंगा माई की बेटी की भूमिका निभाने वाली गायत्री 'सोन–चिरैया' से कहती है कि मारी का घर में खाना पकाना वास्तव में बिना दाम की मजूरी है। फिर भी इस प्रकार दे कर अपने कथन की व्याख्या करने लगती है–

''क्यों ? क्या मरद हमें दाम देता है ? दाम देता नहीं उल्टे लतियाता भी है। हम कहते है कि जब तक हम खाना पकाते रहेंगे, तो लतियाते भी जाते रहेंगे। तुम और तुम्हारे ज्ञानी महात्मा भारत माता को सौ बार सात समुन्दर पार से छुड़ा लाये..... यह गुलामी बनी रहेगी। गयी तो थी ये बूढ़ी माई कनियाँ को छुड़ाने। छुड़ा लाई ? आज भी कनियाँ जाँत पीसती है, रोटी पाथती है और ऊपर से लतिया लथेरी जा रही है।''[13]

दूधनाथ सिंह का यहाँ मुख्य उद्देश्य महात्मा गांधी की आलोचना करना कदापि नहीं है, बल्कि यह बताना है कि कोरी कागजी करवाइयों से नारी की दुर्दशा दूर नहीं की जा सकती है, इसी प्रकार कोरी राजनीतिक आजादी पा कर भी भारतवासियों को चैन से नहीं बैठ जाना चाहिए। नारियों की दशा में अपेक्षित सुधार लाने के लिए तो भारत सरकार और समाज सुधारक सरकारी और गैर सरकारी सभी संस्थाओं को कोई ठोस कदम उठाने चाहिए। इसी कहानी में गायत्री सोनचिरैया से उसकी माता गंगा माई कहती है कि–

''ये दुनिया औरत खातिर कसाईखाना ही है।''

गायत्री इस पर कहती है– ''कैसी बातें करती हो गंगा माई ? नमक कानून तोड़ती हो, जेल जाती हो, गांधी जी की चेली बनती हो, फिर भी ऐसी बातें मुँह से निकालती हो–

''यह बात सुन कर गंगा माई उससे ये शब्द कहती है– सब करती हूँ बेटी, लेनिक सच को भी देखती हूँ।''

''तो क्या प्यार और हमदर्दी कहीं नहीं है ?''

'है बेटी! वह भी है, लेकिन मरद की मरजी से है।'

'मरद की मरजी की ऐसी की तैसी।' बिटिया फनफनाकर बोलती है।

'कल हम जायेंगे। हम कनियाँ से बात करेंगे।'

'हम मोसाफिर सिंह से भी बात करेंगे। हम उन्हें समझायेंगे।''

विवेच्च रचनाकार द्वारा यहाँ आज की नारी को कोरे शब्द के आडम्बर से बचकर व्यावहारिक स्तर पर कार्य करने की प्रेरणा दी गई है। गायत्री को एक आदर्श नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी में गंगा माई पुरखों के जमाने से नारियों के प्रताड़ित होने को अत्यन्त साहसपूर्वक 'दैव का विधान' ही घोषित करती है। वह पूँछती है कि पुरुष कभी अपने को दोषी मानता है ? वह हमेशा नारी पर अत्याचार करता है।

मोसाफिर सिंह से गायत्री जाकर जब पत्नी को मारने–पीटने का कारण पूछती है तब वह उससे सीधे मुँह बात नहीं करता है, अपितु उसके जाने के बाद कनियाँ भी खूब धुनाई करता है।

इसके बाद गायत्री अन्य नारियों के संग जाकर मोसाफिर सिंह की कमर में रस्सा बाँधकर उसकी खूब पिटाई करती है। बाद में कनिया मायके जा बैठती है और मोसाफिर सिंह लुप्त हो जाता है आगे सोन चिरैया की हत्या कर दी जाती है और महात्मा गांधी अपने शोक प्रस्ताव में लिखते हैं–

''हमें अपनी भारत माता को मुक्त करानाहै, तो हमारी नजर अपने लक्ष्य पर होनी चाहिए, न कि रोजमर्रा की छोटी–मोटी बातों पर। वैसे भी गायत्री बेटी को पति–पत्नी के व्यक्तिगत मामले में दखल देने का कोई हक नहीं था। और यदि दखल देना ही था, तो गाँव की महिलाओं के साथ वहाँ कीर्तन करना था, लेकिन उससे हिंसा का सहारा लिया, इसलिए हिंसा ने उसे डस लिया।''[14] यहाँ दूधनाथ सिंह ने गांधी जी के अंहिसावादी सिद्धांत की खिल्ली ही उड़ाई है। वह सिद्धान्तों के स्थान पर व्यवहार पर बल देना चाहते हैं और इस कहानी के द्वारा लोगों को इसी बात की शिक्षा देते हुए दिखायी दे रहे हैं। माई का शोकगीत की भाँति रचनाकार ने हुँडार कहानी में भी समाज का चित्रण किया है।

कथानायक राय साहब हुँडार कहानी में नारी दैहिक शोषण करने के साथ–साथ उसे हर दर्जे की मानसिक यातनाएं भी देते रहते हैं। वे अपने घर में काम करने वाली नौकरानी को एक हजार रूपये चोरी करके भाग जाने वाली धोबिन के रूप में बताकर थाने में उसकी रिर्पोट करने पहुँचते हैं। वे अपने साथ मकान मालिक अग्रवाल साहब के साथ–साथ कथानायक को भी ले जाते है, क्योंकि वे थाने के युवा दरोगा को जानते हैं।

जब धोबिन थाने में खोज कर लाई जाती है तब राय साहब की दुश्चरित्रता और निर्ममता का पर्दाफाश करती हुई विस्तार से बताती है– ''भाई लोग कसाई हैं, साहब जी, बे बात थुर देते रहें। भूखी मरत रहूँ साहब जी, तिस पर से काम दिन–रात लेत रहे। सो भलमनई जान के चली आई, साहब जी। लेकिन बहू जी के गाँव जाते ही दहिजरा का मन बदलिगा। कइसे तके रहा साहब जी। बाथरूप में कपड़ा फींचत रहे तो जाके पीछे से पकरि लीस हम धक्का दियो साहब तो गिर गवा।

टाँग में मोच का बहाना बना लीस हैं सोचों कि बहू जी आयेगी, तो हमीं को कलंक लगेगा। सो हमका दया आई गयी, साहब जी! हमसे मालिस करवाइस..... और जबरदस्ती कींस,

पूरा हुँडार है, साहब जी! आदमी के कौनो लच्छन नहीं ओके भीतर। इस कहानी में धोबिन, जिसको चोरी के इलजाम में पकड़कर थाने लापा जाता है, से दरोगा जब उसके पति के बारे में पूँछता है तो यही उत्पीड़ित धोबिन अपने पति की कठोर हृदयता पर भी प्रकाश डालते हुए दरोगा को बताती है–

''मरद ने छोड़ दिया साहब जी, साफ–सूफ रहती थी, तो उसे मान देना चाहिए था। उल्टे सक करने लगा। कहा, घाट पर मर्दो से आँख लड़ाती है। अब गोबर भी लपेट लो तो सक का कोऊ इलाज है, साहब जी? हमार बच्चा लेई लिहिस। मैं बन–बन भटकों साहब जी, सीता जी हो गयी। तभी यह राच्छस मिल गया। हम कहाँ, हम चिल्ला देबैं। तो हमार मुँह दबा देत रहा। हम कहा कुछ होआ जाई, तो कहूँ के न रहब– तो हँसत रहा।''[15] तब साहब हम आजिज आ के कहा कि आप नहीं मानते तो बहू जी के आये पर हम सब बात उनसे कहि दैबे, बस साहब जी, इहे सुनते बलबलाने लगा। हमका खूब लथेरिस, इ देखों साहब जी और ओहू से मन न भरा तो हम पे चोरी के इल्जाम धई दिहिंस।''[16]

सामाजिक परिवेश का चित्रण करते हुए दूधनाथ सिंह आगे कहते हैं कि आज का युग एक नवीन युग है। जहाँ पुरानी प्रथाएं और मान्यताएं तेजी से ध्वस्त होती चली जा रही है। आज का मानव एक द्वन्द्वग्रस्त व्यक्ति का प्रतीक बन कर रह गया है, जो अपने में ही उलझा हुआ है। जो व्यक्ति स्वयं उलझा हो, वह समाज की उलझन को भला क्या दूर करेगा ?

आज के साहित्यकार का प्रमुख लक्ष्य मानव मात्र को जागृत करना है, उसमें नये विचारों और संस्कारों का समावेश करना है। जो रचना ऐसा करने में असफल है उसका तो कोई अर्थ ही नहीं है।

दूधनाथ सिंह की रचना यमगाथा एक पौराणिक कथा पर आधारित होते हुए भी आधुनिक है। इसमें रचनाकार विवेच्य कवि ने सामाजिक व्यवस्था एवं परिवेश का बखूबी चित्रण किया है। कथा के पात्र सम्राट पुरुरवा और महर्षि वशिष्ट एक ऐसे नये समाज का निर्माण करना चाहते है, जो कि सब प्रकार की परम्पराओं, रूढ़ियों एवं मान्यताओं से मुक्त हो। अंक एक दृश्य दो में माता इला और गुरु वशिष्ठ का वर्तालाप निम्नवत् है–

इला– अर्थात आप जानते थे कि युवराज के अभिषेक में कोई सम्मिलित नहीं होगा ?

वशिष्ठ– सम्मिलित होने का प्रश्न ही कहाँ उठता थज्ञ। हमने नये प्रश्न उठाये। राजा का चुनाव कराया। जन–समितियों और जन–सभाओं के निर्माण की घोषणा की..... जनता को मूर्त किया।[17]

सम्राट पुरुरवा राज्याभिषेक से इंकार कर देते हैं। उनका कहना है कि उन मंत्रों से जिनसे देवराज इन्द्र का राज्याभिषेक हुआ उनसे उनका राज्याभिषेक नहीं होगा। वे पुरानी मान्यताओं को नष्ट करना चाहते हैं और इसके लिए वे अपने गुरु वशिष्ठ से कहते हैं–

पुरुरवा– आप ही तो कहते थे, गुरुदेव! जिन मंत्रों का उपयोग पाखण्ड के लिए होता है, उनसे घृणा स्वाभाविक है।

वशिष्ठ– किन्तु इस तरह की विकट उत्तेजना का क्या अर्थ है ? इस तरह मंत्रों को विकृत करके देखने से सारस्वत में फैलाया गया यह प्रवाद सच हो जायगा कि हम धर्म–विरोधी है और जन शक्ति भड़क जायेगी।[18]

गुरु वशिष्ठ द्वारा जब यहकहा जाता है कि वे देवताओं को अपना शत्रु नहीं मानते हैं, तो सम्राट पुरुरवा उन्हें व्यंग्यपूर्वक जनता का शत्रु आदि कहते हैं–

वशिष्ठ– मैं उन सभी को शत्रु नहीं मानता।

पुरुरवा– क्यों ? क्या यह भी शब्दों का दुहरा खेल है ? क्या जब आप तेज फरसे की धार से दो टुकड़े कर दिये जाते, तभी वे आपके शत्रु होते..... जब वे विश्वकर्मा द्वारा बनाई गयी किसी यज्ञ–वेदी पर आपको अग्नि में झोंक देते, आपको आदि पुरुष की उपाधि से अलंकृत कर देते..... तभी वे आपके शत्रु होते ? वे संस्कृति, ज्ञान और परम्परा का उपयोग जनपदों को लूटने के लिए करते हैं, इसलिए वे जनता के शत्रु हैं।[19]

यमगाथा नाटक में नारी की ऐसी स्थिति का रेखांकन किया गया है। नाटक के प्रमुख नारी पात्रों में सम्राट पुरुरवा की माता इला हैं। सम्राट पुरुरवा की प्रेमिका देवलोक की अप्सरा देवी उर्वशी हैं। दोनों को ही कई बार अपमान के घूँट पीने पड़े हैं। यथा माता इला गुरु वशिष्ठ द्वारा युद्ध न चाहने और बातों के दोहरे जाल बुनते रहने का खण्डन करती है। वे विद्रोह करती नजर आती हैं। वे जो कुछ कहती हैं, उसमें उनके मन की पीड़ा स्पष्ट झलकती है।

इला– मैं अब और प्रतीक्षा नहीं कर सकती। मैं चाहती हूँ कि वे सभी जानें कि मैं कहाँ हूँ और क्या कर रही हूँ। वे सभी, जिन्होंने मेरे अस्तित्व को नकार दिया..... जिन्होंने मेरे स्त्री होने का अपमान किया। जिन्होंने मेरे मातृत्व को तिरस्कृत किया..... उसकी हँसी उड़ायी।[20]

सम्राट पुरुरवा को लुभाने के लिए देवी उर्वशी का मांग नृत्य पेश करती हैं। परन्तु सम्राट उसकी ओर एक पल भी नहीं देखते हैं। वे उसकी पीड़ा को देखते हैं और उसे विश्राम करने के लिए कहते हैं यह सुनकर देवी उर्वशी का मन पिघल जाता है और वह कहती हैं–

उर्वशी– किसी ने पहली बार मेरे विश्राम के बारे में सोचा! प्हली बार किसी को मेरी थकान की सुधि आई..... अप्सरा हूँ न। केवल ऋषियों और तपस्वी राजर्षियों की तपस्या भंग करने के लिए ही मेरा जन्म हुआ है न। प्रेम नहीं कर सकती..... केवल नाटक, केवल अभिनय! देवराज इन्द्र के प्रमत्त विलासियों का दिन–रात मनोरंजन करना ही मेरे होने का उद्देश्य है न! प्रति सन्ध्या प्रसाधन में घुटती हुई नृत्य करती हूँ। फिर सारी रात! और भोर के उजाले के साथ ही श्लथ होकर शैय्या पर गिर जाती हूँ।[21]

दूधनाथ सिंह ने अपने नाटक यमगाथा में भी प्राचीन भारतीय मिथक कथा के पात्र पुरुरवा का आश्रय लेकर और उससे जुड़े विभिन्न कथा–प्रसंगों के माध्यम से भारत के अतीत में भी सत्ता पक्ष के द्वारा प्रवर्तित दमन–चक्र और उसका विरोध करने वाले विपक्ष की परिकल्पना की है।

आजकल भी समाज में वर्ग विभेद की यही समस्या ज्वलन्त है। प्रभु–सत्ता–सम्पन्न वर्ग आज भी दिन–रात धन–वैभव में खेलता रहता है और उसके विपरीत निर्धन वर्ग रोजी–रोटी की जुगाड़ में रात दिन खटता रहता है। रचनाकार ने इस नाटक में सामाजिक व्यवस्था के वर्ग संघर्ष की इसी भावना को गहराई से व्यक्त किया है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. जगदीश सहाय श्रीवास्तव, समाज दर्शन की भूमिका, वाराणसी, 1970, पृ0 4
2. दूधनाथ सिंह, निष्कासन उपन्यास, नई दिल्ली, 2002, पृ0 22

3. वही, पृ0 122–23

4. ज्ञानी देवी, हिन्दी कहानी को पंजाब का योगदान, दाम्पत्य सम्बन्धों के संदर्भ में, पटियाला, 1998, पृ0 8

5. दूधनाथ सिंह, कहानी संग्रह, 'सपाट चेहरे वाला आदमी', कहानी रक्तपात, इलाहाबाद, 1990, पृ0 149

6. दूधनाथ सिंह, कहानी संग्रह, 'सपाट चेहरे वाला आदमी', कहानी आइसवर्ग, इलाहाबाद, 1990, पृ0 108

7. वही, पृ0 16

8. प्रमिला कपूर, कामकाजी भारतीय नारी, दिल्ली, 1976, पृ0 39

9. दूधनाथ सिंह, सुरंग से लौटते हुए, भाग–1, आत्मन्याय के चौबीस घंटे, पृ0 21

10. दूधनाथ सिंह, 'माई का शोकगीत', कहानी हुँडार, नई दिल्ली, 1992, पृ0 80

11. वही, पृ0 81

12. वही, पृ0 89

13. वही, पृ0 88

14. वही, पृ0 90

15. वही, पृ0 96

16. वही, पृ0 29

17. दूधनाथ सिंह, नाटक 'यमगाथा', प्रयागराज, 2018, पृ0 10

18. वही, पृ0 13

19. वही, पृ0 14

20. वही, पृ0 10

21. वही, पृ0 31

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

मानव सुरक्षा में अर्द्ध–सैनिक बलों की भूमिका

डॉ0 विरेश कुमार
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
रक्षा एवं स्त्रातेजिक अध्ययन विभाग
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

''विश्व के कुछ ही भागों में मानव अधिकार तथा आधारभूत स्वतन्त्रताऐं वास्तव में सुरक्षित हैं, अधिकांश क्षेत्रों में तो अभी इनका कोई अर्थ नहीं है''[1] –पामर एवंपार्किन्स

सुरक्षा शब्द का अंग्रजी रूपान्तरण सिक्योरिटी जिसकी उत्पत्ति सिक्योर से हुई है। सिक्योर लैटिन भाषा के दो शब्द साइन और क्यूरा से हुई है। साइन का अर्थ है बगैर तथा क्यूरा का अर्थ परवाह से है। दोनों को मिलाकर सुरक्षा से अर्थ निकाला गया है निश्चिन्त होकर सभी की सुरक्षा करने से है।[2] सभी की सुरक्षा में से मानव सुरक्षा भी एक अवयव मात्र है।

जब से पृथ्वी पर मानव का विकास हुआ है तभी से वह असुरक्षा के घेरे में जीवन व्यतीत कर रह था। प्राचीन काल में जब मानव ने जंगली जीवन का त्याग कर स्थायी निवास करना प्रारम्भ किया और कबीलों के रूप में अपने–अपने समाज का निर्माण कर रहे थे, तब अन्य कबीलों से असुरक्षा का वातावरण बना रहता था। शनै–शनै मानव का विकास होता गया और एक तरफ मानव जीवन सरल व आरमदायक बनता गया तो वही दूसरी ओर अत्याधुनिक भयानक हथियारों का आविष्कार होने से मानव सुरक्षा को भी गम्भीर खतरा उत्पन्न होता गया। मैक्स लर्नर ने आधुनिक समय को ''अतिमारकता का युग''[3](Age of overkill) की संज्ञा दी है।

शनै–शनै मानवीय अधिकारों का विकास होता गया। सर्व प्रथम ब्रिटेन में सन् 1215 ई0 में मैग्नाकार्टा अर्थात 'महान् घोषणा–पत्र' प्रकाशित हुआ। जिसमें कहा गया कि, ''किसी नागरीक को उस समय तक बन्दी न बनाया जाये और न ही निर्वासित किया जाये, जब तक उसका अपराध सिद्ध न हो जायें।[4]

'बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम' सन् 1679 में ब्रिटेन में पारित किया गया । जिसमें यह कहा गया कि, ''बिना अभियोग चलाये किसी भी व्यक्ति को नजरबन्द नहीं रखा जा सकता''। सन् 1689 में 'अधिकार–पत्र (will of Rights) पारित कराया। इसमें अन्य बातों के अलावा यह व्यवस्था थी कि संसद में जनता के प्रतिनिधियों को भाषण की स्वतंत्रता होगी। इसके सम्बन्ध में अमरीका के पूर्व राष्ट्रपति मुनरों ने कहा था कि, ''इससे पार्लियामैन्ट की वैधनिक प्रभुता की घोषणा की गयी।''

संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपनी स्वंतत्रता के साथ 4 जुलाई 1776 को घोषणा करते हुये कहा कि, ''हम इन सत्यों को स्वयं सिद्ध मानते हैं कि सभी मनुष्य जन्म से समान है, सभी मनुष्यों को ईश्वर ने कुछ ऐसे अधिकार दिये हैं जिन्हें छीना नहीं जा सकता और इन अधिकारों में जीवन, स्वतंत्रता तथा अपनी समृद्धि के लिए प्रयत्नशील रहने के अधिकार भी सम्मिलित है।''

संयुक्त राष्ट्र संघ और मानवाधिकार!

संयुक्त राष्ट्र संघ के स्थापना सम्मेलन में उपस्थित प्रतिनिधियों ने इसके चार्टर में मानव अधिकार सम्बन्धी विस्तृत घोषणा और तत्सम्बन्धी व्यवस्थाओं की माँग की गयी। इसलिए चार्टर में मानव अधिकारों को स्पष्ट किया गया।

चार्टर की प्रस्तावना में– ''मानव के मौलिक अधिकारों, मानव के व्यक्तित्व के गौरव तथा महत्व में तथा पुरूष एवं स्त्री के समान अधिकरों में'' विश्वास प्रकट किया।

अनुच्छेद एक में– ''मानव अधिकारों के प्रति सम्मान को बढ़ावा देना तथा जाति, लिंग भाषा या धर्म के बिना किसी भेदभाव के मूलभूत अधिकारों को बढ़ावा देना तथा प्रोत्साहित करना।''

अनुच्छेद तेरह में महासभा के द्वारा– ''जाति, लिंग, भाषा या धर्म के भेदभाव के बिना सभी को मानव अधिकार तथा मौलिक स्वतंत्रताओं की प्राप्ति में सहायता देना।''

अनुच्छेद छप्पन में कहा गया है कि सभी सदस्य राज्य मानव अधिकारों तथा मानव स्वतंत्रताओं की प्राप्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ को अपना सहयोग देंगे।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुच्छेद बासठ में आर्थिक और सामाजिक परषिद् के द्वारा ''सभी के लिये मानव अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की भावना बढ़ाने तथा उनके पालन के सम्बन्ध में सिफारिश करने'' की व्यवस्था की गयी है।

मानव स्वभाव की यह विडम्बना रही है कि जब–जब युद्ध हुये हैं तब–तब शान्ति स्थापित करने पर जोर दिया गया हैं– तीस वर्षीय युद्ध के साथ वेस्टफालिया की सन्धि, प्रथम विश्व युद्ध के साथ राष्ट्र संघ की स्थापना तथा द्वितीय विश्व युद्ध के विकट नरसंहार के देखते ही संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ मानव अधिकार व स्थाई शान्ति हेतु गहन प्रयास किये गये। जिसमें सन् 1946 ई0 में अन्तर्राष्ट्रिय मानव अधिकार आयोग की स्थापना के बाद 10 दिसम्बर 1948 ई0 को मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की गयी।[5] इसके पश्चात् कई प्रतिज्ञा पत्र तथा समझौते अपनाये गये ताकि इस घोषणा में शामिल मानव अधिकारों को दृढ़ व सुरक्षित किया जा सके।

1. नरसंहार के अपराध को रोकने तथा सजा से सम्बन्धित समझौता–1948
   (convention on the prevention and punishment of the crime of Genocide-1948)
2. स्त्रियों के राजनीतिक अधिकारों पर समझौता–1952
   (Covenant on the political Rights of women-1952)
3. आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों का समझौता–1966
   (Covenant on Economic, Social and cultural Rights-1966)
4. नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर समझौता–1966
   (Covenant on Civil and Political Rights-1966)
5. नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय समझौते पर ऐच्छिक प्रोटोकोल–1966
   (Optional Protocol to the International convenant on Civil and Political Rights-1966)
6. मानवता के विरूद्ध अपराधों के सम्बन्ध कानूनी सीमाओं के न लागू किये जाने पर समझौते–1968
   (Convention on the Non-applicability of statutory limitations to war crimes and crimes against Humanity-1968)

7. नस्लवादी भेदभाव के अपराध की समाप्ति तथा सजा देने सम्बन्धी समझौता–1973
(Convention on the suppression and punishment of the crime of Apartheid-1973)

''मानव सुरक्षा को मापने के लिए डोमेन की एक किफायती सेट के लिए हमारे सुझाव आय, स्वास्थ्य, शिक्षा और राजनीतिक स्वतंत्रता और लोकतंत्र के लिए किया जायेगा।''[6]

कैरोलीन थॉमस– ''मानव सुरक्षा बुनियादी सामग्री की जरूरत है जो पूरा कर रहे हैं। अस्तित्व की एक स्थिति का वर्णन मिले और जिसमें से मानव में सार्थक भागीदारी सहित मानव गरिमा बनी रहें''

संयुक्त राष्ट्र संघ के पूर्व महासचिव कोफी अन्नान–''हमें भी शान्ति और सुरक्षा से मतलव है कि हमें अपने विचारों को व्यापक करना होगा। शान्ति का अर्थ युद्ध के अभाव की तुलना में व्यापक है। मानव सुरक्षा न रहने में समझा जा सकता है विशुद्ध रूप से सैन्य दृष्टि से है। यह आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय धारणा चाहिए। मानव अधिकारों के लिए पर्यावरण संरक्षण, लोकतंत्रीकरण, निःशस्त्रीकरण और समान कानून और नियम से है।''[7]

सन् 1994 में एच0डी0आर0 ने मानव सुरक्षा के अति विशिष्ट सात आयाम बताऐं जिन्हें पूरा करना मानव सुरक्षा के लिए आधार स्तम्भ के समान है। जो निम्न हैः–

1. आर्थिक सुरक्षा (Economic Security)
2. खाद्य सुरक्षा (Food Security)
3. स्वास्थ्य सुरक्षा (Health Security)
4. पर्यावरण सुरक्षा (Environment Security)
5. व्यक्तिगत सुरक्षा (Individual Security)
6. सामुदायिक सुरक्षा (Communal Security)
7. राजनीतिक सुरक्षा (Political Security)

प्रत्येक मानव को जन्म से ही जीवन यापन के लिए काम करने, कार्य का स्वरूप तय करने, काम की उचित एवं अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त करने, समान काम के लिए समान वेतन पाना, अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा का अधिकार प्राप्त होता है।

मानव को स्वस्थ जीवन यापन के लिए पौष्टिक भोजन व उचित आवश्यक विटामिन से युक्त भोजन करना भी आवश्यक होता है।

स्वस्थ्य समाज व विश्व के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि मानव का स्वास्थ्य उत्तम रहे। स्वस्थ समाज व विश्व के बिना स्वस्थ मानव की कल्पना वैसे ही है जैसे ''बिना अस्त्र–शस्त्रों के कूटनीति'' एवं ''बिना वाद्यय यन्त्रों के संगीत'' होता है।

मानव सुरक्षा के लिए उत्तम पर्यावरण भी उतना ही आवश्यक है जितना की मछली के लिए जल। पर्यावरण के अन्तर्गत हम जलवायु, भौगोलिक परिस्थितियाँ, खाद्य पदार्थ, जीवन स्तर, आत्म–निर्भरता, शान्त व सुरक्षित राष्ट्र की सीमाऐं, स्थिर राजनैतिक दशायें आदि मिलकर एक उत्तम पर्यावरण का निर्माण करती है।

मानव सुरक्षा में सम्पूर्ण मानव जाति की सुरक्षा से अर्थ होता है। परन्तु सम्पूर्ण मानव जाति की सुरक्षा के साथ–साथ समाज के प्रत्येक व्यक्ति को विशेष सुरक्षित होने का अहसाश कराना ही व्यक्तिगत सुरक्षा है।

सामुदायिक सुरक्षा का मूल भाव सामूहिक सुरक्षा के सिद्धान्त पर आधारित है। जिसका अर्थ ''सब एक के लिए एक सबके लिये''[8] ''All for one, one for all'' सामुदायिक सुरक्षा की भावना बनी रहेगी, तो मानव सुरक्षा स्वतः अक्षुण्ण रहेगी।

राजनीतिक सुरक्षा के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को, व्यस्क मताधिकार का अधिकार, सभा करने व संगठन बनाने के अधिकार, अपनी पसन्द के जन प्रतिनिधि चुनने व प्रशासनिक कार्यो में भाग लेने का अधिकार तथा एक लोकतांत्रिक देश का निर्माण करना।

अर्द्ध–सैनिक बल अंग्रेजी भाषा के शब्द Paramilitary Fource का हिन्दी रूपान्तरण है। जिसका अर्थ हैं कि युद्ध न करने का आदेश व प्रशिक्षण देकर मुख्यतः देश के आन्तरिक भागों में मानव सुरक्षा की अति महत्वपूर्ण जिन्मेदारी प्रदान की जाती है। एक राष्ट्र के सुरक्षित रहने के लिए सीमाओं का सुरक्षित रहना जितना आवश्यक हैं उससे भी अधिक आवश्यक हैं देश की आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था। किसी भी देश की आन्तरिक समस्यायें उस देश को दीमक के समान आन्तरिक रूप से खोखला बना देती है और उस देश की सीमायें बालू के ढेर के समान हवा के एक झोके में ही ध्वस्त हो सकती है। एक राष्ट्र को सुरक्षित और शक्तिशाली बनना व बने रहना है तो अपनी आन्तरिक शक्ति को सुदृढ़ करना होगा। आज भारत में आंतकवाद, उग्रवाद, धार्मिक दंगे, जुलूस, शक्ति व विरोध प्रदर्शन, आगजनी, बाढ़ तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के समय हमारे अर्द्ध–सैन्य बल अर्थात आन्तरिक सुरक्षा प्रहरी अपनी जान की परवाह न करते हुए मानव सुरक्षा के निहितार्थ अपने कर्तव्यों का निष्पादन करते हैं। राष्ट्र की सीमाओं की सुरक्षा के लिए तीनों सेना बल (जल, थल, व नभ) तत्पर रहते हैं। आन्तरीक सुरक्षा की बागडोर अर्द्ध–सैन्य बलों पर होती हैं जिनमें केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, सीमा सुरक्षा बल, भारत–तिब्बत सीमा पुलिस, सशस्त्र सीमा बल, केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल, राष्ट्रीय सुरक्षा प्रहरी (एन0एस0जी0), असम राइफल्स तथा भारतीय पुलिस सेवा आदि हैं। इन सभी बलों की भर्ती व प्रशिक्षण मानव सुरक्षा को ध्यान में रखकर ही किया जाता है। ये सुरक्षा बल मानव सुरक्षा व कल्याण की अहम कड़ियाँ हैं।

केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल (CRPF) :

मध्य प्रदेश के नीमच में क्राउन रिप्रेन्जेटिव पुलिस बल के रूप में 27जुलाई सन् 1939 में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल का गठन हुआ था। प्रारम्भ में इसबल का कार्य भारतीय राजवाड़ों में कानून–व्यवस्था बनाये रखने में मदद करना था। स्वतंत्र भारत में 28 दिसम्बर सन् 1949ई0 को इस बल का नाम बदलकरकेन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल कर दिया गया। इस बल के जवनों नें 21 अक्टूबर, 1959 को भारत–तिब्बत सीमा पर स्थित बड़ाहोती क्षेत्र (लद्दाख) में गश्त के दौरान चीनी सैनिकों की एक बड़ी सैन्य टुकड़ी ने हमला कर दिया, तो इस बल के जवानों ने अपनी बन्दूकों की आखिरी गोली तक दुश्मन का मुकाबला करते हुये मातृभूमि व मानव सुरक्षा के लिए

दस जवानों ने प्राण न्योछावर कर दिये थे।

सीमा सुरक्षा बल (BSF) :

अप्रैल 4 व 9, 1965 को भारत के पश्चिमी सेक्टर पर पाकिस्तान द्वारा क्षारवेट, वलियावेट तथा सरदार पोस्ट पर आक्रामक गतिविधियों को ध्यान में रख कर तत्कालीन ग्रहमंत्री गुलजारी लाल नन्दा जी, तत्कालीन ग्रह सचिव आई0पी0 सिंह व तत्कालीन थल सेना अध्यक्ष जनरल जे0एन0 चौधरी जी के प्रयासों से तत्कालीन प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री जी ने एक ऐसे बल के गठन की स्वीकृति प्रदान की, जो शान्ति कल में सीमाओं की सुरक्षा व प्रहरेदारी के साथ

सीमान्त क्षेत्रों मेंनिवास करने वाली जनता में शान्ति व सुरक्षा की भावना पैदा करने, उन्हें कार्य कुशल व कर्तव्यनिष्ठ बनाने, राष्ट्र प्रेम, ईमानदारी, बफादारी, राष्ट्रीय चरित्र, मनोवल जैसे अमूल्य गुणों को पैदा करने के साथ–साथ युद्धकालीन समय में अपनी सेनाओं की भी आवश्यकता व आदेशानुसार सहायता करने की जिम्मेदारी उठा सके। उक्त उद्देश्यों को ध्यान मे रखते हुए दिसम्बर, 01, 1965 ई0 को सीमा सुरक्षा बल का गठन 25 बटालियनों के साथ किया गया। बल को प्रथम महानिदेशक श्री के0एफ0 रूस्तम जी (आई0पी0) को बनाया गया। वर्तमान में बल में 193 बटालियनें कार्यरत हैं। वर्तमान डारेक्टर जनरल श्री पंकज कुमार सिंह (आई0पी0एस0) हैं।

बल के जवान मानव सुरक्षा के निहितार्थ शान्त व सुरक्षित सीमा रखना जिसमें सीमा पार से अपराध, अवैध सीमा घुसपैठ, मादक द्रव व हथियारों की तस्करी, सीमा पर आंतकवादी गतिविधियों को रोकना व वहाँ निवास करने वाली जनता से मेल–मिलाप जोड़ना, सीमान्त क्षेत्रों के जनकल्याण के लिए सीमा सुरक्षा बल गॉवों में शिक्षा, चिकित्सा, सड़क व परिवहन व्यवस्था, बिजली, पानी आदि की व्यवस्था में मदद देकर लोगों को रोजगार परक बनाने में भी सहायता करते हैं तथा सीमान्त क्षेत्र में रहने वाले लोगों में शान्ति व सुरक्षा की भावना पैदा करना। बल के जवान सीमा से अलग आन्तरिक क्षेत्रों में उत्तम मानव प्रबन्धन हेतु अपनी सेवायें भूकम्प, बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं के समय, आतंकवाद, नक्सलवाद, विप्लव जैसी गतिविधियों से बचाव कार्यो में, निष्पक्ष चुनाव प्रक्रिया सम्पन्न कराने जैसे आदि कार्यो को पूरी ईमानदारी व पूर्ण निष्ठा के साथ करने को तत्पर रहते हैं।

भारत–तिब्बत सीमा पुलिस बल (ITBP) :

भारत–चीन युद्ध के समय यह महसूस किया गया देश की उत्तरी सीमा की सुरक्षार्थ व यहां निवास करने वाले लोगों में सुरक्षित होने की भावना पैदा करने के लिए एक अलग बल का निर्माण किया जायें, जो उन पर्वतीय क्षेत्रों में कार्य कर सकें व उन क्षेत्रों से परिचित हो। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए दिसम्बर 1962 में भारत–तिब्बत सीमा पुलिस बल कागठन चार बटालियनों के साथ किया गया था, जो वर्तमान में 60 बटालियानों के साथ कार्यरत हैं। इस बल के जवान उन दुर्गम परिस्थितियों में रात–दिन तैनात रहते हैं जिनमें साधारण मानव जीवित भी नहीं रह सकता। उत्तर–पश्चिम में भारत–चीन सीमा से लेकर भारत–चीन और नेपाल के त्रिकोण तक 2115 किलोमिटर दुर्गम बर्फीले क्षेत्रों में तैनात हैं। 4000 फुट लेकर 18000 फुट तक ही ऊँचाई पर माइनस 40 डिग्री सेल्सियस तापमान वाले, मानव विरोधी मौसम में इन बलों की मौजूदगी समूचे देशवासियों को मानवता व उनके सुरक्षित होने का अहसास दिलाती है। बल की 96 सीमा चौकियां हैं, जिनमें से केवल 39 चौकियां सड़क मार्ग से जुड़ी है, जबकि सात चौकिया तो ऐसी हैं जिन तक केवल हवाई मार्ग से ही पहुँचा जा सकता है। यह बल लोगों को धार्मिक सुरक्षा भी प्रदान करता है कैलास–मानसरोवर यात्रा को निर्विघ्न सम्पन्न कराना, केन्द्रीय व पश्चिमी हिमालय क्षेत्रों में प्राकृतिक आपदा प्रबंधन का कार्य भी कुशलता व निष्ठा के साथ पूर्ण करते हैं। बल के जवान सीमा की सुरक्षा के अतिरिक्त अतिमहत्वपूर्ण भवनों जैसे– संसद भवन, राष्ट्रपति भवन, नार्थ ब्लॉक आदि के साथ अति विशिष्ट लोगों की सुरक्षा में भी आई0टी0वी0पी0 बल के कमांडों की तैनाती की जाती रही है। 2008 मुम्बई आंतकी घटना के आरोपी अजमल कसाब को जेल में विशेष सुरक्षा की जिम्मेदारी आई0टी0बी0पी0 को दी गई। यह बल भी मानव सुरक्षा व जनकल्याण हेतु समय–समय पर लोगों को शिक्षा, रोजगार, चिकित्सा, बिजली, पानी आदि में सहयोग प्रदान करते रहते हैं।

सशस्त्र सीमा बल (विशेष सुरक्षा ब्यूरो) (SSB)

भारत के पूर्वी राज्यों जिन्हें सेवन सिस्टर्स कहा जाता हैं, में सीमा की सुरक्षा, सीमा क्षेत्रों में निवास करने नागरिकों के मन में सुरक्षा का भाव उत्पन्न करने, उन नागरिकों में राष्ट्रीय एकता की भावना जागृत करने व बनाये रखने, सीमा क्षेत्रों के लिए अनेक विकास कार्य करना, प्राकृतिक विपत्तियों के समय राहत व बचाव कार्य करना, सीमा क्षेत्रों में शत्रु के राष्ट्र विरोधी प्रचार के सभी तंत्रों को उखाड़ फेंकना आदि कार्यो के लिए भारत–चीन युद्ध 1962 के पश्चात् सन् 1963 ई0 में इस बल का गठन किया गया।[9] प्रारम्भ में इसका नाम स्पेशल सर्विस व्यूरों था जो 15 दिसम्बर 2003 में बदलकर सशस्त्र सीमा बल कर दिया गया। बल भारत–नेपाल व भारत–भूटान सीमा पर तैनात रह कर मानव सुरक्षा व उत्थान के लिए प्रतिबद्ध है।

केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बलः

सीमाओं की सुरक्षा से एक दम अलग रखते हुये मात्र मानव व मानव सम्पत्तियों की सुरक्षा के बेहद पेंचीदा उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए सी0आई0एस0एफ0 का गठन सन् 1969ई0 में किया गया। देश के 271 सार्वजनिक क्षेत्रों के औद्योगिक संस्थानों की सुरक्षा और अग्नि सुरक्षा का दायित्व इस बल के जवानों पर हैं। इसमें कुछ प्रमुख है– मंत्रालयों के भवन, अंतरिक्ष एवं परमाणु ऊर्जा प्रतिष्ठान, बन्दरगाह, हवाई अड्डे, कोयला खदान, इस्पात सयंत्र, तापीय एवं जल ऊर्जा सयंत्र, तेल एवं पेट्रो रसायन उपक्रम, भारी उद्योग, रक्षा प्रतिष्ठान, रक्षा प्रैस, संग्रहालय, ऐतिहासिक स्मारकों जैसे ताजमहल आदि की सुरक्षा के साथ–साथ 47 हवाई अड्डों की सुरक्षा व मानव प्रबन्ध, स्वतंत्रता, सेवायें उपलब्ध कराते हैं।

इस बल की एक पृथक शाखा अग्निशमन के रूप में देश की सेवा में सदैव तत्पर रहती है। अग्निशमन के जवान विकराल से विकराल स्थिति में अपने प्राणों की परवाह किये बिना मानव सुरक्षा व उनकी सम्पत्तियों की सुरक्षा में तन व मन से समर्पित रहते हैं।

राष्ट्रीय सुरक्षा प्रहरी (NSG):

नब्बे के दशक मेंसम्पूर्ण मानव जाति एक ऐसे भयानक कुचक्र से त्रसित हो गयी कि मानव समाज के कुछ बहके हुये लोग साधारण जनता में आंतक पैदा करने, अपहरण करने, हत्या, निर्दोष, बीमार असमर्थ लोगों पर अन्धा–धुन्ध फायर कर मानव समाज में भय व असुरक्षा का माहौल पैदा करते है, इन सबसे मानव की सुरक्षा में एक और कदम बढ़ाते हुये सन् 1985 ई0 में राष्ट्रीय सुरक्षा प्रहरी का गठन किया गया। वर्तमान समय में मानव को आंतकवाद एक अभिशाप बनकर ड़स रहा है। सर्वत्र मानव सामज रात–दिन एक दिखाई न देने वाले खतरे में जीवन यापन कर रहा हैं। जहां यह मालूम नहीं होता कि किस क्षण हमारे आस–पास मौजूद व्यक्तियों में से कोई भी अपने आका के संदेश पर कितने मासूम लोगों की जान ले सकता है इसका अंदाजा पाकिस्तान में पेशावर के मिलिट्री स्कूल पर आंतकी हमला कर 146 मासूम बच्चों व अध्यापकों की हत्या 16 दिसम्बर 2014 से लगाया जा सकता है।[10] आतंकवाद पर नियंत्रण करने, लोगों में शान्ति व सुरक्षा की भावना पैदा कर उन्हें जागरूक बनाने में एन0एस0जी0 ने अहम भूमिका निभाई है। इस बल का मूलमंत्र है, ''हमेशा अब्वल दूसरा दर्जा कभी नहीं।''

असम रायफल्स (AR) :

यह बल भारतीय अर्द्ध–सैन्य बलों में सबसे प्राचीन बल के रूप में गौरवान्वित होते हुये मानव सुरक्षा व मानव कल्याण के लिए लगभग दोहरे शतक की ओर जा रही है। असम रायफल्स का गठन ब्रिटिस भारत में अंग्रेजों के द्वारा पूर्वोत्तर भारत में चाय वागानों व अन्य कृषि फसलों

तथा उनमें काम करने वाले मजदूरों व किसानों की सुरक्षा के लिए सन् 1835ई0 में किया गया था। असम रायफल्स के जवान भारत–म्यांमार सीमा की सुरक्षा व पूर्वोत्तर राज्यों में व्याप्त विप्लव को रोकने में भी लगाये जा रहे है। बल के जवान सुरक्षा व मानव अधिकारों को ध्यान में रखते हुये अपने कर्तव्यों का मुसतैदी से पालन करते है।

निष्कर्षः

मानव सुरक्षा एक ऐसा पहलू है जो प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों ही रूपों में आर्मड फोर्स से जुड़ा हुआ है। सैन्य शक्ति मानव सुरक्षा से भी पहले उस राष्ट्र की सीमाओं की सुरक्षा कर उन्हें महफूज वातावरण प्रदान करते हैं किन्तु फिर भी सेना का प्रशिक्षण व क्रिया–कलाप कुछ कठिन होते हैं इसलिए जनता में सुरक्षा व शान्ति की भावना पैदा करने के लिए सेना से अलग अर्द्ध–सैन्य बलों का गठन किया जाता है जो राष्ट्र विरोधी शक्तियों को समाप्त करने के साथ मानव की आन्तरिक भावनाओं का आदर करते हुये उन्हें सुरक्षित व समृद्ध होने को समयानुकुल वातावरण पैदा करना रहा है। अर्द्ध–सैनिक बलों का महत्व इससे परिलक्षित होता है कि उत्तर प्रदेश सरकार ने राज्य में निष्पक्ष व शान्तिपूर्वक निर्वाचन कार्य के लिए 424 कम्पनी अर्द्ध–सैन्य बलों की माँग की गयी है। मानव सुरक्षा और अर्द्ध–सैन्य बलों में एक ऐसे सम्बन्ध की आवश्यकता है, जो न ही बहुत अधिक और न ही बहुत कम। मानव को आवश्यक स्वतंत्रता व पूर्ण सुरक्षा का अहसास होगा तभी वह राष्ट्र विकास, समाज उत्थान व मानव कल्याण के बारे में ईमानदारी व पूर्ण निष्ठा से कार्य कर सकेगा। अर्द्ध–सैन्य बल भी अपने उद्देश्य पूर्ति में सफल रहे हैं किन्तु उन्हें और अधिक अधिकारों के साथ कर्तव्य–निष्ठा से मानव कल्याण के लिए अग्रणी होना चाहिए।

सन्दर्भः–

1. सिंहल डॉ0 एस0सी0 'समकालीन राजनीतिक मुद्दे' लक्ष्मी नरायण अग्रवाल, संजय पैलेस आगरा 2007, पेज–104
2. श्रीवास्तव जे0एम0 'राष्ट्रीय सुरक्षा' विभोर चन्द्रा चन्द्रप्रकाश एण्ड कम्पनी, कोठी गेट रोड, हापुड़ पेज–02
3. फाडिया बी0एल0'अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति' साहित्य भवन आगरा 2014, पेज–20
4. सिंहल डॉ0 एस0सी0 'समकालीन राजनीतिक मुद्दे' लक्ष्मी नरायण अग्रवाल, संजय पैलेस आगरा 2007, पेज–104
5. यू0आर0 घई एण्ड के0के0 घई 'अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति सिद्धान्त तथा व्यवहार' न्यू एकेडेमिक पब्लिशिंग कम्पनी माई हीरा गेट जालन्धर 2011 पेज–456
6. गैरी राजा और क्रिस्टोफर मंरे 'पुनर्विचार मानव सुरक्षा' पॉलिटिक्स साइंस त्रैमासिक 2002, पृष्ठ–13
7. कोफी अन्नान 'शान्ति की संस्कृति की ओर' <Http "www.unesco.org> 08-22-01
8. यू0आर0 घई एण्ड के0के0 घई 'अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति सिद्धान्त तथा व्यवहार' 'न्यू एकेडेमिक पब्लिशिंग कम्पनी' माई हीरा गेट जालन्धर 2011 पेज–211
9. सिंह सुनील कुमार 'लूसेंट सामान्य ज्ञान' लूसेंट पब्लिकेश डी0एन0 दास लेन, बंगाली अखाड़ा लंगर टोली, पटना पेज नं0 470
10. अमर उजाला समाचार पत्र–आगरा, 17.12.2014 पेज–01

ISSN : 2278-0408, Volume: 16 / July to December : 2022

माध्यमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों के राष्ट्रीय मूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं की सहभागिता

डॉ0 अवधेश कुमार
(असिस्टेण्ट प्रोफेसर)
शिक्षक–शिक्षा विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय,
प्रयागराज (उ0प्र0)

सत्येन्द्र कुमार यादव
शोधछात्र (शिक्षाशास्त्र)
नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय,
प्रयागराज (उ0प्र0)

सारांश

राष्ट्रीय मूल्यों के विकास में विद्यालय की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पाठ्य सहगामी क्रियाएं छात्रों के राष्ट्रीय मूल्यों के निर्माण में अति उपयोगी साधन के रूप में प्रस्तुत होती है। विद्यालयों में प्रार्थना सभा, खेलकूद, राष्ट्रीय सेवा योजना (एन0एस0एस0), नेशनल कैडेट क्राप (एन0सी0सी0), छात्र संघ, राष्ट्रीय पर्व, रेडक्रास, स्काउटिंग एवं महापुरुषों के जन्मदिवस तथा राष्ट्रीय पर्वों के द्वारा विद्यार्थियों में राष्ट्रीय मूल्य समता, न्याय, स्वतंत्रता और बंधुता की भावना जागृत किया जा सकता है। राष्ट्रीय मूल्यों के विकास के लिए अधिगम अनुभव प्रदान करने की व्यवस्था करनी चाहिए तथा मूल्य आधरित आचरण को स्वीकृत पुरस्कृत, अनुमोदित तथा सम्भव बनाने का अथक प्रयास करना चाहिए। राष्ट्रीय मूल्यों के विकास में समर्थन, प्रेरक व पूरक की भूमिका प्रभावशाली ढंग से निभा सकते है। अतः मूल्यों के विकास के उद्देश्यों को सदैव ध्यान में रखा जाय तो राष्ट्रीय मूल्यों के विकास हेतु उचित वातावरण बन सकता है।

मुख्य शब्द–माध्यमिक, विद्यालय, विद्यार्थी, राष्ट्रीय मूल्यों– स्वतंत्रता, समानता, न्याय, बन्धुता, पाठ्य सहगामी क्रियाएँ, महत्त्व

राष्ट्रीय मूल्यों के रूप में प्रमुख रूप से स्वतंत्रता, समानता, न्याय, बन्धुता आदि मूल्यों को लिया जा सकता है। इन राष्ट्रीय मूल्यों के द्वारा शिक्षा का विकास सरलता से एवं सही दिशा में किया जा सकता है। हमारे देश में अधिकांश छात्रों के लिए माध्यमिक शिक्षा, शिक्षा की अन्तिम सीढ़ी है। बहुत से बालक माध्यमिक शिक्षा के बाद पढ़ाई बन्द कर देते हैं। ऐसे बालक जब किसी व्यवसाय में पदार्पण करते हैं तो वहाँ उनकी माध्यमिक शिक्षा उन्हें किसी प्रकार का लाभ नहीं पहुँचाती है। ऐसे में आवश्यक है कि उन छात्रों को विद्यालयी जीवन के दौरान मूल्य परक शिक्षा प्रदान की जाय जिससे आने वाले जीवन में वे अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय मूल्यों को स्थान देते हुए घोषणा की गई कि–

> *''हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को :*
>
> *सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन*

सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26.11. 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छः विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मर्पित करते हैं।''

यह मूल्य व्यक्तिगत सम्मान लिंग, भाषा, धर्म, जाति, रंग, पीढ़ी, प्रजाति, पारिवारिक स्थिति के आधार पर विभेद न करने सभी के लिए समान एवं निष्पक्ष सामाजिक न्याय, राजनैतिक एवं धार्मिक अधिकार सुनिश्चित करने तथा सामाजिक न्याय और प्रजातांत्रिक संस्थाओं के लिए सम्मान आदि के सम्बन्ध में होता है।

भारतीय मूल्य समन्वयवादी एवं लोकतंत्रात्मक है। इसे प्रत्येक नागरिक अपने अनुसार मूल्यों को अपनाता है। कोई भी व्यक्ति अपने कार्यों से राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक क्षेत्रों में सर्वोच्च हो सकता है। उसके आदर्श एवं मूल्य ही उच्चतम शिखर पर ले जाता है। छोटे स्तर पर भी मूल्य प्रतिक्षण दिखाई देता है। भारत में गरीब– अमीर, अपाहिज–पूर्ण स्वस्थ्य, स्त्री–पुरुष सभी को जीवन जीने का अधिकार है। हमारे प्रतिदिन के व्यवहार में उच्च मूल्य अपनाया जाता है। उच्च मूल्य दैनिक कार्यों में इस तरह समाहित है कि उनका एहसास ही नही होता है।

हर राष्ट्र का अपना स्वतंत्र संविधान होता है जिसमें विशेष मूल्यों को सम्मिलित किया जाता है। ऐसे मूल्यों को राष्ट्रीय या संवैधानिक मूल्य कहा जाता है। भारतीय राष्ट्रीय मूल्यों के अन्तर्गत लोकतंत्र, समाजवाद, निरपेक्षता, समता, न्याय, स्वतंत्रता और बंधुता।

किसी भी देश का पाठ्यक्रम जन आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करता है। प्राचीन भारत के गुरूकुल शिक्षा प्रणाली में आचार्यों के सानिध्य में रहकर प्राकृतिक वातावरण जैसे आयामों में 'विद्या ददाति विनयम्' के शैक्षिक उद्देश्य को प्राप्त करना जीवन की पराकाष्ठा था। वेद मंत्रों व जीवन के सूत्रों को रटाया जाता था, तथा धनुर्विद्या, घुड़सवारी, तलवारबाजी, मल्लयुद्ध जैसे कौशलों का प्रशिक्षण भी दिया जाता था।

आधुनिक भारत में बालक के सर्वांगींण विकास के लिए गांधी जी ने बेसिक टीचिंग मॉडल में शिक्षा को हस्तकला से जोड़ने की बात पर विशेष बल दिया था।

देश की स्वतन्त्रता के बाद मुदालियर आयोग (1952–53) ने भी कोर पाठ्यक्रम के साथ छात्र कल्याणकारी क्रियाओं में सामूहिक खेल एन0सी0सी0 स्काउट/गाइड का सुझाव दिया। कोठारी आयोग (964–66) हस्तकला के लिए कार्यानुभव स्वास्थ्य शिक्षा, नैतिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में रखे जाने का सुझाव दिया।

इसी प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी खेलकूद शारीरिक शिक्षा एन0सी0सी0 आदि कार्यक्रम के साथ ैन्ॅ (समाजोपयोगी उत्पादक कार्य) जैसे रोजगारपरक शिक्षा को अनिवार्य रूप से दिये जाने का सुझाव दिया जिसके अन्तर्गत नवोदय विद्यालयों में ैन्ॅ शिक्षक रखे गये। जिनका प्रशिक्षण सांस्कृतिक स्रोत व प्रशिक्षण परिषद नई दिल्ली में होता है।

रसेल (1926) के अनुसार बालक के विकास का उच्चतम रूप खेल ही है क्योंकि यह स्व–क्रियात्मक है तथा अन्तःमन का वास्तविक प्रतिनिधि है और आन्तरिक आवश्यकताओं को प्रकट करने के पश्चात अंतरतम का प्रतिनिधत्व करता है। यह प्रसन्नता, स्वतत्रंता, संतोष और वाह्य जगत में शक्ति प्रदान करता हैं।

मुखर्जी (1963) के अनुसार पाठ्य सहगामी क्रियाओं के परिणाम बहुत सुखद होते है। इससे छात्रों में तार्किक एवं निर्णायक बृद्धि विकसित होती है इन क्रियाओं से तात्कालिक एकाग्रता का विकास होता है। इससे छात्र को अपने विभिन्न रूचियों को पूरा करने का मौका मिलता है और साथ ही बौद्धिक काल्पनिक एवं शारीरिक क्षमता का विकास होता है।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964–66) के अनुसार विद्यालय के पर्यवेक्षण में चलने वाली प्रवृतियाँ जिनसे विद्यार्थियों को अनुभव प्राप्त होते है, वे विद्यालय के अन्दर हो अथवा बाहर, पाठ्यक्रम का ही महत्वपूर्ण अंग है।

सर पर्सीनन (2001) पाठ्यक्रम में खेल व कला दोनों को महत्वपूर्ण मानते है और इनका रूझान कलाकार व खिलाड़ी के बीच तुलनात्मक आनंद की ओर अधिक है। ये कला को खेल और खेल को कला मानते है। कला की आत्मा खेल की आत्मा की भॉति स्वतः प्रवृति का आनन्दायक अभ्यास है।

सत्यनाराण (सं) के अनुसार पाठयेत्तर क्रियाकलापों से छात्रों में अच्छी आदतों, उच्च आदर्शो और सच्चरित्रता का उद्भव और विकास होता है उस सामाजिक सामंजस्य, नागरिक प्रशिक्षण, नैतिक प्रशिक्षण, अवकाश का सदुपयोग, नेतृत्व, स्कूलहित, सक्षमंता एवं अभिरूचि अन्वेषण किशोर कालीन अमिरूचियों एवं सहज प्रवृतियों के स्वस्थ विकास के अनेक अवसर प्राप्त होते है। इन क्रियाकलापों द्वारा आत्माभिव्यक्ति, आत्मबोध और वास्तविक शिक्षा का मार्ग खुलता है। ये कार्यकलाप छात्रों की स्वतःस्फूर्त अभिरूचियों से उत्पन होने के कारण स्कूल की पाठ्यचर्या को समृद्ध करते है और उन्हें शक्ति देते है।

- प्रार्थना सभा के माध्यम से सभी लोगों में ऊँच–नीच की भावना का समापन, सर्व धर्म समभाव की भावना, अनुशासन, ध्यान की एकाग्रता, लयबद्ध गायन, उत्तम सोच का विकास होता है।
- खेलकूद के माध्यम से विद्यार्थियों के समता, न्याय, स्वतंत्रता और बंधुता का विकास को प्रोत्साहित करता है। खेल–कूद में निश्चित नियमों के पालन की अनिवार्यता विद्यार्थियों में अनुशासन के आदत के विकास हेतु महत्वपूर्ण उपकरण है।
- नेशनल कैडेट क्राप (एन0सी0सी0) के माध्यम से छात्रों में अनुशासन एवं आत्मरक्षा के योग्यताओं का विकास के साथ–साथ राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठा एवं ईमानदारी की भावना का जागृत करता है।
- राष्ट्रीय सेवा योजना (एन0एस0एस0) के माध्यम से छात्रों में सामुदायिक दायित्व के प्रति जिम्मेदारियों का अहसास कराया जाता है।
- छात्र संघ के माध्यम से छात्रों में राजनैतिक, राष्ट्रीय एवं सामाजिक मूल्यों का विकास किया जा सकता है।
- राष्ट्रीय पर्व के माध्यम से छात्रों में देशभक्ति, कर्तव्यनिष्ठा, त्याग, बलिदान एवं अच्छे नागरिक मूल्यों को विकसित किया जाता है। छात्रों में देश–प्रेम एवं राष्ट्रीय समरसता के भाव को विकसित करने में राष्ट्रीय पर्व महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।
- रेडक्रास के माध्यम से किसी आपदाग्रस्त क्षेत्रों में छात्रों को स्वास्थ्य सुविधाओं एवं राहत सामग्री के वितरण हेतु सामुंदायिक दायित्व एवं कर्तव्य बोध को जागृत करने में

सहायता मिलती है। छात्रों में मानवीय मूल्यों (करूणा, प्रेम, दया, परोपकार आदि) के विकास में रेडक्रास सेवाओं का विशेष महत्व है।

- स्काउटिंग एवं गाइडिंग के माध्यम से छात्रों में सांस्कृतिक विविधता एवं कठिन परिस्थितियों (जंगल, पर्वत, बाढ़ आदि) के प्रति संघर्ष एवं समायोजन की योग्यता के विकास को बढ़ावा मिलता है।

- महापुरूषों के जन्म दिवस मनाने से छात्रों में आदर्श एवं मानवीय उत्थान के कार्यों के प्रति आदर भाव का सूत्रपात होता है।

निष्कर्ष–

पाठ्य सहगामी क्रियाएं छात्रों के राष्ट्रीय मूल्यों के निर्माण में अति उपयोगी साधन के रूप में प्रस्तुत होती है। शिक्षा प्रणाली द्वारा स्कूली पाठ्यक्रम में जीवनोपयोगी कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रम का समावेश करते हुए बच्चे को समाज की चुनौतियों के साथ प्रभावी तरीके से निपटने योग्य बनाया जाना चाहिए। सीबीएसई ने 2012 में जीवनोपयोगी कौशल कार्यक्रम को सतत एवं समग्र मूल्यांकन के अंश के रूप में शामिल किया था, जिसका लक्ष्य 10 से 18 वर्ष के बीच की आयु वाले किशोर विद्यार्थी थे। सर्व शिक्षा अभियान की कार्य सूची में भी गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा प्रदान कराने के साथ ही उच्च प्राथमिक कक्षाओं की लड़कियों को जीवनोपयोगी कौशलों का प्रशिक्षण देना भी शामिल है। देश के नागरिक के रूप में बच्चे के सर्वांगीण विकास के लिए मूल्य आधारित शिक्षा भी आवश्यक हो गई है, जिसे स्कूल एवं कॉलेज के स्तर पर राष्ट्रीय मूल्य सिखाकर, उनका पोषण एवं विकास कर प्राप्त किया जा सकता है।

राष्ट्रीय मूल्यों के विकास में विद्यालय की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तीनों ही अभिकरणों को मूल्यों की शिक्षा में रूचि लेनी चाहिए, मूल्यों के विकास के लिए अधिगम अनुभव प्रदान करने की व्यवस्था करनी चाहिए तथा मूल्य आधरित आचरण को स्वीकृत पुरस्कृत, अनुमोदित तथा सम्भव बनाने का अथक प्रयास करना चाहिए। राष्ट्रीय मूल्यों के विकास में समर्थन, प्रेरक व पूरक की भूमिका प्रभावशाली ढंग से निभा सकते है। अतः मूल्यों के विकास के उद्देश्यों को सदैव ध्यान में रखा जाय तो राष्ट्रीय मूल्यों के विकास हेतु उचित वातावरण बन सकता है।

आधुनिक युग में विद्यालय केवल बौद्धिक विकास का स्थल न होकर बालक के सर्वांगीण विकास में सहायक होता है। बालक समाज की इकाई होता है और विद्यालय में बालक का समाजीकरण होता है, क्योंकि विद्यालय समाज का लघु रूप है। वास्तव में विद्यालय बालक के जीवन की प्रयोगशाला है। यहाँ रहकर बालक अनेक कार्यानुभवों के द्वारा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। पाठ्य सहगामी क्रियाओं की प्रभाविता तभी सम्भव है जब पाठ्य सहगामी क्रियाओं के क्रियान्वयन में अभिभावक, शिक्षक, संस्था के अधिकारी तथा सरकार पूर्ण रूप से अपना योगदान दें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- कौल, संगीता (2016). उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं की छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर पाठ्य सहगामी क्रियाओं में सहभागिता का प्रभाव, इमर्जिंग रिसर्च जर्नल, वॉ0 1, इश्शू–2, पृ0 30–33

- कुमार, राजेश (2018). माध्यमिक स्तर पर सामान्य एवं दृष्टिबाधित विद्यार्थियों के पाठ्य सहगामी क्रियाओं में सहभागिता का तुलनात्मक अध्ययन, इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल, चेतना, वॉ0 1, इयर–3, पृ0 210–217
- जादौन एवं पारीक (2017). जयपुर जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियोंकी पाठ्य सहगामी क्रियाओं व व्यक्तित्व विकास में सह सम्बन्ध का अध्ययन, बियानी गर्ल्स बी0एड0 कालेज, जयपुर (राजस्थान)
- पाण्डेय एवं सिन्हा (2017). शिक्षा में पाठ्य सहगामी क्रियाएं एवं विभिन्न मूल्य निर्माण में इन क्रियाओं की उपादेयता, नेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिस्पिलनरी रिसर्च एण्ड डेवेलपमेण्ट, वॉ0 2, इश्शू–2, पृ0 128–129
- राय, शैलजा (2018). शिक्षा में पाठ्य सहगामी क्रियाएं एवं विभिन्न मूल्य निर्माण : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एण्डवांस एजुकेशन रिसर्च, वॉ0 3, इश्शू–2, पृ0 269–270
- शर्मा, अशोक एवं गुप्ता, प्रतिभा (2018). विद्यालय एवं पारिवारिक परिवेश के सन्दर्भ में विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों एवं राष्ट्रीय भावना का अध्ययन, *लोकविशेकर इण्टरनेशनल ई–जर्नल*, वॉल्यूम–7, इश्शू–01, पृ0 25–30
- शाहिद, मोहम्मद एवं सिंह, अमरप्रीत (2015). "प्रतियोगिता के विभिन्न स्तरों पर फुटबॉल खिलाड़ियों में उपलब्धि अभिप्रेरणा का अध्ययन" इन्टरनेशनल जर्नल फॉर रिसर्च एनालिसिस, आई.एस.एस.एन. 2277–8160, इम्पैक्ट फैक्टरः 4.547, वॉल्यूम 4, इश्यु 6, पेज नम्बर 294–296।
- सिंह, प्रमिला (2017). रीवा विकासखण्ड के हाई स्कूल स्तर पर पाठ्य–सहगामी क्रियाओं में भाग लेने वाले विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास का अध्ययन, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिस्पिलनरी रिसर्च एण्ड डेवेलपमेण्ट, वॉ0 4, इश्शू 2, पृ0 278–281